खादी-मीमांसा

लेखक
वालूभाई मेहता

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
शाखायें—दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

२ अक्तूबर १९४० १०००
मूल्य
डेढ़ रुपया

मुद्रक
एस. एन. भारती
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

प्रकाशकीय

इस पुस्तक के वारे मे अपनी ओर से कुछ लिखने के वजाय लों० तिलक के 'केसरी' की सम्मति दे देने से सारा मतलव हल हो जाता है—

"इसके लेखक ने अग्रेजी, मराठी, हिन्दी और गुजराती भाषा के प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य का आवश्यक अध्ययन किया, वर्धा के सत्याग्रह आश्रम मे शास्त्रोक्त शिक्षा प्राप्त की और करीव-करीव सारे हिन्दुस्तान का दौरा कर परिस्थिति का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया। इसमें रामायण, महाभारत, कौटिलीय अर्थशास्त्र और इतिहास आदि ग्रन्थो के आधार पर यह अच्छी तरह चित्रित किया गया है कि किस प्रकार वेद काल से ही खादी विविध रूप मे प्रचलित रही है। विदेशो तक मे खादी के कितने और किस प्रकार से स्तुतिस्त्रोत्र गाये गये हैं, यह देखकर किसी भी भारतवासी के अन्त करण में अभिमान उत्पन्न हुए विना न रहेगा, साथ ही इसके वाद के अध्यायो मे यह पढकर कि गोरे व्यापारियो ने हिन्दुस्तान के इतिहास पर अपने कृष्ण-कृत्यो की कितनी गहरी छाया डाली है, कौन-सा ऐसा भारत-पुत्र होगा जिसका हृदय शोक, सन्ताप और रोष से न भर जायगा ? ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ज़माने मे हुई लूट, अत्याचार, अकाल और दरिद्रता के कारण हिन्दुस्तान जिस प्रकार दाने-दाने के लिए मुहताज हो गया, लेखक द्वारा किया गया उसका विवेचन पढकर हृदय को मार्मिक चोट पहुँचे विना नही रहती। हिन्दुस्तान की सव परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए किस प्रकार चरखा और तकली ही आर्थिक दृष्टि से उसका उद्धार करनेवाली है, इसका इस ढग से विवेचन किया गया है कि उससे सहज ही पाठको का उसपर विश्वास जम सकता है।

अधिकारपूर्वक यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दुस्तान में ही नही, बल्कि इग्लैण्ड, अमेरिका, और इटली आदि देशो के गाँवो में भी चरखे का सगीत निनादित होता है। यह दिखाया गया है कि ग्रीस में तो कुमारी घोडे पर सवार होकर जाते हुए भी तकली चलाती है। अक देकर यह सिद्ध किया गया है कि देश हित की अपेक्षा चरखा ही किस प्रकार अधिक उपयुक्त, अधिक स्वदेशी और अधिक लोगो को काम देकर पैसो का समान बँटवारा करानेवाला साधन है। खादी पर किये जानेवाले आक्षेपो का जो खण्डन किया गया है, वह आक्षेपको को निरुत्तर करनेवाला है। खादी की साधार, सप्रमाण और सविस्तार जानकारी देकर आर्थिक दृष्टि से उसकी आवश्यकता और महत्त्व सिद्ध करनेवाली ऐसी पुस्तक कम-से-कम मराठी साहित्य में तो दूसरी नही है। इस पुस्तक के पढने से श्री रमेशचन्द्र दत्त, दादाभाई नौरोजी, ज्ञानाञ्जन नियोगी, डॉ० बालकृष्ण, बसु, ग्रेग आदि लेखको की इस विषयो की पुस्तके पढने का श्रेय मिलेगा। हमारी सिफारिश है कि हिन्दुस्तान के किसी भी हित चिन्तक को यह पुस्तक पढे बिना नही रहना चाहिए।"

—मत्री

विषय-सूची

(भाग १ : मीमांसा)

(भाग २ : कार्य और तंत्र)

(भाग ३ : परिशिष्ट)

खादी-मीमांसा

[भाग १ : मीमांसा]

: १ :

खादी और भारतीय संस्कृति

जड द्रव्य की तृष्णा की अपेक्षा चैतन्यमय मानवसृष्टि का कल्याण साधन करना, इस प्रकार की ही समाज-रचना होना जिसमें कि सम्पत्ति का समान वटवारा हो, आमोद-प्रमोद की प्रवृत्ति कम करके वन्धु-भावना का विकास करने की ओर अविक ध्यान देना, औद्योगिक प्रतियोगिता पर प्रतिवन्ध लगाकर पारस्परिक व्यवहार सहयोग द्वारा करने की प्रवृत्ति रखना, द्रव्य साध्य नही साधन है, इस भावना से आचरण करना, और स्वार्थ के लिए अविराम दौड़-धूप करने में सुख न मानना, यही भारत का स्वभाव है।[१] —राधाकमल मुकर्जी

मनुष्य और राष्ट्र इनमें अनेक वार एक प्रकार का साम्य होता है। जिस तरह प्रत्येक मनुष्य के स्वभाव में एकाध विशिष्टगुण की झलक प्रमुखता के साथ दिखाई पडती है, उसी तरह प्रत्येक राष्ट्र की अपनी कुछ-न-कुछ विशिष्टता होती है। संसार के मौजूदा प्रमुख राष्ट्रों की ओर इस दृष्टि से देखने पर हमें इंग्लैण्ड की नाविकता अथवा जहाज़रानी, जर्मनी की सैनिकता, फ्रांस की ललितकलाभिरुचि, अमेरिका की उद्यमशीलता और हिन्दुस्तान की आध्यात्मिकता इत्यादि सद्गुण प्रमुखता से विकसित हुए दिखाई देते हैं।

हिन्दुस्तान अध्यात्म-प्रधान राष्ट्र है। इसका अर्थ यह है कि वह रहस्यग्राही और दूरदर्शी राष्ट्र है। वह क्षणभंगुर और शाश्वत, देह और आत्मा, छिलका अथवा चोकर और सत्त्व का भेद पहचाननेवाला राष्ट्र है। ग्रीक, रोमन, बेबिलोनियन, मेसिडोनियन इत्यादि राष्ट्र उदय हुए और

१ "The Foundations of Indian Economics" पृष्ठ ४५९-६१ और ४६५-६७

अस्त हो गये, लेकिन उनके उदयाचल पर चमकने के पहले से मौजूद हिन्दुस्तान ही आजतक जीवित है, इसका कारण यही है कि उसका अस्तित्व आध्यात्मिकता के स्थायी पाये पर कायम हुआ है। हिन्दुस्तान की आज जो हीन स्थिति होगई है, उसका कारण, जैसा कि कई लोग समझते हैं, आध्यात्मिकता का अतिरेक नही, बल्कि इसके विपरीत उसका विस्मरण है।[१]

संस्कृति का अर्थ है आत्मा का विकसित दर्शन। मनुष्य अथवा राष्ट्र की संस्कृति उसके बाह्य सौंदर्य अथवा चमक-दमक पर नहीं, प्रत्युत उसके हार्दिक विकास पर और तज्जन्य प्रत्यक्ष कृति अथवा आचरण पर अवलम्बित होती है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो कहना चाहिए कि मनुष्य का

१. एक सज्जन ने महात्मा गाधी से यह प्रश्न किया था—'क्या यह सच नही है कि आध्यात्मिकता के विषय मे जनता का परमोच्च विकास होने के कारण ही हिन्दू राज्य नाश को प्राप्त हुए ?' महात्माजी ने इसका नीचे लिखा उत्तर दिया था—

"मुझे ऐसा नही लगता। वस्तुत आध्यात्मिकता के अभाव के कारण अथवा दूसरे शब्दो में नैतिक दुर्बलता के कारण ही हिन्दुओ को हर बार हार खानी पडी है। राजपूत आपस में लडे और हिन्दुस्तान गवा बैठे। उनमे व्यक्तिगत शौर्य तो बहुत था, किन्तु उस समय उनमें वास्तविक आध्यात्मिकता का अभाव था। राम-रावण-युद्ध मे रावण की पराजय और वानरो की सहायता लेकर लडनेवाले राम की विजय होने का कारण राम की आध्यात्मिकता के सिवा और क्या है ? क्या आध्यात्मिकता के बल पर ही पाण्डवो की विजय नही हुई ? आध्यात्मिक ज्ञान और आध्यात्मिक विकास इन दोनो के बीच का अन्तर न जानने के कारण ही हमेशा गडबड होती है। धर्मग्रन्थो का ज्ञान होने और तात्त्विक चर्चा करना जानने का ही यह अर्थ नही है कि आध्यात्मिकता हमारे जीवन में आगई। आध्यात्मिकता का अर्थ है अमर्यादित शक्ति देनेवाला हार्दिक विकास। निर्भयता आध्यात्मिकता की पहली सीढी है। डरपोक लोग कभी भी नीतिवान् हो नही सकते।" Young India, part I, पृष्ठ १०८८

चारित्र्य या शील उसकी संस्कृति का द्योतक होता है। राष्ट्र के धर्म, तत्त्वज्ञान और तदनुसार निर्मित राष्ट्रीय सुधार से ही राष्ट्र की संस्कृति व्यक्त होती है।

कलकत्ता हाइकोर्ट के एक भूतपूर्व न्यायाध्यक्ष (जज) सर जॉन वुडरफ ने 'Is India Civilised ?' (क्या भारत सभ्य है?) नामक एक अत्यन्त गम्भीर और प्रभावशाली ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने वास्तविक सुधार क्या है, इस सम्बन्ध मे मार्मिक और विश्लेषणात्मक ढंग से सविस्तर विवेचन किया है।

वुडरफ साहब के मत मे वही वास्तविक सुधार है जो व्यक्तिगत और सार्वजनिक हित-साधन करनेवाले धर्म को प्रोत्साहन दे और मानव समुदाय का तात्कालिक एवं आत्यन्तिक कल्याण करते हुए अखिल प्राणि-मात्र को न्याय दिलाकर उनके आध्यात्मिक विकास को पोषण दे।[१]

यही विचार उन्होंने दूसरे शब्दों मे अधिक स्पष्टता के साथ निम्न प्रकार से प्रकट किये हैं। वह कहते हैं—

"जिस समाज का अधिष्ठान और पर्यवसान ईश्वर पर अवलम्बित है, और जिसके भौतिक और बौद्धिक व्यवहार आत्मा के विकास की दृष्टि से होते हैं, वह समाज सच्चा सुसंस्कृत होता है। इस समाज का ऐसा व्यवहार मानों आदर्श नीति-तत्त्व और धर्म-सिद्धान्तो का पदार्थ पाठ ही है। इस व्यवहार के द्वारा मनुष्य पहले अपने विशिष्ट दैवी स्वरूप को पहचानता है और फिर सारे जगत मे व्याप्त दैवी शक्ति से एकरूप होकर उसके भी आगे चला जाता है, अर्थात् सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।"[२]

कितना उच्च आदर्श है यह!

सच्चे सुधार की यह कसौटी नियत करके जज महोदय कहते है—

"भारतीय उन्नति धर्म के आधार पर अधिष्ठित होने के कारण उसका ध्येय आध्यात्मिक है।[३] समाज का संगठन इसी ढंग से किया गया

१ पृष्ठ २३१। २ पृष्ठ ११.

३ श्री प्रमथनाथ बोस कृत "Hindu civilisation during British Period" Vol I Introduction पृष्ठ ८ भी देखिए।

है जिससे कि उक्त ध्येय साध्य होजाय।[१] सांसारिक जीवन व्यतीत करते हुए परमार्थ की ओर प्रेरित करनेवाले हिन्दू धर्म के समान और कोई दूसरा धर्म नहीं है।"[२]

इस अध्याय के शीर्षक पर दिये गये अवतरण से स्पष्ट है कि प्रो० राधाकमल मुकर्जी की विचार-सरणी भी इसी प्रकार की है।

भारत की यह संस्कृति अत्यन्त प्राचीन, उज्ज्वल, भव्य, दिव्य और विशाल है। प्रो० मेक्समुलर, मोनियर विलियम्स, सर हेनरी मेन, सर थामस मनरो, मेकिण्डल, विन्सेण्ट स्मिथ, विल्सन, हण्टर, टेलर, एलफिंस्टन, एन्स्टे, वॉर्डथार्टन, जार्नस्टजनी और डा० एनी बीसेण्ट आदि पश्चिमी तत्ववेत्ता, इतिहासकार, तथा प्राच्यविद्याविशारदो ने अपने ग्रन्थो मे भारत की प्राचीन उच्च संस्कृति का अत्यन्त गौरवपूर्वक उल्लेख किया है। संस्कृति की प्राचीनता के सम्बन्ध में अंग्रेज़ लेखक मि० मोनियर विलियम्स लिखते है—

"जिस समय हमारे पूर्वज जंगली स्थिति में थे और जिस समय अंग्रेजो का नाम कहीं सुनाई भी न पडता था, उससे कई शताब्दी पहले हिन्दुस्तानी लोगो की अत्यन्त उच्चकोटि की संस्कृति मौजूद थी। इसके सिवा उनकी सुसंस्कृत भाषा, परिष्कृत साहित्य तथा गम्भीर तत्त्वज्ञान की प्राचीनता की भी ख्याति थी।"[३] भारतीय संस्कृति जितनी प्राचीन थी उसी प्रकार उस समय उसका प्रसार भी अत्यन्त दूर-दूर के राष्ट्रों तक था। "मिस्र, फिनिक्स, स्याम, चीन, जापान, सुमात्रा, ईरान, खालिडया, ग्रीस, रोम इत्यादि अनेक प्राचीन और दूर-दूर के देश भारतीय संस्कृति से परिचित थे।"[४]

१. पृष्ठ २७०। २ पृष्ठ २४६

३ Monier Williams "Indian Wisdom", Introduction पृष्ठ १६ Ed 1875 quoted from N. B Pavgee's Self-Government in India, Vedic & past Vedic पृष्ठ ३१

४ Count Biornstierne Theogony of the Hindus पृष्ठ १६८ quoted from N B. Pavgee's Self-Government in India, Vedic & Past Vedic पृष्ठ ३६

अस्तु, थोड़े में कहा जाय तो यों कहना चाहिए कि जो संस्कृति धर्म और नीति का अनुसरण कर शरीर, मन और आत्मा के विकास में सहायक होती है, वही असल संस्कृति है। हिन्दुस्तान में जब-जब इस संस्कृति की विजय हुई, तब-तब वहां सुख, समृद्धि और आनन्द छाया रहता था। भगवान् रामचन्द्र, अशोक, हर्ष विजयनगर के कृष्णदेवराय तथा बालाजी बाजीराव पेशवा के कार्यकलाप इस संस्कृति के सुन्दर स्मारक हैं।

इस संस्कृति की विशेषता कहनी हो तो यों कहना चाहिए कि समाज के सब व्यवहार सामान्यत. नीति और न्याय-सङ्गत होने के कारण समाज में असन्तोष फैलने के लिए कोई गुंजायश ही नहीं रहती थी। गीता की 'स्वे स्वे कर्मण्यभिरत. संसिद्धिं लभते नरः' की उक्ति के अनुसार चारों ही वर्ण देश, काल और परिस्थिति के अनुसार अपने-अपने प्राप्त कर्तव्य का उत्तमता के साथ पालन कर अपनी इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति करते रहते थे। विभिन्न प्रकार के पेशेवालों में 'स्पर्धा' अथवा 'चढ़ा-ऊपरी' होने का कोई कारण नहीं रहता था, क्योंकि हरेक का अपना-अपना कार्य और कार्यक्षेत्र निश्चित रहता था। कार्य की अथवा कार्यक्षेत्र की कभी भी घाल-मेल नहीं होती थी।[१]

अन्न और वस्त्र शरीर के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु हैं। पहले खेती की तरह वस्त्रोत्पादन—कपड़ा बनाने का काम भी बहुत बड़े परिमाण में होता था। वस्त्रोत्पादन—खादी के धंधे से किसान, सुनार, लुहार, लुढवैये, पिंजारे, कत्तिन, जुलाहे, धोबी, रंगरेज़, छीपे आदि लोगों को काम मिलकर सम्पत्ति का उचित बंटवारा होता रहता था। इससे समाज में सन्तोष, सुख और शान्ति छाई हुई थी। सब जगह समान वर्षा होने से जिस तरह सबको एक समान आनन्द होता है, उसी तरह खादी के कारण पैसे का समान बंटवारा होता रहता था जिससे सब में समान सन्तोष

१ श्री प्रमथनाथ बोस कृत Hindu civilisation during British period, Vol I Introduction पृष्ठ ७९ तथा म० रा० बोडस कृत 'ग्रामसंस्था' पृष्ठ ४२–४३

फैला हुआ था। ऐसी स्थिति मे कोई 'जीवन-कलह' नामक शब्द जानता ही न था। वर्णव्यवस्था के आधार-भूत अनेक तत्त्वों में के एक तत्त्व मे मर्यादित धनतृष्णा, अथवा भोग-लालसा से खादी का विशेष सम्बन्ध है। खादी के कारण सबको मर्यादित किन्तु सबको समान रूप से धन मिलता रहने के कारण सारा समाज एक समान सन्तुष्ट रहता है। समाज की आत्मा के इस प्रकार सन्तुष्ट रहने के कारण उसे ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति के लिए अवसर मिल जाता है। खादी समाज की बिखरी हुई कड़ियों को पुनः जोड़ देगी और इसलिए 'साम्यवाद' अथवा समाजवाद जैसी प्रवृत्ति के पैदा होने की कोई सम्भावना नहीं रहेगी।

हमारी प्राचीन संस्कृति परमेश्वर से साक्षात्कार करने की है, जबकि आधुनिक पश्चिमी संस्कृति उससे दूर लेजानेवाली है। पश्चिमी संस्कृति ने आजतक अनेक प्रकार के आश्चर्यजनक आविष्कार किये हैं, जिनके कारण संसार के ज्ञान और सुख-सुविधा मे बहुत वृद्धि हुई है, यह बात उक्त संस्कृति के कट्टर शत्रु भी अस्वीकार न कर सकेंगे। श्री वुडरफ ने जो यह कहा है कि "पाश्चात्य संस्कृति कुछ दृष्टियो से प्रशंसनीय होने पर भी उसका आधार धर्म-मूलक न होने के कारण वह भारतीय जनता को विष के समान प्रतीत होती है,"[१] यह कुछ अंशो मे सही है। "पाश्चात्य संस्कृति का अर्थ है पश्चिमी लोगो के अंगीकृत वर्तमान आदर्श और उनके आधार पर खड़ी की गई उनकी प्रवृत्तिया।" महात्माजी ने उस संस्कृति को त्याज्य माना है जो "पाशविक शक्ति को प्रधानता और पैसे को[२] परमेश्वर का स्थान देती है, जो ऐहिक सुखों की प्राप्ति के कार्यों मे ही मुख्यत. समय बिताती और अनेक प्रकार के ऐहिक सुखों की प्राप्ति के लिए जी-तोड भारी साहसिक कार्य करती है तथा जो यांत्रिक शक्ति की वृद्धि के लिए मानसिक शक्ति का अपार व्यय करती, विनाशकारी साधनो के आविष्कार के लिए करोडो रुपये खर्च करती है और

१ पृष्ठ ३४९

२ श्री प्रथमनाथ बोस कृत Hindu Civilisation during British period vol. I Introduction पृष्ठ १ भी देखिए।

यूरोप से बाहर की जनता को गौण मानने को धर्म समझती है।"[1]

पाश्चात्य संस्कृति का एक बड़ा दोष यह समझा जाता है कि उसके कारण आत्मा का समाधान नहीं होता। उसमें मिलों को बहुत अधिक महत्त्व का स्थान दिया जाता है। मिलों के कारण कुछ अंगुलियों पर गिने जाने जितने लोग अन्यायपूर्वक लखपती बन जाते हैं, लेकिन उनमें काम करनेवाले लाखों मजदूरों के सदा असन्तुष्ट बने रहने के कारण राष्ट्र पर बारबार हड़ताल, दंगे और गोलाबारी आदि के प्रसंग आते रहते हैं। मानो राष्ट्र पर यह एक स्थायी संकट ही आ बैठा है। मिल-मालिक तो इस उधेड़-बुन में रहते हैं कि हम कब और किस तरह लखपती से करोड़पती बन सकते हैं, और मजदूरों को यह चिन्ता रहती है कि मज़दूरी बढ़वाकर अपने बाल-बच्चों की किस तरह व्यवस्था की जाय। इस प्रकार मिलों के मालिक और मजदूर दोनों ही श्रेणी के लोग सदैव असन्तुष्ट ही रहते है। इन्हें आत्म और अनात्म का विचार कहां से सूझेगा?

अमेरिकन लेखक प्राइस कोलियर ने भारतीय स्थिति का निरीक्षण कर लिखा है—"अब हिन्दुस्तान पश्चिम के आर्थिक भँवर में फँसा है। मनुष्य की जायदाद कितनी है और उसने कितना द्रव्य पैदा किया है, इसपर उसका सामाजिक पद निश्चित किया जाता है. इस स्थिति के कारण वर्तमान असन्तोष में और वृद्धि हो गई है। धनवान और अभिमानी होने की अपेक्षा सुशील होना अधिक आसान है, फिर भी बहुत लोग धनवान और अभिमानी होना ही पसन्द करते है। उनके संकट में साम्पत्तिक असन्तोष की—पाश्चात्य विष की—और वृद्धि हो गई है।"[2] किसकी हिम्मत है जो यह कहने का साहस करे कि श्री प्राइस का उक्त कथन वस्तुस्थिति के अनुकूल नहीं है?

हमारी प्राचीन संस्कृति जिस प्रकार ईश्वर-परायण और आत्मा को सन्तोष देनेवाली है, उसी प्रकार वह स्वावलम्बी भी थी। अन्न-वस्त्र के

१ 'नवजीवन' के १७ जनवरी १९२१ के अक का परिशिष्ट।

२. प्राइस कोलिर (Price Collier) कृत 'The East in the West" पृष्ठ २२२-२२३

लिए हमें कभी भी किसी विदेशी राष्ट्र का मुँह देखने की ज़रूरत ही नही पडी।

पहले शरीर के लिए आवश्यक अन्न-वस्त्र की सुविधा घर-के-घर में ही होने के कारण हमारी स्त्रियों पर पतिव्रत-धर्म के भंग होने अथवा शील-भ्रष्ट होने की आपत्ति आने का कभी मौका ही नहीं आता था। हमारे पूर्वजों ने "चक्की, चूल्हा, व चक्री" इस 'च' त्रयी का कभी भी त्याग नहीं किया था। इस कारण वे अत्यन्त स्वावलम्बी और सुखी थे। प्रत्येक कुटुम्ब मे चक्की, चूल्हा, और चरखा एवम् चक्री (तकली) अवश्य ही होनी चाहिए थी। सूत चरखे अथवा चक्री—तकली—पर कातने की प्रथा थी। आजकल बडे-बडे शहरों मे जगह-जगह इस 'च' त्रयी का त्याग हुआ दिखाई पडता है। आटे की मिल में आसानी से आटा पिसवा लाना, होटल मे भोजन करना और बाजार से तैयार कपडे लेना, ये आजकल की सुख-सुविधा के साधन माने जाते है। परन्तु दूरदृष्टि से देखने पर इनसे राष्ट्रोन्नति को कितना पोषण मिलता है, पाठक स्वय ही इसका विचार कर देखें! हमारे मत से आटे की मिलों ने बहुत-सी स्त्रियों को आलसी, निरुद्योगी और परावलम्बी बना दिया है। यह अनुभवसिद्ध बात है कि मिल के आटे में बहुत-सा सत्त्व कम हो जाने के कारण वह हाथ-पिसे आटे जितना लोचदार एवं स्वत्त्व-युक्त नहीं होता। आजकल के होटलों को तो हालैण्ड का नकली घी खपानेवाले अड्डे ही कहना चाहिए। वे अस्वस्थता के, गन्दगी के एवं संसर्गजन्य रोगों के घर ही बन गये है। विदेशी कपडों की दूकाने हमारे रक्तशोषण के मानों केन्द्र बन गई हैं। हम अन्न-वस्त्र के मामले में दिन-प्रतिदिन कैसे और कितने परावलम्बी होते जाते है, यही ऊपर के विवेचन का सार है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र हमे सिखाता है कि अपनी आवश्यकता को बढ़ाना उच्च संस्कृति का सूचक है।[१] किन्तु हमारे अध्यात्मशास्त्र—हमारी गीता—हमे संयमी बनने—जितेन्द्रिय होकर अपनी आवश्यकता कम करने के

१ इस सम्बन्ध का विस्तृत विवेचन इस पुस्तक के "खादी और समाजवाद" नामक प्रकरण मे देखिए।

लिए कहते है।[१] गीता की शिक्षा जिस तरह निष्कामकर्मपरक है, उसी तरह संयमपरक भी है। जिस प्रकार लोकमान्य तिलक ने गीता-रहस्य लिखकर गीता के निष्कामकर्मपरक स्वरूप को विशद करके बताया है, उसी तरह महात्मा गांधी ने अपने आश्रम के द्वारा उसका संयमपरक स्वरूप संसार की दृष्टि के सामने स्पष्ट रूप से ला रक्खा है। ऐसी स्थिति मे आधुनिक विद्वानों के सामने यह ज़बरदस्त प्रश्न खड़ा होता है कि हम पाश्चात्य अर्थ-शास्त्र को मानें अथवा गीता के उपदेश के अनुसार आचरण करे। भोग भोगने से भोगेच्छा बढती जाती है।[२] उससे मन को और आत्मा को शान्ति न मिलकर उल्टे असन्तोष बढता जाता है। कोई भी विद्वान एवं चतुर मनुष्य स्वीकार करेगा कि इसकी अपेक्षा 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्' वाला संयम ही अच्छा है। डा० कुमार स्वामी कहते हैं—"आवश्यकता बढाना संस्कृति का लक्षण नहीं, बल्कि अपनी आवश्यकताओं को सुसंस्कृत करना ही सच्ची संस्कृति का लक्षण है।[३] खादी सादी रहनसहन अपनाकर हमे अपनी आवश्यकता कम करना सिखाती है, किन्तु पाश्चात्य संस्कृति हमारी आवश्यकतायें बढाकर हमें विलासी बनाती है।

पश्चिमी और पूर्वी (भारतीय) संस्कृति का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करके वुडरफ़ साहब ने नीचे लिखा निष्कर्ष निकाला है :—

"हमारी पाश्चात्य संस्कृति महान 'भक्षक' है। हम सब स्वाहा कर जाते हैं। जिसे 'उच्च-जीवन' कहा जाता है अभीतक उसका अर्थ यही समझा जाता है कि हम अधिकाधिक हडप करते जायँ। औद्योगिक युग ने

१ राधाकमल मुकर्जी कृत "Foundations of Indian Economics" पृ० ४५८ और ४६६, साथ ही श्री प्रमथनाथ वोस कृत "Hindu Civilisation during British period Vol I, Introduction पृष्ठ ८ भी देखिए।

२ महात्मा गाधी कृत 'हिन्द स्वराज' (हिन्दी) साथ ही श्री वुडरफ कृत 'Is India Civilised ? पृ० २८ भी देखिए।

३ Art and Swadeshi पृ० ८.

: २ :

खादी की प्राचीनता, विविधता और कला

खादी और उसकी प्राचीनता, विविधता और कला ! कैसा विरोधाभास है यह ! पहली नज़र मे ऐसा विरोधाभास होना स्वाभाविक है। आमतौर पर खादी का अर्थ हाथ के कते सूत का मोटा-झोटा कपड़ा समझ लेना ही इस विरोधाभास का कारण है। हम समझते हैं कि मशीन-युग मे मिलों के सफ़ाईदार माल से तुलना करने की दृष्टि से मोटे-झोटे खुरदरे कपडे को 'खादी' के नाम से पहचानने का रिवाज़ पडा होगा। मशीन-युग का आरम्भ होने पर ही 'खादी' शब्द बना होना चाहिए। ख़ैर, कुछ भी हो, सन् १६२० के असहयोग आन्दोलन के समय से जब खादी-शास्त्र का निर्माण हुआ तब उसकी जो शास्त्रीय व्याख्या निश्चित की गई, वह इस प्रकार है—'हाथ से कते और हाथ से बुने कपडे का नाम, फिर चाहे वे रुई के हों, रेशम के हों, ऊन के हों, सनके हों, रामबाण के हों, अंबाडी के हों अथवा वृक्षों की छाल के हों, 'खादी' है।[1] इस

१ अखिल भारतीय-चरखा-सघ के जीवन-वेतन का सिद्धान्त स्वीकार करने के बाद व्यापारिक पद्धति से तैयार की गई खादी की व्याख्या इसकी अपेक्षा और भी व्यापक हो गई है। वह इस प्रकार है—

"जीवन-वेतन के सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी देकर हाथ के कते और हाथ के बुने वस्त्र का नाम 'खादी' है।"

यह व्याख्या भी कुछ अधूरी ही है, क्योकि अखिल भारतीय चर्खा-सघ के एक प्रस्ताव के अनुसार व्याख्या करनी हो तो वह इस प्रकार होगी—

"हाथ-लुढी रुई से जीवन-वेतन के सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी देकर हाथ से कते और हाथ से बुने कपडे का नाम 'खादी' है।"

व्याख्या की दृष्टि से मशीन-युग का जन्म होने से पहले जो-जो वस्त्र तैयार होते थे—इनमें के बहुत से बारीक होते थे—वे सब खादी की शास्त्रीय व्याख्या के अन्तर्गत आसकते हैं। इस पुस्तक में जहां-जहां 'खादी' शब्द का प्रयोग हुआ है, वहां वह शास्त्रीय व्याख्या का अनुसरण करके ही व्यवहृत हुआ है। खादी की उपरोक्त व्याख्या से उसकी विविधता की भी कल्पना हुई ही होगी।

खादी की प्राचीनता[1] और विविधता

हिन्दुस्तान में हाथ से कातने और बुनने की कला अत्यन्त प्राचीन-काल—वेदकाल—से प्रचलित है। औंध के 'स्वाध्याय मण्डल' के संचालक श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने हिन्दी में 'वेद में चरखा' नामक एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने हाथ से कते और हाथ से बुने कपड़े किस तरह और कौन तैयार करता था, इसका विस्तार के साथ विवेचन किया है। इसी तरह श्री गणेशदत्त शर्मा ने अपनी 'खादी का इतिहास' नामक हिन्दी पुस्तक में भी वेदकालीन वस्त्रविद्या विषयक चर्चा की है।

वैदिक काल में (१) माता अपने पुत्र के लिए और (२) पत्नी अपने पति के लिए वस्त्र तैयार करती थी, इस आशय के वाक्य हैं। वे वाक्य इस प्रकार हैं—

१ खादी की प्राचीनता की यथार्थ कल्पना आने के लिए निम्नलिखित पौराणिक और ऐतिहासिक काल की जानकारी होना आवश्यक है—

भगवान् रामचन्द्र—रामायण-काल	ईसवी सन् के पूर्व		५००० वर्ष
युधिष्ठिर—महाभारत-काल	,,		३००० वर्ष
गौतमबुद्ध	,,		६०० ,,
चन्द्रगुप्त	,,		३०० ,,
अशोक	,,		२५९ ,,
विक्रमादित्य	,,		५६ ,,
समुद्रगुप्त	,,	बाद	३०० ,,
हर्ष	,,	,,	६०० ,,

(१) वितन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयंति ॥

—ऋग्वेद ५।४७।६

अन्वयार्थ—मातरः असो पुत्राय धियः अपांसि वितन्वते वस्त्रा वयंति—अनेक मातायें इस लड़के के लिए सद्विचार का ताना तनती है और उसमें सत्कार्य का बाना डालकर वस्त्र बुनती हैं।

(२) ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तंतवः

वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुपस्पृशात्

—अथर्व १४।२।५१

अन्वयार्थ—ये अन्ता—कपडे का जो अन्तिम भाग है

यावती सिच—जो किनारे हैं

ये ओतव—जो बाना है

ये च तंतव—जो ताना है, इन सबको मिलाकर

यत् पत्नीभिः उतंवास—पत्नी ने जो कपड़ा बुना है

तत्—वह

नःस्योनं उपस्पृशात्—हमें सुख-स्पर्शदायी हो, अर्थात् उसका स्पर्श हमें सुखदायी हो।

'इस प्रकार के अनेक वचन देकर श्री सातवलेकर ने निम्न-लिखित निष्कर्ष निकाला है—

"इन सब वचनों से ऐसा मालूम पडता है कि वेद-काल में वेद में प्रदर्शित इच्छानुसार कपडे बुनने का काम हरेक घर में होता होगा, अर्थात् प्रत्येक घर में फुरसत के समय करने योग्य यही धन्धा है।" (पृष्ठ ६६)

इस समय आसाम में यह प्रथा अब भी प्रचलित है।[१] वहां यह बात रूढ ही हो गई है कि जिस लडकी को बुनना नहीं आता उसका विवाह ही न किया जाय। इसी तरह उडीसा प्रान्त के सम्भलपुर ज़िले में भी ऐसी ही एक प्रथा है।[२] अभीतक प्रचलित इस रूढि से वैदिक काल में घर-घर कपड़े बुनने की प्रथा होने से आश्चर्य मालूम होने की कोई बात

१ श्री रमेशचन्द्रदत्त भाग २, पृष्ठ १८२

२. 'हाथ की कताई-बुनाई' ,, ,, १८

नहीं है। और यह बिलकुल साफ है कि जिस हालत में बुनाई का काम इतनी तेज़ी से होता था उसमें उसके लिए आवश्यक सूत भी घर-घर काता जाता होना चाहिए।

रामायणकाल में राष्ट्र इतना सम्पन्न था कि रेशमी वस्त्र पहनने का फेशन अथवा रूढी ही बन गई थी।[१] सीता ने जिस समय 'नवोढा' के रूप में दशरथ के राजमहल में प्रवेश किया था उस समय वह रेशमी वस्त्र ही पहरे हुई थी और दशरथ की रानियों ने रेशमी वस्त्र पहर कर ही उसका स्वागत किया था। इसी तरह भरत जिस समय रामचन्द्रजी से भेंट करने के लिए गये उस समय उनकी पोशाक भी रेशमी ही थी। रावण सोने के समय भी रेशमी वस्त्र पहनता था। सीता जिस समय दण्डकारण्य में विरह-विह्वल बैठी थी, उस समय भी उसके शरीर पर रेशमी ही साड़ी थी। लेकिन यह तो हुई राजघरानों के स्त्री-पुरुषों की बात। यहां यह शंका होना स्वाभाविक ही है कि साधारण लोगों की पोशाक रेशमी न होगी; लेकिन रामायण के अयोध्याकाण्ड के वर्णन से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि उस समय साधारण दासी की साड़ी तक रेशमी ही थी।

महाभारत-काल में रुई के बारीक वस्त्रों के लिए तामिल देश प्रसिद्ध था। महाभारत में यह उल्लेख है कि राजसूय यज्ञ के समय चोल व पाण्ड्य राजाओं ने रुई के बारीक वस्त्र भेंट किये थे।[२]

मौर्य-काल में ऊनी वस्त्र सोलह प्रकार के होते थे।[३] उनमें पलंगपोश (तालिच्छा का), अंगरखे (बाराबाण), पतलून (संपुटिका), पड़दे (लम्बार), दुपट्टे (प्रच्छापट्ट) तथा ग़लीचे (सत्तालिका) आदि का

१ Samadar Economic Condition of ancient India पृष्ठ ७७

२ चिन्तामणि विनायक वैद्य कृत 'मध्ययुगीन भारत' भाग ३, पृष्ठ ४०९

३ इस बात का ऐतिहासिक प्रमाण है कि मिस्र में तीन हज़ार वर्ष पहले गाड़ी गई ममियों के शरीर पर के वस्त्र हिन्दुस्तान में तैयार हुए थे।

समावेश होता था। इसके सिवा दक्षिण, मदुरा, कोकण, कलिंग, काशी, बंग, कौशांबी तथा माहिष्मती के रुई के वस्त्र सर्वोत्कृष्ट होते थे।[1]

हम समझते है उन लोगों के लिए, जो यह समझते हैं कि कोकण में कपास अथवा रुई नही होती, उपरोक्त जानकारी बोधप्रद और उनकी विचारशक्ति और संशोधक बुद्धि को गति देनेवाली है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में इस बात का उल्लेख आया है कि नैपाल मे ऊन और रुई के वस्त्रों के सिवाय 'भिगीसी' और 'अपसारक' नामक वाटरप्रूफ़ वस्त्र भी तैयार होते थे।

मौर्यकाल मे सूत कातने की प्रथा ज़ोरों से प्रचलित थी। कौटिल्य-अर्थशास्त्र मे उसके सम्बन्ध मे सूक्ष्म जानकारी दी गई है। राज्यकार्य के सुव्यवस्थित, संघटित तथा सुचारु रूप से चलाने के लिए जो विविध प्रकार के विभाग खोले गये थे, उनमें सूत कातने और वस्त्र बुनने के कार्य पर देखरेख रखने वाला भी एक विभाग खोला गया था।

"बुनाई के काम पर नियुक्त अधिकारी को 'सूत्राध्यक्ष' कहा जाता था। उसे अपने-अपने विषयों के जानकार कारीगरों की सहायता से विभिन्न वनस्पतियों के तंतुओं से सूत कातने और उस सूत के वस्त्र तथा जिरह-बख्तर अथवा कवच तैयार करवाने और इसी तरह कुछ वनस्पतियों के तंतुओं से रस्सियां बंटवाने—बांस से भी रस्सी बनाई जाती होगी—आदि काम करवा लेना होता था।"

"ऊन कातने, तथा वृक्षों की छाल, घास, रामबाण आदि के तंतु निकालने और रुई का सूत कातने का काम अक्सर विधवाओं, जुर्माना देने मे असमर्थ अपराधिनी स्त्रियों, जोगिनियों, देवदासियों, वृद्धावस्था को प्राप्त राजदासियों तथा वेश्याओं से करवा लिया जाता था। उन्हें उनके काम की सुघडता और परिमाण के अनुसार उसका वेतन दिया जाता था। निश्चित छुट्टियों के दिनों मे अगर उनसे काम करवाना होता था तो उन्हे उस काम के बदले मे विशेष मुआवज़ा दिया जाता था और

१. सतीशकुमारदास कृत "The Economic History of ancient India" पृष्ठ १४५

काम के दिनों मे कम काम होने पर उनके वेतन मे से पैसे काट लिये जाते थे। वस्त्रादि बुनने का काम जिन विशेषज्ञ कारीगरो के सुपुर्द किया जाता था उन्हे उनके कौशल और उनके काम की कुशलता व सुघड़ता के अनुसार वेतन दिया जाता था। इस सब मज़दूर-वर्ग पर सूत्राध्यक्ष की कडी नज़र रहती थी।"[१]

उस समय के राजा-महाराजा प्रजा-हित मे कितने दक्ष थे और छोटी-छोटी बातों पर भी उनका कितना ध्यान था, यह बात उन्होंने ग़रीब स्त्रियों की उपजीविका के लिए जो व्यवस्था की थी उससे स्पष्ट दिखाई देजाती है। कौटिलीय अर्थशास्त्र मे स्पष्ट उल्लेख है कि—

"जो स्त्रियां घर से बाहर नहीं निकलती थीं, जिनके पति परदेश गये होते थे, अथवा जो पंगु अथवा कुंवारी होती थीं उन्हें जब कभी परिस्थितिवश आजीविका के लिए काम की आवश्यकता होती थी, तब सरकारी बुनाई-विभाग को ओर से नौकरनी भेजकर उन्हे उनकी हैसियत के अनुसार सूत कातने का काम देने की व्यवस्था थी।"[२]

हमारी अंग्रेज़ी सरकार हमारे करोड़ों बेकार और बुभुक्षित लोगो के लिए क्या व्यवस्था करती है?

हर्ष-काल मे रेशमी, ऊनी, रामबाण के तथा जंगली पशुओं की ऊन के वस्त्र, क्रमशः कौशेय, कम्बल, क्षौम और होलल अथवा होरल के नाम से जाने जाते थे।

महाभारत काल की तरह ही हर्ष-काल में भी भड़ौंच की रुई और उसके वस्त्र प्रसिद्ध थे।[३] उस प्रगति के सम्बन्ध मे श्री वैद्य अपने 'मध्ययुगीन भारत' के पहले भाग में लिखते हैं—

"उस समय हिन्दुस्तान मे रेशम, ऊन, और रुई के अत्यन्त बारीक वस्त्र बुनने की कला पूर्णता को पहुँची हुई थी, और आज जिस प्रकार

१ टिप्पणीसकृत "कौटिलीय अर्थशास्त्र-प्रदीप"

२ सतीशकुमार दास कृत "The Economic History of ancient India" पृष्ठ १४४-४५

३ सतीशकुमार दास कृत " " पृष्ठ २७५—७६

कुछ जगह—ढाका आदि मे—विलायती बारीक वस्त्र से भी अधिक बारीक वस्त्र बुने जाते है, उस तरह उस समय भी होते थे। राज्यश्री[१] के विवाह के अवसर पर लाये गये वस्त्रों का 'बाण' ने जो वर्णन किया है उसे देखने से इस बात की कल्पना होसकती है कि हर्ष के समय में वस्त्र बुनने की कला कितनी पूर्णता को पहुंच चुकी थी। बाण भट्ट कहता है—"राजमहल मे जहां-तहां क्षौमे (सन् के), दुकूलें (रेशम); लालातंतु (कोसाके) अंशुकें, नैत्रे (ये वस्त्र क्या होंगे, यह समझ मे नहीं आता) आदि विविध प्रकार के वस्त्र फैले हुए थे जो कि सांप की केंचुली के समान दमकनेवाले, फूंक से ही उडनेवाले, हाथ के स्पर्श-मात्र से ही बोध करानेवाले तथा इन्द्रधनुष के समान चित्र-विचित्र रंग के थे।"　　पृ० १३१

यहांतक स्थूल रूप से खादी की प्राचीनता और विविधता का वर्णन हुआ। आइये, अब उसकी कला पर दृष्टि डालें।

खादी की कला

नवीं सदी के आरम्भ मे 'सुलेमान' नाम का एक मुसलमान व्यापारी हिन्दुस्तान मे आया था। उसने यहां के वस्त्रों के सम्बन्ध मे लिखा है कि "इस देश मे रुई के वस्त्र इतने बारीक और कौशल के साथ तैयार किये जाते है कि उस वस्त्र का बना हुआ एक चोगा मुहर की अंगूठी मे होकर निकल सकता है।"[२]

"एक कारीगर जुलाहे ने एक अत्यन्त बारीक वस्त्र बांस की छोटी-सी नली मे डालकर अकबर बादशाह को भेंट किया था। वह वस्त्र इतना लम्बा चौडा था कि उससे एक हाथी अम्बारी सहित अच्छी तरह ढक सकता था।"[३]

सुप्रसिद्ध विदेशी यात्री टेवर्नियर अत्यन्त उत्साह के साथ लिखता

१ हर्ष की बहन

२ सूर्यनारायणराव कृत "History of the never to be forgotten Empire' पृष्ठ ३००.

३ गणेशदत्त शर्मा कृत 'खादी का इतिहास' पृष्ठ ३९

है, "एक ईरानी एलची ने मोतियों से गुंथा एक नारियल अपने राजा को भेंट दिया जो शुतुरमुर्ग के अण्डे के बराबर था। उसे फोड़ने पर उसमें से साठ हाथ लम्बी एक बारीक पगड़ी निकली।"[१]

"टेलर साहब ने सन् १८४६ में खादी का एक वस्त्र देखा था। वह बीस गज लम्बा और पैंतालीस इंच चौड़ा था; लेकिन उसका वज़न था सिर्फ सात छटांक अथवा पैंतीस तोले।" उसी तरह "उन्होंने ढाका में इतना बारीक सूत देखा था कि उसकी लम्बाई तो १३४९ गज़ थी, लेकिन उसका वज़न था सिर्फ २२ ग्रेन! आजकल की पद्धति से हिसाब करने पर उसका नम्बर ५२४ निकलता है।"[२]

औरंगज़ेब की लड़की शाहज़ादी ज़ेबुन्निसा एक समय इतना बारीक वस्त्र पहने हुई थी कि उसमें से उसका शरीर नंगा-सा दिखाई देता था। लड़की को ऐसी स्थिति में देखकर औरंगज़ेब उसपर सख़्त नाराज़ हुआ। इसपर उसने जवाब दिया, "शाहंशाह, मैं अपने जिस्म पर सात कपड़े पहने हुए हूं।' यह बात अत्यन्त प्रसिद्ध है।[३]

ठीक इसी तरह का एक दूसरा उदाहरण है। इतिहास-लेखक मि० हण्टर लिखते हैं—"कलिंग देश के राजा ने अयोध्या के राजा को एक रेशमी वस्त्र भेजा था। राजकन्या के उसे पहिनने पर उसपर यह आक्षेप किया गया था कि वह कहीं नग्न तो नहीं है।"[४]

कपड़े की बारीकी के सम्बन्ध में ढाका अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। रे० वार्ड ने अपना मत व्यक्त किया है कि ढाका की मलमल तैयार करने में हिन्दू कारीगरों का कौशल आश्चर्यजनक है। कुछ कुटुम्बों में वह इतनी अनुपम बनाई जाती है कि एक थान बुनने में चार महीने

१ Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ २९

२ "खादी का इतिहास" पृष्ठ ७०

३ Essay on Handspinning and Weaving

४ सतीशकुमारदास कृत "The Economic History of Ancient India' पृष्ठ २७५

लग जाते है। वह थान चारसौ अथवा पांचसौ रुपयों में बेचा जाता है। वह मलमल इतनी बारीक होती थी कि उसे घास पर फैलाने पर यदि ओस पड़ जाय तो वह दिखाई तक नहीं देती थी।"[1]

"प्राचीन और मध्ययुगीन भारत" के लेखक मि० मेनिंग अपनी पुस्तक में लिखते है—"ढाका की मलमल इतनी बारीक तैयार होती थी कि उन्नीसवीं सदी की मशीनें उतना बारीक सूत निकाल नहीं सकी थीं।"[2]

'एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' मे भी इसी आशय के विचार प्रदर्शित किये गये हैं—

"हिन्दुस्तान मे हाथ के करघे पर बुने हुए रुई के अत्यन्त सुन्दर वस्त्र बारीकी की दृष्टि से इतने पूर्णावस्था को पहुंच चुके है कि अर्वाचीन यूरोप मे मशीन के आश्चर्यजनक साधनों से भी उतने सुन्दर वस्त्र तैयार हो नहीं सकते।"[3]

यन्त्रशास्त्र विशेषज्ञ मि० क्लेअर ने इंग्लैण्ड की मिलों के सूत से ढाका के हाथ-कते सूत की तुलना करते हुए निम्नलिखित उद्गार निकाले है—

"इंग्लैण्ड में मिलों का सूत इतना बारीक होता है कि एक पाउण्ड सूत मे ३३० अट्टी चढती हैं। इनमें से प्रत्येक अट्टी की लम्बाई ८४० गज़ होती है। कुल सूत १६९ मील तक फैलेगा। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र—खुर्दबीन— की सहायता से इस धागे का व्यास निकालने पर वह एक इन्च का ४८० वां हिस्सा ($\frac{1}{480}$") ठहरता है। लेकिन हिन्दुस्तान में हिन्दुओ द्वारा हाथ से कते हुए सूत का इसी प्रकार माप निकालने पर उसका व्यास एक इ्ंच का एक हज़ारवां ($\frac{1}{1000}$") ठहरता है। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दुस्तान में हाथ-कते सूत के चार धागे लेकर एकसाथ वट दिये जॉय तव इंग्लैण्ड की मशीन के सूत के वरावर मोटे होंगे।"[4]

१ तालचेरकर के "Charkha Yarn" पृष्ठ ७ से

२ भाग १, पृष्ठ ३५९ "खादी का इतिहास" पृष्ठ ३९ से

३ पृष्ठ ४४६

४ तालचेरकृत "Charkha Yarn" पृष्ठ ३६ से

अर्थात् श्री तालचरेकर लिखते हैं कि "भारतीय कारीगरों का हाथ का काता हुआ सूत इंग्लैण्ड के ३३० नम्बर के सूत से चौगुना वारीक होता था।"[१]

नीचे के अंकों से यह स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि ढाका की मलमल और फ्रैन्च तथा इंग्लिश मलमल की प्रत्यक्ष तुलना की जाने पर बारीकी, बट, पोत, टिकाऊपन और कस मे दोनों ही यूरोपियन राष्ट्रों की मलमल ढाके की मलमल की बराबरी नहीं कर सकी[२]—

वर्णन	धागे का व्यास एक इञ्च का भाग	की संख्या प्रत्येक इञ्च में
फ्रैन्च मलमल (अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी)	·००१६	६८·८
इंग्लिश मलमल (सन् १८५१; ४४० नम्बर)	·००१८	५६·६
ढाका की मलमल (अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी १८६२)	·००१५६२५	८०·७
ढाका की मलमल (भारतीय अजायबघर)	·००१३३७५	११०·१

सन् १६१७–१८ में 'सर थामस रो' के धर्मगुरु एडमण्डटेरी नौ महीने अहमदाबाद ठहरे थे। बारीक कपड़े पर रंग व छपाई के काम के सम्बन्ध में वह अपने यात्रा-वर्णन में लिखते हैं—"यहां के लोग रुई से भिन्न-भिन्न प्रकार के कपडे तैयार करते है। इन कपड़ों को वे रंगते हैं और उनपर सुन्दर आकार-प्रकार के फूल और आकृति छापते हैं। ये रंग इतने पक्के होते हैं कि कैसे ही पानी मे डालने पर भी वे नहीं उतरते। छापने की इस सुन्दर कला में ये लोग इतने प्रवीण होगये हैं कि गांव के और दूर-दूर के लोग इनसे छींटे ख़रीदने के लिए अपने साथ पैसे लेकर इनके पास आते हैं।[३]

हिन्दुस्तान से बढिया बारीक कपडे कितनी अधिक तादाद में बाहरी

१ 'Charkha Yarn' पृष्ठ ८

२ Essay on Handspinning and weaving पृष्ठ ३६

३ "नवजीवन", ७ अक्तूबर १९२८.

देशों को जाते थे, इस सम्बन्ध में टेवर्नियर लिखता है—"सन् १६८२ में अकेले सूरत बन्दर से १४,३६,००० और सारे भारतवर्ष से ३०,००,००० से अधिक थान विलायत के लिए रवाना हुए।"[१]

यह बात नहीं है कि केवल रुई के वस्त्रों के बारे में ही हिन्दुस्तान ने इतनी प्रगति की थी, रेशमी माल भी भारी तादाद में तैयार होता था। हिन्दुस्तान में तैयार होनेवाले माल के सम्बन्ध मे टेवर्नियर ने सिर्फ़ क़ासिमबाज़ार का ही वर्णन किया है। वह लिखता है—"बंगाल के इस गांव से २२ लाख पाउण्ड वज़न की, रेशमी कपड़े की, २२ हज़ार गांठें विदेश जाती हैं। सोने-चांदी के कलाबत्तू का काम करे हुए रेशम के ग़लीचे आदि सैकड़ों तरह की अत्यन्त सुन्दर वस्तुएँ भारत मे तैयार होती हैं। ढाका की मलमल तो इतनी अपूर्व बनती है कि, कई बार तो वह सोने-चांदी के भाव बिकती है।"[२]

इसी तरह बर्नियर कहता है—"बंगाल में इतना रेशमी माल तैयार होता है कि वह मुग़ल साम्राज्य की ही नहीं, बल्कि यूरोपियन साम्राज्य तक की आवश्यकता पूरी कर सकता है।"[३]

रेशमी माल के लिए बंगाल मे मुर्शिदाबाद अत्यन्त प्रसिद्ध था और अब भी है। इसी तरह बनारस, दक्षिण हैदराबाद, मैसूर और कच्छ भी प्रसिद्ध थे। पूना, सूरत और थाना का रेशमी माल भी अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध था। रेशम पर विविध रंगों और बेलबूटों के नक़्क़ाशीदार फूल और बेलबूटे काढ़ने के लिए बनारस और अहमदाबाद के शहर प्रसिद्ध थे।[४]

आइये, अब ऊनी माल का कुछ दिग्दर्शन करें।

"काश्मीर के शाल, पंजाब के पट्टू, मैसूर की बिना जोड़ की धुस्सी और चोगे तथा नेपाल और तिब्बत का ऊनी माल वर्णन करने योग्य था।"[५]

१ "नवजीवन", ७ अक्तूबर १९२८
२ 'हिन्दी स्वराज्याची कैफियत' पृष्ठ २१
३. "खादी का इतिहास" पृष्ठ ७३
४ आर पल्लिन कृत "Sketches on Indian Economics" पृष्ठ १५७
५ " " " पृष्ठ १५८

हिन्दुस्तान के दुशालो के सम्बन्ध मे सर थामस मनरो का मत है कि उक्त शाल लगातार सात वर्ष तक व्यवहार मे लाने पर भी उसमे ज़रा भी अन्तर नहीं पडा। भारतीय शाल की नक़ल करके बनाये गये विलायती शाल के सम्बन्ध मे उन्होने कहा था—"मुझे वैसा शाल कोई भेट करे तो भी मै वह कदापि इस्तेमाल नहीं करूंगा।'

काश्मीर के दुशालो की अभी भी ख्याति है। पाठको को यह जानकर आश्चर्य होगा कि सन् १८४६ मे अंग्रेज़ों की काश्मीर राज्य से जो सन्धि हुई उसमे एक शर्त्त यह भी रक्खी गई थी कि काश्मीर राज्य प्रतिवर्ष काश्मीर का बना हुआ एक शाल भारत-सम्राट को भेजता रहेगा। यह शाल करीब-करीब आठ हज़ार रुपये का होता है। इसके सिवा तीन ऊनी रूमाल भी शाल के साथ भेजने पडते हैं। यह कहने की जरूरत नहीं कि ये भी उसी मान से कीमती होते है।²

१ दत्त, भाग २ पृष्ठ ४१

२ "खादी का इतिहास" पृष्ठ ८०

: ३ :

कपड़े का व्यवसाय कैसे मिटाया?

वैदिक काल से उन्नीसवीं सदी तक वस्त्रों के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान ने कितनी प्रगति की थी, यह हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। इस अध्याय में उक्त वस्त्र-व्यवसाय का किस प्रकार गला घोंटा गया उसका हृदय-द्रावक इतिहास बताना है। इसके लिए क्रमशः नीचे लिखे मुद्दों का विवेचन करना है—

(१) भारतीय वस्त्रों का प्रसार और व्यापार,
(२) उस माल की इंग्लैण्ड में लोकप्रियता,
(३) उसपर ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा उठाया गया मुनाफ़ा,
(४) ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा—
  (अ) प्रजा पर किया गया जुल्म,
  (आ) जुलाहों के साथ की गई ज्यादतियाँ,
  (इ) नवाबों को किस तरह लूटा गया?
(५) इंग्लैण्ड का संरक्षक कर तथा भारतीय व्यापार पर उसका परिणाम,
(६) कस्टम-विभाग का जुल्म,
(७) 'मुताफ़ा' कर का जुल्म,
(८) अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी, अजायबघर, आदि।

(१) भारतीय वस्त्र का प्रसार और व्यवसाय

अत्यन्त प्राचीन-काल से हिन्दुस्तान की मलमल और दूसरा सूती माल खुश्की और जलमार्ग दोनों से एशियाखण्ड के पश्चिम भाग, सीरिया, बेबिलोन, ईरान, चीन, जावा, पेगू, मलाया, ग्रीस, रोम, तथा मिस्र आदि देशों को जाता था।[१]

सिन्धु नदी के मुहाने पर का बार्बरीकान, खंभायत की खाड़ी, उज्जैन,

१ Essay on Handspinning and Weaving, पृष्ठ १५

पैठन, देवगिरी, सूरत, नवसारी, कन्याकुमारी, मछलीपट्टण तथा कावेरी-पट्टण आदि इस माल का निर्यात करनेवाले भारत के बड़े बन्दर और शहर थे।[१] भारत के इस माल के १५० प्रकार होने और उसके वेहद सस्ते और टिकाऊपन के कारण वह सर्वत्र लोकप्रिय हो गया था, विशेषतः उसने विलायत के बाज़ार पर कब्ज़ा कर लिया था।[२]

(२) इंग्लैण्ड में भारतीय माल की लोकप्रियता

बंगाल का वर्णन करते हुए लार्ड मेकाले कहते हैं—"लन्दन और पेरिस की स्त्रियाँ बंगाल के करघो पर तैयार होनेवाले कोमल वस्त्रों से विभूषित थीं।" इसी तरह अठारहवीं सदी के इंग्लैण्ड के इतिहास का लेखक लिके अपने ग्रन्थ के दूसरे भाग मे कहता है—"सन् १६८८ की राज्यक्रान्ति के बाद जब महारानी मेरी ने अपने पतिसहित इंग्लैण्ड मे प्रवेश किया उस समय उसकी पोशाक पर से ऐसा मालूम होता था मानो हिन्दुस्तान के रंगीन माल ने उसे आश्चर्य-मुग्ध कर दिया है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि समाज में उसी माल का झपाटे से प्रचार हुआ।[३] इन सस्ती और सुन्दर छीटों और मलमल के तेज़ी से लोकप्रिय होने के कारण सत्रहवीं सदी के अंत मे इंग्लैण्ड का ऊन और रेशम का व्यवसाय तले बैठ गया। इस कारण उसने सन् १७०० और १७२१ में पार्लमेण्ट मे कानून पास करवा कर हिन्दुस्तान के छपे हुए और रंगीन माल पर ज़बर्दस्त चुंगी लगवाई और वैसे माल की आयात बन्द करवाई।[४]

इंग्लैण्ड में हिन्दुस्तान के माल की लोकप्रियता देखकर वहाँ के सुप्रसिद्ध लेखक डेनियल डीफो का हृदय तिलमिला उठा और इसलिए

१ Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ, १६

२ " " पृष्ठ ४५—५१

३ बी डी बसुकृत "Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ४ से

४ 'लिके' (Leckay) भाग २ पृष्ठ २५५-५६, बी डी बसुकृत Ruin of Indian Trade and Industries पृष्ठ ४ से उद्धृत

उसने उक्त माल लेनेवाले स्त्री-पुरुषों की ख़ासी मरम्मत करते हुए लिखा—"पहले जिन छींटों और रुई के रंगीन वस्त्रों को हम अपनी चद्दरों और पलंगपोश के काम मे लाते थे अथवा जिस माल को पहले साधारण पुरुष एवं लडके व्यवहार मे लाते थे, उसी माल को अब कुलीन स्त्रियों ने व्यवहार करने की प्रथा डाली है। जिस माल को पहले हम ताजपोशी होने के समय काम में लाते थे वही अब हमारे सिर पर चढने लगा है। बात इतने पर ही समाप्त नहीं होती, बल्कि हमारे शयनागृह, दीवानख़ाने और गद्दी-तकिये आदि सब पर हिन्दुस्तान का माल सुशोभित होने लगा है। हिन्दुस्तान से जो माल यहाँ आता है वह भारी नफ़ा लेने पर भी हमारे माल की अपेक्षा सस्ता ही पडता है।[1]

(३) भारतीय वस्त्र पर लिया जानेवाला मुनाफ़ा

अब हम यह देखेंगे कि भारतीय माल पर ईस्टइण्डिया कम्पनी कितना नफ़ा लेती थी।

"सूती वस्त्र के जिस थान की कीमत ७ शिलिंग पडती थी वह २० शिलिंग में बेचा जाता था।"[2]

लियाल नामक एक अंग्रेज़ सिविलियन लिखता है—"हिन्दुस्तान पर हमारे शासन करने का मुख्य कारण यही है कि उसके व्यापार से हमें जबर्दस्त नफ़ा मिलता है। सन् १६६२ में हम हिन्दुस्तान से ३,४,६,२८८ पौण्ड का माल लाये और वह विलायत में १६,१४,६०० पौण्ड मे बिका।"[3]

एक इतिहास-लेखक ने लिखा है कि "सन् १६७६ में ईस्टइण्डिया कम्पनी के हिस्सेदारों को अपने एक हिस्से से जितना मुनाफा (बोनस) मिला, और जिसके दो हिस्से थे उन्हें ५ वर्ष तक बीस प्रतिशत मुनाफ़ा मुनाफा मिला।"[4]

१ Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ५०-५१से उद्धृत
२ " " " " पृष्ठ ४६
३ गणपति ऐयर कृत "Indian Industrialism" पृष्ठ ६
४ Essay on Handspinning and Weaving पृष्ठ ४७

सर चार्ल्स डाविनेट लिखते हैं—"पेरू और मेक्सिको प्रदेशो पर शासन करने से जो राजकीय आय होती है उससे ६० लाख पौण्ड अधिक आय भारत के व्यापार से होती है।[1]

यह तो हुआ ईस्टइण्डिया कम्पनी का मुनाफा। अब इस बात का विवेचन करना है कि उस कम्पनी के नौकरों ने किस तरह (अ) जनता पर अत्याचार कर, (आ) जुलाहो को सता कर और (इ) नवाबो को लूट कर अपनी तौंद भरो। इससे पहले इस बात की कल्पना आवश्यक है कि ईस्टइण्डिया कम्पनी के जो नौकर हिन्दुस्तान में आते थे उनकी उस काम के लायक योग्यता कितनी होती थी और उनका सामाजिक एवम् नैतिक दर्जा क्या होता था। लार्ड मेकाले ने अपनी सजीव भाषा मे लिखा है—

"कम्पनी के कर्मचारी बहुतकर विलायत के नवसिखिये होते थे उनमे नीतिमत्ता मामूली होती थी। कम्पनी के मुखियाओं में भी उदारता एवम् सार्वजनिक हित करने की भावना क्वचित ही दिखाई देती थी। उनके दिमाग़ मे यही विचार उठते रहते थे कि हिन्दुस्तान में जाकर हम कितने लाख रुपये पैदा करेंगे अथवा विजित राष्ट्र की अभागी जनता की छाती पर हम अपने कितने लडकों, भतीजों और भानजो का पोषण करेंगे। भारतीय जनता के पास से लाख-दोलाख हडप कर लाना एकाध लार्ड की लडकी से विवाह सम्बन्ध स्थापित करना, एकाध पुराना गॉव ख़रीदना, अथवा शहर के किसी प्रमुख स्थान पर नाच-जलसे करना आदि यही सब कम्पनी के कर्मचारियों का मक़सद था।[2]

इस दर्जे के कम्पनी के कर्मचारियो का जनता के साथ किस तरह का बरताव था वह देखिये—

(४ अ) जनता पर अत्याचार

बंगाल के नवाबों ने सिर्फ ईस्टइण्डिया कम्पनी को ही किसी प्रकार की

१ गणपति ऐयर कृत Indian Industrialism पृष्ठ ४

१ "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ५७ से उद्धृत

ज़कात—चुंगी—न देकर आयात-निर्यात व्यापार करने की इजाज़त दी थी; किन्तु कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने निजी व्यापार तक में उक्त रिआयत का उपयोग किया।[१]

बंगाल के नवाब मीरकासिम ने कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार के सम्बन्ध में कम्पनी के गवर्नर से नीचे लिखेनुसार शिकायत की थी—

"कम्पनी के कर्मचारी प्रत्येक परगने, गाँव और कारखाने में जाते है और कारीगर और व्यापारियों को माल की क़ीमत की चौथाई रकम देकर ज़बर्दस्ती माल ले जाते है और जिस विलायती माल की कीमत एक रुपया होती है उसे जनता को पाँच रुपये में बेचने के लिए उसपर अत्याचार और जुल्म करते हैं। कम्पनी के कर्मचारियों की इस धींगा-मस्ती के कारण मेरे अफ़सर जनता के साथ न्याय नहीं कर पाते और न अनुशासन और क़ानून का ही पालन कर पाते हैं। कम्पनी के कर्मचारियों के इन अत्याचारों के कारण देश की स्थिति दुःखमय होने के सिवा मेरी आय में भी २५ लाख की कमी होगई है।[२]

सार्जेण्ट ब्रेगो ने २६ मई १७६२ को कम्पनी के डाइरेक्टरों को जो एक पत्र लिखा था उसमें वह लिखते हैं—

"कम्पनी का जो गुमाश्ता ज़िले में माल की ख़रीद-बिक्री के लिए जाता है, वह इसके साथ ही वहां प्रत्येक निवासी को अपना माल ख़रीदने अथवा उसका माल अपने को ही बेचने के लिए बाधित करना अपना प्रवाह-पतित कर्तव्य ही समझता है। अगर कोई उसके कहने के मुताबिक ख़रीद-बिक्री नहीं करता तो तुरन्त ही उसे कोड़े मारने अथवा क़ैद करने की सज़ा मे से कोई सी भी सज़ा सुनादी जाती है। जो लोग उसकी मर्ज़ी के मुताबिक माल की ख़रीद-बिक्री करते हैं उनपर फिर एक दूसरी शर्त यह लाददी जाती है कि उसे हर तरह के माल की ख़रीद-बिक्री उसी से करनी चाहिए। वह जो माल ख़रीदता है, उसके लिए वह दूसरे

१. दत्त—भाग २, पृष्ठ १

२ दत्त, भाग २, पृष्ठ ६

व्यापारी उसकी जो कीमत देते हैं उससे बहुत कम कीमत देता है और बहुत बार वह कीमत देने से साफ इनकार तक कर देता है। मैं अगर उसके काम मे दखल देता हूँ तो वह फौरन ही झगडे के लिए तैयार हो जाता है। कम्पनी के कर्मचारियों के दैनिक अत्याचारों के इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। ऐसे अत्याचारों का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ है कि बंगाल ज़िले के एक अत्यन्त समृद्ध शहर बाकरगंज के बहुत से लोग शहर छोडकर चले जा रहे हैं। प्रत्येक दिन वहां के निवासी अपने लिए किसी विशेष सुरक्षित स्थान की तलाश मे रहते हैं। यहां के बाज़ार में जो विपुल पदार्थ बिक्री के लिए आते थे, कम्पनी के इन गुमाश्तों की कम्पनी के पट्टेदारो तक को ग़रीब लोगों पर ज़ुल्म करने की छूट होने के कारण, उसमे अब कुछ भी माल नहीं आता। ज़मीदारो को यह धमकी दी जाती है कि अगर वे इन लोगो को जनता पर ज़ुल्म करने से रोकने का प्रयत्न करेंगे तो उनके साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जायगा। पहले जनता को सरकारी अदालत से न्याय मिलता था; लेकिन अब प्रत्येक गुमाश्ता न्यायाधीश बन बैठा है और इसलिए प्रत्येक गुमाश्ते का घर ही अदालत बन गया है। वे ज़मीदारों तक को सज़ा देते हैं और उन्होंने हमारे पट्टेदारों से झगडा किया, अथवा जो वस्तु ख़ुद कम्पनी के गुमाश्तों के लोग ही लेगये होंगे उनकी चोरी करने आदि के झूठे इलज़ाम उनपर लगाकर उनसे पैसे ऐंठते हैं।"[1]

(४ आ) जुलाहों पर सख्तियां

कम्पनी के कर्मचारियों ने जिस पद्धति से कारखानों पर क़ब्ज़ा जमाया, वह भी इतनी ही अत्याचारी थी। विलियम बोल्ट्स नामक एक अंग्रेज़ व्यापारी ने अपनी आंखोदेखी बात का जो वर्णन किया है वह, उसी के शब्दों मे इस प्रकार है—

"कम्पनी का ख़ुद हिन्दुस्तान में और इंग्लैण्ड के साथ जो व्यापार चलता है, वह, अगर सच कहा जाय तो अत्याचारों की एक शृंखला ही है। देश के जुलाहो और कारखानेदारों को इन अत्याचारों का अनिष्ट

१ दत्त, भाग २, पृष्ठ ७

परिणाम अत्यन्त तीव्रता के साथ अनुभव करना पड़ता है। देश में तैयार होनेवाली प्रत्येक वस्तु का एक ही मालिक बन बैठता है और अंग्रेज़ लोग अपने बनियों और कृष्णवर्गीय गुमाश्तों की सलाह से अपने मनमानी तौर पर यह फ़ैसला कर डालते हैं कि प्रत्येक कारखानेदार को उसे कितना माल तैयार करके देना और उसकी कितनी कीमत लेनी चाहिए। गुमाश्ता कारखाने के केन्द्रस्थान पर पहुँचकर अपने ठहरने का एक स्थान निश्चित करता है और उसे 'अदालत' कहता है। वहां जुलाहों के आने पर गुमाश्ता अपने पट्टेदारों और हलकारों अथवा चपरासियों की मार्फत उन्हें इस आशय के इकरारनामे पर दस्तखत करने के लिए मजबूर करता है कि 'हम आपको अमुक समय इतना माल देंगे।' और इसके लिए उन्हें कुछ पैसे पेशगी दे दिये जाते हैं। इसके लिए सामान्यतः ग़रीब जुलाहों की सम्मति लेना ज़रूरी नहीं समझा जाता, क्योंकि गुमाश्ते उन्हें मनमानी दस्तावेज़ पर दस्तखत करने के लिए बाधित करते और अगर वे पेशगी दिये जानेवाले पैसे लेने से इनकार करते हैं तो जबर्दस्ती उनकी कमर से बांध दिये जाते और फिर कोड़े मारकर उन्हें भगा दिया जाता है।"

"इन जुलाहों में से बहुतसों के नाम सामान्यतः गुमाश्तों के रजिस्टर में दर्ज होते हैं। उन्हें अपने निश्चित गुमाश्ते के सिवा किसी दूसरे गुमाश्ते का काम करने की इजाज़त नहीं होती। उस गुमाश्ते की बदली हो जाने पर उसके रजिस्टर में यह नोट कर दिया जाता था कि उसके बाद आने वाले गुमाश्ते के इतने-इतने जुलाहे गुलाम हैं। इस नोट करने का यही उद्देश्य होता था कि यह बाद में आनेवाला गुमाश्ता भी पहले गुमाश्ते की तरह अत्याचार और लूट कर सके। इस विभाग में जो लूट होती है वह कल्पनातीत है। इस सब लूट का अन्तिम परिणाम जुलाहों की लूट होता है, क्योंकि बाजार में उनके थान जिस कीमत में बेचे जाते थे गुमाश्ते उसमें पन्द्रह फीसदी और कहीं-कहीं चालीस फीसदी तक कम कीमत ठहराते हैं। थान की जाँच करने वाले जाँचनदार को क़ीमत कम करने के सलाह-मशविरे में शामिल रक्खा जाता था। जुलाहों

पर ज़बर्दस्ती लादे गये करार-मुचलके का अगर उनसे पालन न हो सके तो उनका माल ज़ब्त कर लिया जाता है और नुक़सान की भरपाई के लिए वहाँ-का-वहीं बेच दिया जाता है। कच्चा रेशम लपेटनेवाले 'नाडगोड़' पर भी इसी तरह के अत्याचार होते थे, इसलिए दुबारा इन ज़ुल्मों से बचने के लिए उन्होंने अपने अंगूठे ही काट लिए, ऐसे कितने ही उदाहरण हम जानते हैं।

"कारख़ानेदारों में के बहुत-से लोग खेती भी करते थे, इसलिए उपरोक्त अत्याचारों के कारण केवल उद्योग-धन्दे ही डूबे हों, सो बात नहीं, बल्कि खेती पर भी उनका परिणाम स्पष्ट दिखाई देता है। गुमाश्तों के अत्याचारों के कारण कारख़ानेदारों के लिए अपनी खेती में सुधार या तरक्की करना अथवा लगान देना अशक्य हो गया। उनके इस दूसरे अपराध के लिए माल अथवा रेवेन्यू अफसर उन्हें और सज़ा देते और कई बार इस पर भर्ती के ज़ुल्मों से बचने के लिए कारखानेदारों को अपनी खेती का लगान चुकाने के लिए अपने लड़के बेचने अथवा देश-त्याग करने तक के लिए मजबूर होना पड़ा है।"[१]

कम्पनी के जो नौकर जुलाहों से अपना माल जल्द देने के लिए तकाज़ा करने जाते थे, उनपर कितना ज़ुल्म होता था, इस सम्बन्ध में पार्लमेण्टरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए सर थॉमस मनरो कहते हैं—

"कम्पनी के नौकर 'वीर महाल' ज़िले में मुखिया-मुखिया जुलाहों को इकट्ठे करते थे और जबतक वे जुलाहे इस आशय के इक़रारनामे पर दस्तख़त अथवा उनपर अपनी स्वीकृति नहीं कर देते थे कि 'हम सिर्फ कम्पनी को ही अपना माल बेचेंगे' तबतक उन्हें हवालात में बंद रक्खा जाता था। जो जुलाहा 'साई' अथवा पेशगी ले लेता था, वह शायद ही कभी अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो सकता था। उससे माल तैयार करवा लेने के लिए एक चपरासी उसके घर पर धरना देकर बैठ जाता था और अगर वह माल तैयार करने में देर कर देता था तो अदालत से वह

१ दत्त, भाग २, पृष्ठ १०

सज़ावार होता था। चपरासी के धरना देकर बैठने के दिन से ही जुलाहे को उसे एक आना रोज़ तलवाना देना पड़ता था।[१] इसके सिवा चपरासी के पास एक मज़बूत लट्ठ रहता था। जुलाहे को कई बार उसका भी प्रसाद मिलता रहता था। जुलाहों पर जुर्माना होने पर उसकी वसूली के लिए उनके बर्तन तक ज़ब्त कर लिए जाते थे। इस तरह गाँव-गाँव के सब जुलाहों को कम्पनी के कारख़ाने में ग़ुलामी करनी पड़ती थी।"[२]

कम्पनी के कर्मचारियों के सम्बन्ध में लार्ड मेकाले 'लार्ड क्लाइव' नामक अपने निबन्ध में लिखते हैं—

"अपनी ख़ुद की तोंद भरने के लिए कम्पनी के नौकरों ने देश के सब अन्दरूनी व्यापार पर क़ब्ज़ा कर लिया। वे इस देश के लोगों के साथ ज़बर्दस्ती करके अपना विलायती माल उन्हें महँगे भाव से बेचते और उनका माल सस्ते भाव में ख़रीदते। वे देश के न्यायाधीश, पुलिस और मुल्की अधिकारियों का अपमान करते। लेकिन इसके लिए कोई भी उनके कान नहीं ऐंठता था। उन्होंने कुछ स्थानीय गुर्गे पाल रक्खे थे और उनके ज़रिये प्रान्त भर में अँधेर मचाकर भयङ्कर वातावरण पैदा कर दिया था। कम्पनी के ब्रिटिश कारख़ानेदार को, उसके प्रत्येक नौकर को, उसके सब अधिकार प्राप्त थे। इस प्रकार कलकत्ते में कंपनी के कर्मचारियों ने झपाटे के साथ अटूट सम्पत्ति पैदा करली। लेकिन दूसरी तरफ़ प्रान्त की तीन करोड़ जनता धूल में मिलाई! यह ठीक है कि इस ओर की जनता ज़ुल्म सहने की आदी थी। पर उसने इस तरह का ज़ुल्म इससे पहले कभी नहीं सहा था। उन्होंने यह अनुभव किया कि सिराजुद्दौला के शरीर की अपेक्षा कम्पनी की चिट्टी उंगली अत्यन्त भारी है। पहले जनता के पास कम-से-कम एक साधन यह था कि अगर सरकार का ज़ुल्म उसके लिए असह्य हो जाता था तो वह उस सरकार के ख़िलाफ़ बग़ावत कर उसे उखाड़ फैंकती थी। लेकिन अंग्रेज़ सरकार सुधार का ढिंढोरा पीटकर सर्वथा जंगली राज्यों की पद्धति

१ एक आने का मतलब होता था एक मनुष्य के भोजन के लिए उस समय जितने पैसे खर्च होते थे उसका दस गुना।

२ दत्त, पृष्ठ ४५

का अवलम्बन करती थी, इससे जनता उसे हिला नहीं सकती थी।"[१]

(४ ई) कम्पनी के कर्मचारियों ने नवाबों को कैसे लूटा ?

ऊपर कम्पनी के सामान्य कर्मचारियों के ही जुल्मो और लूट का विवरण दिया गया है। अब हम यह देखेंगे कि कम्पनी के बड़े-बड़े अधिकारी बड़े-बड़े नवाबों को किस तरह लूटते थे—

"सन् १७५७ में पलासी के युद्ध के बाद जब मीरज़ाफर को गद्दी पर बैठाया गया तब ब्रिटिश अधिकारी और फौज दोनों को कुल मिलाकर १,८५,७८,६२५ रु० मिले थे। इस रक़म में से अकेले क्लाइव को ही ४,७२,५०० रु० मिले और इसके सिवा भारी पैदावार की ख़ासी जागीर मिली सो अलग।"[२]

हमारा शिवाजी तो लुटेरा था! लेकिन हिन्दुस्तान मे अंग्रेज़ो का राज्य स्थापित करने वाले यह लार्ड क्लाइव साहब मानो नीति के पुतले ही थे!!

लार्ड क्लाइव साहब के इस कार्य के लिए जब उनसे कैफियत तलब की गई तो उन्होंने यह कहकर उसका समर्थन किया कि अगर नवाब की उदारता के कारण लक्ष्मी स्वभावतः ही मेरे घर चली आई तो क्या मैं उसका निरादर करता? इसके सिवा इतने अर्से तक कम्पनी की नौकरी में अपने जीवन को ख़तरे मे डालते और उसका किसी तरह का नुक़सान न होने देते हुए अगर अनायास ही मुझे पैसे प्राप्त करने का मौका मिल गया तो मैं नहीं समझता कि कम्पनी यह चाहती कि मैं उस मौक़े को गंवा देता।[३] कितना सुन्दर समर्थन है यह!

अकेले लार्ड क्लाइव साहब पर ही लक्ष्मी ने कृपा की हो, सो बात नहीं, कम्पनी के दूसरे अधिकारियों पर भी उसने अपनी कृपा दृष्टि की थी!

१ दादाभाई कृत "Poverty and un-British Rule in India" पृ० ५९९ से

२. दत्त, भाग २, पृष्ठ १५-१६

३ दत्त, भाग २, पृष्ठ १६

सन् १७६० में जिस समय मीरकासिम को नवाब बनाया गया, उस समय ब्रिटिश अधिकारियों को ३०,०४,०३५ रु० नज़राना मिला, इसमें से ८,७४,११५ रु० अकेले वैंज़िटार्ट ने लिए।[१]

सन् १७६३ में जब मीरजाफ़र को फिर गद्दी पर बिठाया गया तब कम्पनी के अधिकारियों को ७५,०२,४७५ रु० नजराना दिया।[१]

सन् १७६५ मे जब नाज़िमुद्दौला को गद्दी पर बिठाया गया तब फिर ३४,५५,२५० रु० नज़राने के तौर पर मिले।[१]

आठ वर्षों में नज़राने के तौर पर वसूल किये गये ३,२५,४४,१७५ रुपयों के सिवा गद्दी पर बिठाने के हक जैसे कुछ और हक पेश कर ५,६५,६२,४१५ रु० और वसूल किये गये।[१]

कम्पनी के कर्मचारी अपना यह व्यवहार चलाते हुए अपने डाइरेक्टरों को जो पत्र लिखते थे और डाइरेक्टरों की ओर से दूसरों को जो पत्र जाते थे उनमें इन बातों का उल्लेख हुआ दिखाई देता है।

ईस्टइण्डिया कम्पनी के बंगाल के तत्कालीन सञ्चालकों ने ३० सितम्बर १७६५ को जो पत्र लिखा था उसमें लिखा है कि अटूट सम्पत्ति प्राप्त करने का अवसर इतना अधिक आकर्षक है कि उसकी तरफ़ से आँखें बन्द की नहीं जा सकतीं और उसका मोह इतना ज़बर्दस्त है कि उसका प्रतिकार किया नहीं जा सकता। नज़राना लेने की पद्धति का नतीजा यह हुआ है कि उसके लिए अब अत्यन्त लज्जास्पद अत्याचार और निन्दास्पद रिश्वतखोरी होने लगी है।[२]

कम्पनी के कोर्ट आव डाइरेक्टरों ने बंगाल के तत्कालीन अधिकारी को १७ मई १७६६ को एक पत्र लिखा था, उसमे उन्होने स्पष्ट ही स्वीकार किया है कि, "हमारे कर्मचारियों ने जिस तरह की रिश्वतखोरी और लूटमार की, जिस प्रकार के अत्यन्त नीच साधनो का अवलम्बन किया और उससे जो शोचनीय स्थिति हो गई है, उस सबकी हमें स्पष्ट

१. दत्त, भाग २, पृष्ठ १६

२ दादाभाई कृत "Poverty and Un-British Rule in India" पृष्ठ ६१५ से

कल्पना है। ऐसा मालूम होता है कि कम्पनी के कर्मचारियों ने जितने अत्याचार कर अटूट सम्पत्ति प्राप्त की उतने अत्याचार किसी भी काल और किसी भी देश में नहीं हुए।"[1]

स्वयं लार्ड क्लाइव साहब का पत्र देखिए—

लार्ड क्लाइव ने ८ सितम्बर १७६६ को कलकत्ते एक सज्जन 'डडले' को एक पत्र लिखा था, उसमें उसने लिखा है—

"अगर इतने वर्ष पुराने अथवा विस्मृत कृत्यों का सिंहावलोकन किया जाय और उनकी जाँच की जाय तो कुछ ऐसी बातों का पता लगेगा कि जो कभी जाहिर होनी ही न चाहिए। उन बातों से देश का सिर नीचा होगा और बड़े-बड़े तथा भले कुटुम्बों की कीर्ति पर कालिमा लगेगी।[1]

अपने एक और दूसरे पत्र में वह लिखते हैं—"मैं सिर्फ इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे पता नहीं कि इस तरह की अन्धाधुन्धी, रिश्वत-खोरी और ज़बर्दस्ती से पैसे पैदा करने के उदाहरण मैंने बंगाल के सिवा और कहीं देखे या सुने हों। स्वतन्त्र व्यापारियों ने कम्पनी के कर्मचारियों के गुमाश्ते बनकर उनकी सलाह से ऐसे-ऐसे कृत्य किये हैं, जिनके कारण हिन्दू और मुसलमान अंग्रेज़ों का नाम सुनते ही मानो उसमें दुर्गन्ध आती हो, इस तरह अपनी नाक बन्द कर लेते हैं।"[2]

यह बात ख़ास तौर पर ध्यान देने योग्य है कि सन् १७५७ में खुद लार्ड क्लाइव साहब ने ४,७२,५०० रु० निगलने के बाद ये पत्र लिखे हैं!

अंग्रेज़ों की पूँजी कहाँ से आई ?

ऊपर लिखेनुसार मार्ग से हिन्दुस्तान की पूँजी का प्रवाह इंग्लैण्ड की ओर हो जाने से इंग्लैण्ड कैसा समृद्ध हो गया और उस पैसे के कारण ही इंग्लैण्ड के उद्योग-धन्दों को कितनी गति मिली, मि० ब्रुक्स एडम्स ने अपनी "The Law of Civilisation and Decay" नामक

१ दादा भाई कृत "Poverty and Un-British Rule in India" पृष्ठ ६१५ से

२ दादा भाई कृत "Poverty and Un-British Rule in India" पृष्ठ ६००

पुस्तक में इसका अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। इस वर्णन को पढ़कर पाठकों को यह निश्चय हो जायगा कि अंग्रेज अधिकारी और कारखानेदार जिस 'अंग्रेज़ी पूँजी' की बार-बार इतनी शेखी मारते हैं, वह पूँजी वास्तव में हिन्दुस्तान की ही है। मि० एडम्स ब्रुक्स लिखते हैं—

"हिन्दुस्तान से बहकर आनेवाले द्रव्य के प्रवाह से इंग्लैण्ड की सिर्फ़ नक़द पूँजी ही नहीं बढ़ी, बल्कि उनकी शक्ति बढ़कर उसे गति और स्थिति-स्थापकता प्राप्त हुई। प्लासी के युद्ध के बाद बंगाल की लूट का माल लन्दन में आने लगा और उसके साथ उसी समय उसका परिणाम भी दिखाई पड़ने लगा, क्योंकि सब ज़िम्मेदार आदमी स्वीकार करते हैं कि अठारहवीं सदी की औद्योगिक-क्रान्ति का आरम्भ सन् १७६० से ही हुआ है। १७६० का यह वर्ष ही अठारवीं सदी को इस तरह दो विभागों में बांट सकता है। मि० बेन्स के कथनानुसार सन् १७६० के पहले लङ्काशायर में सूत कातने के लिए जिन साधनों का उपयोग होता था वे हिन्दुस्तान के साधनों की तरह ही सीधे-सादे थे। और १७५० में के लिए जंगल उजाड़े जाने के कारण इंग्लैण्ड के लोहे के कारख़ाने पूरी तरह अवनति की ओर जा रहे थे। उस समय इंग्लैण्ड में व्यवहार में आनेवाले लोहे का ⅘ भाग स्वीडन से आता था।"

"सन् १७५७ में प्लासी का युद्ध हुआ। उस समय से इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति में जो तेज़ी आई, वैसी और किसी दूसरी बात से नहीं आई। सन् १७६० में फटका करघे का जन्म हुआ और भट्टियों में लकड़ी के बजाय कोयले काम में लाये जाने लगे। सन् १७६४ में हारग्रिव्ज़ ने एक ऐसी मशीन का आविष्कार किया जिसके ज़रिये बहुत-से तकुए एक साथ सूत निकाल सकते थे। इसी तरह सन् १७६६ में क्रॉम्प्टन ने रुई पींजने की मशीन का और १७८५ में कार्टराइट ने भाप से चलने वाले करघे का आविष्कार किया। और सन् १७८६ में जेम्स वेट ने भाप से चलनेवाले एंजिन को पूरी तरह तैयार कर इन सब पर बाज़ी मार ली। केन्द्री-भूत शक्ति को बाहर छोड़ने वाले यन्त्रों में यह यन्त्र अत्यन्त परिपूर्ण था। यद्यपि ये सब यन्त्र समय-चक्र को गति देने वाले थे, फिर

भी वे वैसी गति देने में कारणीभूत नहीं हुए। यान्त्रिक शोध तो निश्चल ही होता है। इनमें बहुत से यन्त्रों को अपने को गति देने वाली आवश्यक शक्ति पाने की मार्ग-प्रतीक्षा करते हुए कई सदियों तक सुप्तावस्था में ही पडे रहना पडा।

"हिन्दुस्तान से द्रव्य की बाढ आने और साख के बढने के पहले—जो जल्दी ही बढ गई—इस कार्य के लिए आवश्यक शक्ति अस्तित्व मे नहीं आई थी और इसलिए जेम्स वेट अगर ५० वर्ष पहले पैदा हुआ होता तो उसका और उसके यन्त्र का एकदम नाश ही हो गया होता।"

"हिन्दुस्तान की लूट ने जो पूँजी दी और उससे इंग्लैण्ड ने जितना नफा कमाया, उतना नफ़ा संसार की और किसी भी पूँजी पर मिला मालूम नहीं होता, क्योंकि पचास वर्ष तक इंग्लैण्ड का कोई भी प्रतिस्पर्धी नहीं था। तुलनात्मक दृष्टि से सन् १६९४ से १७५७ तक इंग्लैण्ड की प्रगति मन्दगति से और १७६० से १८१५ के बीच यही प्रगति बहुत तेजी से और आश्चर्यजनकरूप मे हुई। 'साख' ही समाज के संग्रहीत धन का प्रिय वाहन होता है। 'सोख' के होते ही द्रव्य के अनेक अङ्कुर निकल आते हैं। लन्दन में पूँजी जमा होते-न-होते उसमें आश्चर्यजनक गति से शाखा-प्रशाखा फूट आईं।

बंगाल का सोना-चांदी आने के पहले लन्दन की बैंक आव इंग्लैण्ड २० पौण्ड से कम के—दस और बीस पौण्ड के नोट जारी करने की हिम्मत नहीं कर रही थी; लेकिन उक्त सोने-चाँदी के पहुँचते ही उनके जारी करने में वह सहज ही समर्थ हो गई। प्राइवेट पेढिये तक नोटों की वर्षा करने मे समर्थ हो गई।"[1]

(५) इंग्लैण्ड के संरक्षक कर

ईस्टइण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान के माल पर कितना मुनाफा कमाया, यह हम देख चुके। यह भी हम देख चुके कि कम्पनी के छोटे-बडे कर्मचारियों के भारतीय जनता पर कैसा ज़ुल्म किया; जुलाहों को किस

१ वी डी वसु कृत "Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ८१९ से

तरह तबाह किया और नवाबों को किस तरह लूटा। आइये, अब हम यह देखें कि 'मुक्त व्यापार' के हिमायती इंग्लैण्ड ने किस प्रकार संरक्षक करों का अवलम्बन कर हिन्दुस्तान के व्यापार को चौपट किया।

"हिन्दुस्तान के व्यापार को तबाह करने के लिए इंग्लैण्ड ने पहले प्रतिबन्धात्मक (Prohibitive), बाद को दमनात्मक (Suppresive) और अन्त में पीड़नात्मक (Repressive) नीति ग्रहण की।[१]

सन् १६०० से १७०० के बीच की इस एक सदी में विलायत के साथ हिन्दुस्तान का व्यापार खूब ज़ोरों पर था। १६८० तक विलायत में हिन्दुस्तान के माल के प्रवेश पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। लेकिन उसी वर्ष से उस पर चुँगी का जो क्रम जारी हुआ, वह नीचे के विवरण में देखिए—

वर्ष	माल और ज़कात अथवा चुँगी का स्वरूप	चुँगी की रक़म
१६८० से १६८३	रुई के प्रत्येक थान पर	६ पैंस से ३ शि० तक
१६८५	हिंदुस्तान से इंग्लैण्ड जानेवाले सब (१) रुई के (२) सूत के (३) रेशमी (४) रेशम और ऊन मिश्रित माल तथा (५) सूत अथवा रुई पर	१०० पौण्ड के माल पर १० पौण्ड
१६९०	" "	"
१७००	सूती सब रंगीन वस्त्रों के आने पर रोक लगाई गई। स्वभावतः ही इसका नतीजा यह हुआ कि सूत के सफेद वस्त्र वहाँ जाने लगे। लेकिन बाद को इन पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। सन् १७०० में, इंग्लैण्ड के राजा विलियम	

१ "Eassy on Handspinning and weaving' पृष्ठ ९४

तृतीय ने क़ानून बनाकर इंग्लैण्ड से हिन्दुस्तान के व्यापार को रोक दिया। उसने यह सरकारी हुक्म जारी किया कि "जो व्यक्ति—स्त्री अथवा पुरुष—रेशमी वस्त्र या सूती छींट बेचेगा अथवा व्यवहार में लायगा, उस पर २०० पौण्ड (३००० रुपये) जुर्माना होगा !" ('खादी का इतिहास, पृ० ७१)

१७२१ सूती रंगीन वस्त्र के व्यवहार पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इसके अनुसार उसके व्यवहार के प्रत्येक अपराध पर ५ पौण्ड (७५ रु०) और बेचने वाले पर २० पौण्ड (३०० रु०) जुर्माना होता था।

१७३७ सूत के छपे हुए माल पर प्रतिबन्ध लगाया गया। पहले मिश्रित माल पर जो रोक लगाई गई थी, वह उठाली गई।

इतने प्रतिबन्ध लगाये जाने पर भी फेशन के मोह से कहिए अथवा स्त्रियों के आग्रह के कारण, सूती माल का व्यापार चलता ही रहा। मलमल, सादी छींट तथा बंगाल के रेशमी रूमाल के 'छपे हुए माल' की संज्ञा में न आने के कारण इनकी तथा प्रतिबन्ध-रहित माल की मांग बहुत थी।

१७६६ अंग्रेज़ इतिहासकार लीकी अपने अठारहवीं सदी के इंग्लैण्ड के इतिहास (भाग ७ पृ० ३२०) में लिखता है—

"किसी भी स्त्री का हिन्दुस्तान का सूती माल व्यवहार करना अपराध समझा जाता था। लेकिन, (सूती वस्त्र ही क्या) थिल्ड हाल में

> एक स्त्री पर इसलिए २०० जुर्माना हुआ कि वह एकसनी हाथ-रूमाल अपने काम मे लाई थी।"[1]
>
> डिफो का तो यहाँ तक कहना है कि कॉल-चेस्टर में एक बार इसी बात पर दंगा हो गया कि एक स्त्री ने हिन्दुस्तान का सूती वस्त्र अपने शरीर पर पहन लिया, और दंगे में स्त्री पर सिर्फ हमला ही नहीं किया गया, बल्कि उसकी बेइज्जती तक की गई।[2]

हिन्दुस्तान के कपडे पर इतनी जकात अथवा चुँगी हने पर भी वह इतना लोकप्रिय था कि विलायत में उसकी खपत अधिकाधिक प्रमाण में होती थी। यह देखकर सन् १७७४ में पार्लमेण्ट ने इस आशय का एक महत्वपूर्ण कानून बनाया कि इंग्लैण्ड में आने वाला माल इंग्लैण्ड का ही कता और बुना होना चाहिए।[3] निम्नलिखित अङ्कों से स्पष्ट दिखाई देगा कि इस कानून का भी उस व्यापार पर कुछ असर नहीं पडा।[4]

वर्ष	विलायत जाने वाले माल की कीमत
सन् १७७२	१,५६,२६, ३४० रु०
" १७८२	१,६०,०६, ८४५ "
" १७९२	२,६६,०४, ३७५ "

तब फिर पार्लमेण्ट ने हिन्दुस्तान से आने वाले माल पर नीचे लिखेनुसार जकात बढ़ाई—

१ बी डी बसु कृत "the Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ५ से

२ "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ५१

३ नोट—जो लोग खादी को नाम धरते हैं, उनसे प्रार्थना है कि वे इग्लैण्ड के इस कानून पर अवश्य ध्यान दे।—लेखक

४. "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ५४

प्रत्येक १०० पौण्ड की क़ीमत के सूती वस्त्र पर[1]

वर्ष	सफ़ेद सूती वस्त्र	मलमल और नानकिन
सन् १७९७	१८ पौ० – ३ शि० – ०	१९ पौ०–१६ शि०–०
१७९८	२१ पौ० – ३ शि० – ०	२२ पौ०–१६ शि०–०
१७९९	२६ – ९ – १ पै०	३० – ३ – ९
१८०२	२७ – १ – १	३० – १५ – ९
१८०३	३९ – १ – ३	३० – १८ – ९
१८०४	६५ – १२ – ६	३४ – ७ – ६
१८०५	६६ – १८ – ९	३५ – १ – ३
१८०६	७१ – ६ – ३	३७ – ७ – १
१८०९	७१ – १३ – ४	३७ – ६ – ८
१८१२	७३ – ० – ७	३७ – ६ – ८
१८१३	८५ – २ – १	४४ – ६ – ८

इसका मतलब यह हुआ कि सन् १८१३ में १५०० रु० के सफेद सूती वस्त्र पर १२७५ रु० और उतनी ही कीमत की मलमल अथवा पीले सूती वस्त्र पर ६७५ रु० जकात लगती थी। इस जकात का हिन्दुस्तान पर कितना अनिष्टकारी परिणाम हुआ वह निम्नलिखित अङ्कों से स्पष्ट दिखाई देगा[2]—

हिन्दुस्तान से विलायत जाने वाला माल

वर्ष	माल की क़ीमत
१८१३–१४	५२,९१,४५८ रुपये
१८१४–१५	८४,९०,७६०
१८१५–१६	१,३१,५१,४२७
१८१६–१७	१,६५,८४,३८०
१८१७–१८	१,३२,७२,८५४

१ "Essay on Handspinning and Weaving" पृष्ठ ८७

२ बी डी बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ३०

१८१८–१९	१,१५,२७,३८५
१८१९–२०	९०,३०,७९६
१८२०–२१	८५,४०,७९२
१८२१–२२	७६,६४,८२०
१८२२–२३	८०,०९,४३२
१८२३–२४	५८,७०,५२३
१८२४–२५	६०,१७,५५९
१८२५–२६	५८,३४,६३८
१८२६–२७	३९,४८,४४२
१८२७–२८	२८,७६,७१३
१८२८–२९	२२,२३,१६३
१८२९–३०	१३,२६,४२३
१८३०–३१	८,५७,२८०
१८३१–३२	८,४९,८८७
१८३२–३३	८,२२,८९१

इस मुकाबिले में विलायत से हिन्दुस्तान में आनेवाले कपडे का परिणाम देखिए[१]—

सन्	माल की क़ीमत
१७९४	२,३४० रुपये
१७९५	१०,७५५
१७९६	१,६८०
१७९७	३७,५१५
१७९८	६६,५४०
१७९९	१,०९,७५५
१८००	२,९३,६२५
१८०१	३,१८,०००

१. बी. डी वसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ३०

१८०२	२,४२,८६५
१८०३	४,१८,१४०
१८०४	८६,०४०
१८०५	४,७६,१४३
१८०६	७,२७,८७५
१८०७	६,६८,२३५
१८०८	१०,४७,६१५
१८०९	१७,७६,१२०
१८१०	११,२०,४२५
१८११	१७,१६,७३५
१८१२	१६,०६,५००
१८१३	१६,२३,२६०

यह कहने की आवश्यकता ही नहीं कि इसके बाद प्रतिवर्ष यह तादाद बढती ही गई।

इंग्लैण्ड अब भले ही बड़े हर्ष के साथ यह कहे कि 'हम मुक्त अथवा अबाध व्यापार के हिमायती हैं।' लेकिन जकात के इन वार्षिक अंको से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि किस तरह उसने संरक्षक जकात का अवलम्बन कर अपने उगते हुए धन्धों की परवरिश की। विजित राष्ट्र पर विजयी राष्ट्र के निःशंक अन्याय का यह अत्यन्त स्पष्ट उदाहरण है। इस सम्बन्ध मे इतिहासकार विल्सन अपनी पुस्तक में लिखते हैं—

"इस वात का प्रमाण दिया जा चुका है कि सन् १८१३ तक इंग्लैण्ड के माल की अपेक्षा हिन्दुस्तान का माल ५० से ६० फीसदी तक सस्ता पड़ता था। इसका नतीजा यह हुआ कि हिन्दुस्तान के माल पर ७० से ८० फीसदी तक जकात लगाकर अथवा उस माल के आने की रोक करके इंग्लैण्ड के माल की रक्षा करनी पड़ी। अगर इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान के माल पर इस तरह संरक्षक जकात न लगाई होती तो 'पेसले' और 'मेन्चेस्टर' की मिलें प्रथमारम्भ में ही वन्द कर देनी पडी होतीं और भाप का उपयोग करके भी वे शायद ही खोली जा

सकी होती ! हिन्दुस्तानी कारखानेदारों का नाश करके ही वे मिलें खोली गईं। हिन्दुस्तान अगर स्वतन्त्र होता तो उसने इसके बदले में इंग्लैण्ड के माल पर पूर्णतः प्रतिबन्धात्मक ज़कात लगा कर इंग्लैण्ड का बदला चुकाया होता और अपने उद्योग-धन्धों को उसके हाथों नाश होने से बचा लिया होता। हिन्दुस्तान को अपना बचाव करने का मौक़ा ही नहीं दिया गया। वह विदेशी सत्ता का भक्ष्य बन गया था। उस पर विलायती माल लाद दिया गया। इस माल पर किसी भी तरह की जकात न थी। प्रतिस्पर्धी के साथ बराबरी के नाते धर्मयुद्ध तो नहीं किया जा सकता था, इसलिए विलायती कारख़ानेदारों ने अन्यायी राज्य-सत्ता का सहारा लेकर उसे धर-दबोचा और अंत में उसका गला घोंटकर उसे मारदिया।"[१]

इंग्लैण्ड की कामन्स-सभा की जाँच-कमेटी के एक प्रश्न का उत्तर देते हुए मि० रिकार्ड्स ने कहा था—"इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनों ही राष्ट्रों पर इंग्लैण्ड की सत्ता होने के कारण यह असंगतता दिखाई देती है कि विलायती माल तो बिना किसी तरह की ज़कात के बेरोक-टोक हिन्दुस्तान में उतार लिया जाता है; लेकिन सिर्फ़ इस्तेमाल तक के लिए आने वाले हिन्दुस्तानी माल पर इंग्लैण्ड में जबर्दस्त जकात देनी पड़ती है। इनमें की बहुत-सी चीजों पर १०० से ऊपर ६००) तक और एक नग पर फीसदी ३०००) ज़कात देनी पड़ी।[२]

इंग्लैण्ड के हिन्दुस्तान पर जबर्दस्त ज़कात लादने और 'मुक्त' व्यापार की डींग हांकने के सम्बन्ध में एक और अंग्रेज सज्जन के विचार देना अप्रासंगिक न होगा। मि० माण्टगोमेरी मार्टिन कहते हैं—

"चौथाई सदी के अर्से में ही—उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में—हम (अंग्रेज़ लोग) ने हिन्दुस्तान को अपने कारख़ानों में तैयार

१. एच० विल्सन कृत "History of British India" भाग १, पृष्ठ ३८५ बी० डी० वसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ६ से

२. बी डी. वसु कृत " The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ९० से

हुआ माल ख़रीदने के लिए मजबूर कर दिया। इस माल में ऊनी माल पर तो जकात बिल्कुल ही नहीं थी। सूती और दूसरे माल पर ढाई फीसदी के औसत से जकात लगती थी। लेकिन इसी अर्से में हमने हिन्दुस्तान के अथवा अपने ही साम्राज्यान्तर्गत माल पर क़रीब-क़रीब प्रतिबन्धक अथवा दस, बीस, तीस, पचास, सौ और एक हजार फीसदी तक जकात लगाने का सपाटा चलाया। इसलिए हिन्दुस्तान के साथ 'मुक्त' व्यापार का अर्थ यह हुआ कि इस देश—इंग्लैण्ड—से जो माल हिन्दुस्तान को जाय सिर्फ़ वही 'मुक्त' अथवा 'खुला', हिन्दुस्तान से इंग्लैण्ड जाने वाला माल 'खुला' नहीं।...सूरत, ढाका, और मुर्शिदाबाद तथा जहाँ-जहाँ ऐसा माल तैयार होता था, उन शहरों के विनाश की कहानी इतनी करुण है कि उस विषय में यहाँ कुछ विचार न करना ही अच्छा है! मैं नहीं समझता कि इसे सचाई का व्यापार कहा जा सकता है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के न्याय को ही काम में लाया गया है।[१]

इस सब कार्रवाई में ब्रिटिश सरकार की व्यापार विषयक क्या नीति थी, इस सम्बन्ध मे सर जार्ज टकर १८२३ में लिखते हैं—

"हम लोगों (अंग्रेजों) ने हिन्दुस्तान के साथ व्यापार के सम्बन्ध में अपनी क्या नीति रक्खी है? अपने बाजारों में से हमने उसके रेशमी और रेशम तथा सूत के मिले हुए माल का बहिष्कार कर दिया है। इधर हिन्दुस्तान से आने वाले माल पर ६७ फीसदी जकात लगा देने और ख़ासकर हमारी उच्च कोटि की मशीनरी के कारण हिन्दुस्तान से भारी तादाद मे आने वाले सूती माल का आना रुक गया है। इतना ही नहीं प्रत्यक्षतः अब तो हम एशिया की जनता को अंशतः अपने ही कारख़ानों में तैयार हुआ माल देते हैं। इस तरह हिन्दुस्तान अब 'कारखानेदार राष्ट्र' के पद से च्युत होकर 'किसान-राष्ट्र' के दर्जे पर आ पहुँचा है।[२] कितना नीच उद्देश्य है यह!

१. दत्त, भाग २, पृष्ठ ८८

२ दत्त, भाग १, पृष्ठ २६२

(६) कस्टम-विभाग के कष्ट

कपड़े के व्यवसाय का गला घोटे जाने की करुण-कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। विलायत के साथ चलने वाले हिन्दुस्तान के व्यापार को ही डुबोकर ईस्टइण्डिया कम्पनी को सन्तोष नहीं हुआ; बल्कि देश-का-देश में चलने वाला व्यापार तक उसकी आँखों में खटकता था। अतः उसे समाप्त करने के लिए कम्पनी ने अपने कस्टम-विभाग का किस तरह उपयोग किया, उसकी ओर नजर डालना सर्वथा प्रासंगिक होगा।

कस्टम-विभाग की लीलाओं का वर्णन करने के पहले देश में प्रचलित 'टोल' पद्धति का दिग्दर्शन करना आवश्यक है। प्रत्येक बैल, घोडे, ऊँट तथा गाड़ी पर लादे जाने वाले माल पर यह कर वसूल किया जाता था। इस कर के वसूल करते समय माल की कीमत पर ध्यान देने की कुछ जरूरत नहीं समझी जाती थी। उसी तरह यह कर इतना थोड़ा था कि माल को छिपाने-छिपाने का कुछ भी कारण नहीं रहता था। इसलिए माल के जॉच की भी कुछ जरूरत नहीं रहती थी। प्रति चालीस, पचास अथवा साठ मील के अन्तर पर यह कर देना पडता था। इस पर से ऐसा मालूम होता है कि जितने अन्तर से माल की आमद-रफ्त होती थी, उसी के अनुसार हफ़्ते-हफ़्ते भर में यह कर देना पडता था।

लेकिन कम्पनी के अंग्रेज़ कर्मचारियों ने 'टोल' नाके बन्द करके उसके बजाय 'पास'-पद्धति शुरू की। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक व्यापारी को सारी जकात-एकदम दे देनी पडती थी। उसके बदले में उसे पास (परवाना) मिलता था। व्यापारी के यह पास बता देने पर यात्रा समाप्त होने तक कोई भी नया कर नहीं देना पटता था। सम्भव है पहली ही नजर में यह पद्धति बहुत सुविधाजनक प्रतीत हो; लेकिन वास्तव में इससे व्यापारी को टोल पद्धति से अधिक पैसा देना पडता था। क्योंकि, 'टोल'-पद्धति में यह लाभ था कि जितनी दूरी का सफर होता था, उतनी ही दूरी के लिए पैसे देने पड़ते थे। वह भी हफ़्ते-हफ़्ते भर में देने पडते थे। लेकिन पास-पद्धति में व्यापारी को भले ही माल नजदीक के गाँव में अथवा दूर के शहर में ले जाना हो, यह ख़याल

करके कि उसे दूर-से-दूर का सफर करना है उससे एकदम सारी जकात वसूल करली जाती थी। अवश्य ही इससे जकात की आमदनी बढ गई; लेकिन साथ ही व्यापारियो मे भयङ्कर असन्तोष भी फैल गया।

व्यापारियों के लिए यह 'पास'-पद्धति कितनी कष्ट-दायक थी, इसका विवेचन तो अभी बाकी ही है। मानलो कि बनारस से एक ही व्यापारी का भिन्न-भिन्न प्रकार का माल कलकत्ते के लिए रवाना हुआ। उसके लिए उसे एक पास मिला। कलकत्ते में अगर सब माल की थोक बिक्री हो गई तो ठीक, नहीं तो जितनी तरह का माल होता, व्यापारी को उतने ही पास और लेने पडते और इन नये पासों के लिए उसे आठ आने फी सैकडा नई जकात देनी पडती थी। इसके लिए व्यापारी को जो समय बरबाद करना पडता था; माल की एकदम बिक्री होने मे जो रुकावट पड़ती थी; और कस्टम-हाउस से माल हटाने में जो असुविधा होती थी, उसके मुकाबिले मे आठ आने फी सैकडा की यह करबन्दी इतनी असुविधा-जनक नहीं मालूम होती थी। पास की मियाद सिर्फ एक वर्ष की होती थी। अगर वर्ष के अन्त तक माल नहीं बिका तो व्यापारी को अपना पास बदलवा लेना अथवा नया करा लेना पड़ता था। लेकिन इतना निश्चित था कि वर्ष की मियाद पूरी होने के पहले उसे अपना पुराना पास लौटाना ही पड़ता और उसमें लिखे माल की जॉच कस्टम अधिकारियों को करा देनी पड़ती थी। इन सब क्रियाओं के पूरा होने के बाद आठ आने सैकड़ा के हिसाब से पैसे देने पर ही नया पास मिल सकता था। अगर वह अपने इस कर्तव्य-पालन में चूक जाता तो उसे नई जकात देनी पडती। सच तो यह है कि व्यापारियों को माल की जॉच कराना, समय-समय पर कस्टम-हाउस में उसकी निगरानी करना और अपना अमूल्य समय बरबाद करना इतना असह्य होता था कि इन सब असुविधाओं को सहने की बनिस्बत वे नई जकात दे देना ही पसन्द करते थे।

जगह-जगह पर कस्टम-विभाग की चौकियाँ होती थीं, जहाँ पर व्यापारियों को अपना माल दिखाना पडता था। एकाध बार किसी सबल कारणवश पास लेना रह जाता, और व्यापारी ईमानदारी के साथ यह

ख़याल करके कि "चौकी पर पैसे अदा कर देंगे," रवाना हो जाता तो बिना पास के चौकी पर से जाने के अपराध मे उसका माल ज़ब्त कर लिया जाता।

माल की जाँच के लिए जगह-जगह पर नाके मुकर्रिर थे. ताकि माल की आयात-निर्यात नियम-विरुद्ध एवं चोरी से न हो सके। पास मे लिखे मुताबिक़ माल है या नही, यह जाँच करना नाकेदार का काम था। क़ानून के अनुसार कस्टम्स हाउस से चार मील से अधिक फासले पर जाँच के नाके अथवा चौकियां न रखने का नियम था, लेकिन उसकी अवहेलना की जाकर सारे देश भर मे ये नाके फैले हुए थे। कभी-कभी तो ये नाके कस्टम्स हाउस से साठ-सत्तर मील तक के फासले पर होते थे। इन नाकों के नाकेदारों को इस बात की बारीकी से जाँच करने का पूरा अधिकार रहता था कि पास में लिखेनुसार माल की किस्म, संख्या और वर्णन के अनुसार माल ठीक निकलता है या नहीं। प्रत्येक नाकेदार अगर नियमानुसार अपने मन मे उक्त प्रकार से बारीकी से माल जाँचने की ठान लेता तो यह साफ है कि इससे देश का सारा व्यापार बन्द हो जाता. क्योंकि इतनी अग्नि-परीक्षा से गुजरने की अपेक्षा व्यापारियों ने व्यापार करना बन्द ही कर दिया।

इन सब ज़ुल्मों के ख़िलाफ अगर शिकायत की जाती तो शिकायत करनेवाले को लाभ होने की बनिस्बत हानि ही अधिक उठानी पड़ती थी। अगर शिकायत की ही तो रोग की अपेक्षा उसका उपाय अधिक कष्टकर हो जाता था।

कस्टम्स हाउस के इस ज़ुल्म के कारण देश का अन्तर्गत व्यापार बिल्कुल डूब गया। चार रुपये मासिक वेतन पानेवाला एक क्षुद्र नाकेदार जब लखपती व्यापारियों को उक्त प्रकार से सताता हो तब अगर व्यापारियों ने ऐसा व्यापार छोड़ दिया तो इसमे आश्चर्य की क्या बात है? देश का व्यापार डूबने का अर्थ हुआ कारखानेदारों की समाप्ति! कस्टम्स अफसरों के पैसे ऐंठने के इस ज़ुल्म के कारण कस्टम्स हाउस पर होकर जानेवाली स्त्रियों की इज़्ज़त तक सुरक्षित नहीं रहती थी![1]

१ Sir Charles Travelyan's Report—दत्त, भाग १ पृष्ठ ३०६ में

(७) मुतारफा कर का जुल्म

कपडे के व्यवसाय के प्रबल संगठन को उपरोक्त प्रकार से चारों ओर से सुरंग लगाकर ढहा देने के जो प्रयत्न चल रहे थे, कम्पनी को शायद वे काफी मालूम नहीं हुए, इसलिए उसने 'मुतारफा' नामक एक नये कर का और सहारा लेकर उक्त संगठन को तो ढहाया ही, उसके साथ ही दूसरे धन्धेवालों का भी खात्मा हो गया।

खेती न करनेवाले प्रत्येक मनुष्य पर यह कर लादा जाता था। सुनार या बढ़ई, धातु के औज़ार आदि बनानेवाले कारीगर, और रास्ते पर परचूनी की दूकान करनेवाले सबको यह कर देना पड़ता था। कोई एकाध बुढ़िया रास्ते के कोने पर शाक-सब्जी बेचने के लिए बैठती तो उसको तक इसके लिए कर देना पडता था।

कपडे के व्यापारियों को भी यह कर देना पडता था। लेकिन यूरोपियन व्यापारी इससे बरी थे। जो व्यापारी वर्ष भर तक मेहनत-झंझट कर कपडे बेचता और अपना पेट भरने लायक पैसे पैदा कर पाता था, उसको तो यह कर देना पडता था; लेकिन सैकड़ों रुपये कमानेवाले उसी के पड़ोसी यूरोपियन व्यापारी को कुछ भी नहीं देना पडता था।[१]

व्यापार की मामूली-से-मामूली चीज़ पर और साधारण मनुष्यों के काम मे आनेवाले सस्ते-से-सस्ते औजारों तक पर यह कर लादा जाता था। चरखे पर भी यह कर लाद दिया गया था। हिन्दुस्तान के रुई के व्यापार मे मि. ब्राउन नामक एक अँग्रेज सज्जन ने काफी नाम कमाया था। जब १८४८ की 'भारतीय रुई' की सिलेक्ट कमेटी के सामने उनकी गवाही ली गई थी, उस समय वह अपने साथ एक चरखा ले गये थे, और गवाही देते हुए साफ तौर पर बताया था कि "प्रत्येक चरखे और प्रत्येक घर और कारीगर के बरतने के प्रत्येक औजार पर 'मुतारफा' नामक कर लगाया जाता है।[२]

चरखे की तरह ही हाथ के करघे पर भी यह कर लादा जाता था।[३]

१ दत्त, भाग २ पृष्ठ ११७

२ दत्त, भाग २ पृष्ठ १०४

३. "Essay on Handspinning and weaving" पृष्ठ ९४

इस कर की एक और विशेषता यह थी कि इसकी वसूली के लिए नियुक्त अधिकारियों की इच्छा पर ही इसकी वसूली का दारमदार था। इसलिए ये ग़ैर-जिम्मेदार लोग जब चाहते धावा बोल देते और इस तरह जनता पर अत्याचार कर पैसे ऐंठते रहते थे। इस कर की वसूली के लिए लोगों के हाथों में हथकडी डालना और उन्हें कैद कर देना तो इन लोगों के बायें हाथ का खेल हो गया था।'

(८) अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी, अजायबघर, आदि

आइये, अब इस दुःखान्तक नाटक के अन्तिम अङ्क पर नज़र डालें। हिन्दुस्तान के कारखानेदारों और जुलाहों के धन्धों को खतम कर देने से विलायत के कारखानेदारों मजदूरों की खूब चाँदी हो गई। हिन्दुस्तान की कपडे की आवश्यकतापूर्त्ति के लिए मानों उन्होंने बीडा ही उठा लिया था, और इसलिए वहाँ किस-किस तरह के माल की खपत है, इस बात की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने के लिए सन् १८५१ में लन्दन में एक भारी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनी करने का आयोजन किया। सर थॉमस मनरो ने ब्रिटिश पार्लमेन्ट के सामने गवाही देते हुए कहा था कि "कारखानेदार के रूप में हम हिन्दुस्तान के बहुत पीछे हैं।" इसलिए ब्रिटिश कारखानेदारों ने प्रदर्शिनी के बहाने भारतीय कारीगरों के हुनर का रहस्य खोज निकालने का कमाल का प्रयत्न किया।[२]

इस सम्बन्ध में मि० कीथ नामक अंग्रेज सज्जन ने जो कुछ कहा है, उससे यह स्पष्ट दिखाई पडता है कि इस सम्बन्ध में भी भारतीय कारीगरों पर काफी जुल्म हुए हैं। वह कहते हैं—

"धन्देदारी की खूबियों या रहस्यों को गुप्त रखने में कितनी सावधानी रक्खी जाती है, यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है। अगर हम इंग्लैण्ड के मेसर्स डाल्टन के चीनी के बर्त्तनो (Potters) का कारखाना देखने जाते हैं तो वे बडी शिष्टता से हमारे साथ आनाकानी कर जाते है। लेकिन

१. दत्त, भाग २ पृ ११६

२. बी डी बसु कृत "The Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ ११०-११

मेन्चेस्टर के कारख़ानेदारों ने धुनने और दूसरे विषयों में अपने हुनर या कला की खूबियाँ बताने के लिए हिन्दुस्तानी कारीगरों के साथ ज़बर्दस्ती करके उनसे वे जान ही लीं।"[१]

डा० राइल ने तजवीज़ पेश की कि इस प्रदर्शिनी में भारतीय कला-कौशल के जो काम दिखाये गये हैं उनका एक स्थायी अजायबघर क़ायम किया जाना चाहिए। उनकी यह तजवीज़ मंजूर हो गई और हिन्दुस्तान के ख़र्चे से उसका क़ायम किया जाना तय पाया। इस अजायबघर के ज़रिये ब्रिटिश कारख़ानेदारों और मज़दूरों का जीवन सुखी करने की मानो स्थायी तजवीज की गई।

इस अजायबघर में भारतीय बुनाई के काम के जो महत्त्वपूर्ण नमूने थे, वे अठारह बडे-बडे ग्रन्थों में संगृहीत किये गये। इन अठारह ग्रन्थों के एक-समान नमूने के बीस सेट तैयार किये गये। इन ग्रन्थों में भारतीय कला के ७०० नमूने सुव्यवस्थित प्रकार ग्रथित किये गये हैं। इन बीस सेटों में से १३ सेट विलायत में और सात हिन्दुस्तान में रखना तय पाया।[२] इन ७०० नमूनों के कारण ब्रिटिश कारखानेदारों के लिए भारतीय रुचि के अनुसार मनचाहा माल निकालना अत्यन्त सुगम हो गया। लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय जुलाहों और कारखानेदारों के विनाश के लिए निकाली गई अनेक युक्तियों में यह प्रदर्शिनी एक खास-और कदाचित अन्तिम युक्ति थी।[३]

यह हुआ कपडे के व्यवसाय का गला घोंटे जाने का इतिहास। भारतीय परिस्थिति का अध्ययन कर श्री रमेशचन्द्र दत्त ईस्टइण्डिया कम्पनी की ग़ैरकानूनी राज्य-पद्धति के कारण होने वाली हानियों की चर्चा करते हुए लिखते हैं—"कातने-बुनने के धन्धे के विनाश के

१ 'पायोनियर' ७ सितम्बर १८९८, वसु की पुस्तक के पृष्ठ १२०-२१ से

२ इस पर से इगलैण्ड की स्वार्थी नीति स्पष्ट हो जाती है।

३ बी० डी० वसु कृत "Ruin of Indian Trade and Industries" पृष्ठ १११

साथ-ही-साथ भारत के दूसरे पुराने धन्धों का भी नाश हो गया। रंगाई, रंग तैयार करने, चमडा कमाने और उसके उपयुक्त पदार्थ बनाने, लोहे और दूसरी धातुओं पर कला-कौशल का काम कर उनके उपयुक्त पदार्थ बनाने, शाल और दरियां बनाने, मलमल और ज़री का काम और लेखन-पठन की सामग्री आदि सब का सत्यानाश हो गया है। इन उद्योगों के ज़रिये करोड़ों भारतीयजन अपनी उपजीविका चलाते थे; लेकिन अब उन्हें अपना पेट भरने के लिए अन्तिम उपाय के तौर पर खेती का आश्रय लेना पडता है।"[१]

१ रमेशचन्द्र दत्त कृत "Speeches and papers on Indian Questions" पृष्ठ १०६, ९०, ८१—डा० वालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ ९०-९१ से

: ४ :

सोलहों आने दरिद्रता

शासक वर्ग और भारतीय राजनीतिज्ञों को चेताते हुए श्री रमेशचन्द्र दत्त लिखते हैं, "किसी भी देश को—पृथ्वी पर के अत्यन्त समृद्ध देश तक को—अगर ऐसी स्थिति मे रक्खा जाय कि उसके उद्योग-धन्धे नष्ट-भ्रष्ट होगये हों, खेती भाररूप और अनिश्चित करों के बोझ के नीचे दबी पडी हो और आमदनी का आधा भाग प्रतिवर्ष देश से बाहर चला जाता हो[१] तो जल्दी ही उसे आकाश की वेदना अनुभव होने लगेगी। देश के द्रव्योत्पादक साधनों को व्यापक बनाने और जनता से कर के रूप में प्राप्त धन को उसी पर और उसी के लिए ख़र्च किये जाने से ही देश समृद्ध होता है। इसके विपरीत अगर सम्पत्ति के साधन संकुचित कर दिये जायं

१ हिन्दुस्तान से जिन-जिन मार्गों मे विलायत को पैसा जाता है वे इस प्रकार हैं—

(१) सिविल और मिलिटरी अधिकारियो की पेंशन और छुट्टी के भत्ते।

(२) रेल्वे, सेना और दूसरे विभागो के लिए आवश्यक माल की विलायत मे ख़रीद।

(३) विनिमय की दरो के हेर-फेर

(४) दूषित चलन-पद्धति

(५) 'राष्ट्रीय-ऋण'—उस पर व्याज

(६) हिन्दुस्तान मे लगी हुई इंग्लैण्ड की पूँजी पर व्याज

(७) विलायती जहाजो के जरिये होनेवाला भारतीय माल का आवागमन

(८) कपडे तथा दूसरे माल की आयात, आदि-आदि

और कर के रूप मे वसूल होने वाले धन का ख़ासा भाग देश के बाहर जाने लगे तो वह देश दरिद्री बन जाता है। अर्थ-शास्त्र का यह अत्यन्त सरल और स्पष्ट नियम है। हिन्दुस्तान और दूसरे राष्ट्रों के व्यवहार इन्हीं नियमों के अनुसार होते हैं। हिन्दुस्तान के अपने उद्योग-धन्धों के पुनरुद्धार हुए बिना, भारतीय किसानों पर निश्चित और सहज मर्यादा डाले बिना और भारतीय आय का पर्याप्त भाग भारत मे ही ख़र्च किये बिना भारत की दरिद्रता का नष्ट होना सम्भव नहीं है।[१]

साधारण मनुष्य वर्तमान में प्रचलित व्यवहार के भावी परिणाम का अनुमान नहीं कर सकते, लेकिन द्रष्टा, राजनीति विशारद और राष्ट्र के सच्चे नेता इस बात को सहज ही समझ जाते है।

गत डेढ़सौ वर्षों की अवधि में जिन अंग्रेज़ सज्जनों को प्रसंगानुसार भारत की स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण करने का मौका मिला, उनमे के कुछ लोगों ने भारत की भावी स्थिति के सम्बन्ध मे कुछ भविष्यवाणियाँ लिख रक्खी है। इन भविष्यवाणियों से भारत की स्थिति का स्पष्टतर ज्ञान मिलने में सहायता मिलती है, अतः समय के क्रम के अनुसार वे नीचे उद्धृत की जाती है।

सन् १७६६ में मि० वेरेल्स्ट नामक अंग्रेज़ सज्जन बंगाल के गवर्नर थे। वह उसी सन् के ७ अप्रैल के अपने एक पत्र मे कम्पनी के डायरेक्टरों को लिखते है—

इस विवेचन की कदाचित ही आवश्यकता हो कि, जिस राष्ट्र के वार्षिक तलपट मे उसकी कुल आय की ⅓ से अधिक रकम उसके नाम लिखी जाती हो—प्रतिवर्ष जिस पर इतना कर्ज लादा जाता हो—वह कितना ही सम्पन्न क्यों न हो, उसके समृद्ध बने रहने की बात तो दूर रही, वह अधिक समय तक अपना अस्तित्व तक कायम न रख सकेगा। इसके सिवा राष्ट्र की सम्पत्ति का ह्रास करने वाले और भी कितने ही ऐसे कारण है, जिन्हें अगर जल्दी ही दूर नही किया गया तो राष्ट्र जल्दी ही

२. दत्त, भाग १, Introduction पृष्ठ १३

दम तोडने लगेगा। मैंने देखा है कि पहले राजाओं के विलासितापूर्ण खर्चीले रहन-सहन, और राज्य की आय मे से भिन्न-भिन्न कुटुम्बों को बडी-बडी देनगी दी जाने के कारण देश का पैसा देश मे ही बना रहता था; लेकिन अब वसूल की गई सारी-की-सारी मालगुजारी या भूमि-कर अपनी तिजोरी मे आ पड़ता है। इसमे से कुछ आवश्यक खर्च अथवा कम्पनी के व्यवहार के लिए होने वाली देन-लेन के सिवा और कोई रक़म यहाँ वापस नहीं आती।"[1]

सन् १८३० के लगभग सर जॉन शोर बंगाल के गवर्नर थे। उन्होंने हिन्दुस्तान के सम्बन्ध मे एक पुस्तक लिखी है। उसमे वह कहते है—

"अपने खुद के लाभ के लिए प्रत्येक सम्भव उपाय से भारत को अपने आश्रित कर लेना ही अंग्रेज राजनीति का मुख्य उद्देश्य है। उसपर अधिकाधिक कर लाद दिया गया है, और एक के बाद एक जो-जो प्रान्त हमे मिलता जाता है, वह अधिकाधिक धन ऐंठने का एक क्षेत्र ही बन जाता है।...हिन्दुस्तान की समृद्धि के दिन बीत गये। एक समय उसके पास जो सम्पत्ति थी वह समुद्र पार बह गई। थोडे लोगों के लाभ के लिए लाखों के हितों की हत्या करने की कुटिल राज्य-पद्धति के कारण हिन्दुस्तान की शक्ति का विकास होना रुक गया है।"[2]

मि० माएटगामेरी मार्टिन[3] नामक सज्जन सन् १८३८ मे अपनी पुस्तक में हिन्दुस्तान की लूट के सम्बन्ध मे लिखते हैं—

"ब्रिटिश हिन्दुस्तान से प्रतिवर्ष ३०,००,०००पौण्ड की जो रकम जाती है, उसका अगर भारतीय दर के अनुसार प्रतिवर्ष बारह सैकडा चक्रवृद्धि ब्याज के हिसाब से हिसाब लगाया जाय तो वह ७२,३६,९७,६१७पौण्ड अथवा हलके दर से हिसाब किये जाने पर २०,००,००० पौण्ड के हिसाब से ५० वर्ष मे ८,४०,००,०००,००० पौण्ड (१,२६,००,००,००,०००)रु०

१ दत्त, भाग २ पृष्ठ ३०

२. दत्त, भाग १ पृष्ठ ४११-१२

३ उन्होने खुद अपने खर्च से दस वर्ष तक ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशो मे प्रवास करके उनके सम्बन्ध मे सप्रमाण जानकारी और

होता है। ऐसे सतत और संगठित प्रवाह का परिणाम इंग्लैण्ड तक को दरिद्री बनाये बिना न रहेगा। फिर जिस राष्ट्र में मज़दूरों की दैनिक मज़दूरी दो से तीन पैसे तक है उस हिन्दुस्तान पर इसका कितना घातक परिणाम हुआ होगा ?"[१]

यह तो हुआ १८३८ तक का हिसाब। इसके बाद सन् १९०१ में श्रीदादाभाई नौरोजी ने हिसाब लगाकर यह सिद्ध किया था कि प्रति वर्ष ३,००,००,००० पौंड (४५,००,००,००० रु०) विलायत को जाते हैं। १९०१ और १८३८ की स्थिति में काफी अन्तर पड़ गया है। इधर हिन्दुस्तान से प्रतिवर्ष कितनी भारी रक़म विलायत को जाती है, उस हिसाब से आजतक कितनी असंख्य धनराशि विलायत को चली गई होगी, यह विषय अङ्कशास्त्रज्ञों का होने के कारण, इस हिसाब में हम हाथ नहीं डाल सकते।

सुप्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ जान ब्राइट इंग्लैण्ड की अतीव स्वार्थ-परायणता पर नजर डालते हुए लिखते हैं—

"अभी (१८५०) तक इंग्लैण्ड ने तरह-तरह की सूक्ष्म और नई-नई युक्ति-प्रयुक्तियों से हिन्दुस्तान को लूटकर अपने को मालामाल

अंक आदि संगृहीत करके इसी भारी ग्रन्थ में उपनिवेशों का पूरा इतिहास लिखा है। उपनिवेशों की तरह हिन्दुस्तान में भी रहकर उन्होंने यहाँ की परिस्थिति का भी अध्ययन किया था। ईस्टइण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों की हिमायत के अनुसार डा० बुकनन ने हिन्दुस्तान के उत्तर और दक्षिण के भागों का दौरा कर जो बहुमूल्य सामग्री एकत्र की थी, उसके प्रकाशित होने के पहले वह इस संसार से विदा हो गये थे। तब उनका यह अधूरा काम पूरा करने की जिम्मेदारी मि० मार्टिन पर डाली गई। मि० मार्टिन ने डा० बुकनन की सब सामग्री को सिलसिलेवार लगाया और उसपर प्रसंगानुसार जगह-जगह पर अपने संपादकीय नोट लगाकर उसे ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया है।

१ दादाभाईकृत "Poverty and un-British Rule in India," Introduction, पृष्ठ ७ से।

बनाया है। हिन्दुस्तान के साथ न्याय और सम्मानपूर्वक तरीके से व्यवहार करके इंग्लैण्ड इससे भी कई गुणा अधिक सम्पत्तिशाली बन सकता है। मैं चाहता हूँ और प्रतिपादन करता हूँ कि इंग्लैण्ड अपने में ऐसा सुधार करे। इंग्लैण्ड अगर इस तरह व्यवहार करे तो वह हिन्दुस्तान और स्वयं अपने लिए भी हितकर सिद्ध होगा और उससे मानवजाति के लिए एक श्रेयस्कर उदाहरण पैदा हो जायगा।[१]

इंग्लैण्ड के अर्थशास्त्रज्ञ और इतिहासकार जान स्टुअर्ट मिल (१८०६ से १८७३) अपने 'हिन्दुस्तान का इतिहास' में लिखते हैं—

"अपनी सम्पत्ति के प्रवाह से राष्ट्र (हिन्दुस्तान) के साधन-सामग्री पर बड़े जोरों का बोझ या दबाव पड़ा है जिससे वह सर्वथा थक गया है। इस तरह होने वाली हानि की पूर्ति के लिए और कोई दूसरी योजना अमल में नहीं लाई गई। सम्पत्ति का यह प्रवाह राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों की धमनी में से राष्ट्र-पोषक जीवन-रस का शोषण कर लेता है।"[२]

आज हिन्दुस्तान की उपरोक्त राजनीतिज्ञ के वर्णन के अनुसार प्रत्यक्ष स्थिति हो गई है, इतना ही नहीं आज की स्थिति उससे भी अधिक शोचनीय है। मि० हेनरी मेरट जान टक्कर ने इंग्लैण्ड का व्यापारिक उद्देश्य बताते हुए जो इच्छा प्रदर्शित की थी, उसके अनुसार हिन्दुस्तान अब 'कारखानेदार राष्ट्र' के दर्जे से च्युत होकर इंग्लैण्ड को केवल कच्चा माल जुटाने वाला 'किसान-राष्ट्र' रह गया है। वह किस तरह, सो आगे देखिये।

सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार हिन्दुस्तान की जन-संख्या ३५,२८,३७,७७८ है। इस जन-संख्या का, विभिन्न धन्धों के लिहाज से नीचे लिखेनुसार वर्गीकरण किया गया है[३]—

१ दादाभाई कृत "Poverty and un-British Rule in India" पृष्ठ ६२०

२ दादाभाई कृत "Poverty and un-British Rule in India" Introduction पृष्ठ ८ से

३ प्रो० जथार और बेरी कृत "Inter-Economics" (१९३७) भाग १ पृष्ठ ४७

धन्धा	जन-संख्या का परिमाण
खेती	६५.६०
उद्योग-धन्धे	१०.३८
व्यापार	५.५२
सम्माननीय धन्धे	१.६१
प्राइवेट नौकरी	७.५१
दूसरे धन्धे	५.०३
खानों का काम	.२४

खेती और उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान की संसार के दूसरे राष्ट्रों के साथ तुलना करने पर उसका क्या दर्जा ठहरता है वह नीचे के अङ्कों से स्पष्ट दिखाई देगा—

राष्ट्र का नाम	वर्ष	खेती और मछली	उद्योग-धन्धे व्यापार	सम्माननीय धन्धे	सेना	घरू नौकरी	दूसरे धंधे
इंग्लैण्ड		७	६८	१०	१	१२	२
फ्रांस		३८	५०	६	२	४	
जर्मनी	१९२५	३१	५८	६	½	४½	
इटली	१९२१	५६	२५	४½	२	२½	
रूस	१९२६	८७	६	२	०	२	
अमेरिका	१९२०	२२	५१	८	½	१०	८

(नोट—अङ्क जनता का प्रतिशत परिमाण दिखाते हैं)[१]

खेती और उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में आय की दृष्टि से दूसरे राष्ट्रों से हिन्दुस्तान की तुलना करने पर उसका कौनसा स्थान है, यह नीचे के अङ्कों से दिखाई देगा।

प्रत्यक्ष काम करने वाले लोगों की प्रति व्यक्ति आय—

देश का नाम	उद्योग-धन्धों से	खेती से
हिन्दुस्तान	१७) रु०	५६) रु०
जापान	१५८) "	५७) "

१ छ० न० जोशी कृत "आमचा आर्थिक प्रश्न"

स्वीडन	३८४) "	१२८) "
ग्रेटब्रिटेन	४१२) "	६२) "
कनाडा	४७०) "	२१३) "
यूनाइटेड स्टेट्स, अमेरिका	७२१) "	१७५) "

अर्थ-शास्त्र का यह सिद्धान्त है कि जो राष्ट्र उद्योग-धन्धों से अधिक आमदनी पैदा करते हैं अथवा ज़िस राष्ट्र के बहुसंख्यक लोग उद्योग-धन्धों मे संलग्न रहते है वे अधिक सम्पन्न और जो राष्ट्र अधिकांश मे कच्चा माल तैयार करते है वे आर्थिक दृष्टि से दरिद्र होते है।

हिन्दुस्तान किस प्रकार कृषि-प्रधान राष्ट्र है, यह उपरोक्त कोष्टक से स्पष्ट दिखाई दे जाता है। सन् १९३१ में हिन्दुस्तान में खेती के काम मे आने वाली कुल जमीन बाईस करोड ९१ लाख एकड थी और गांवों मे रहने वाले लोगों की संख्या ३१,३८,५२,००० थी। इस हिसाब से प्रति व्यक्ति $\frac{3}{4}$ अर्थात् पौन एकड से भी कम जमीन का औसत पडता था। यह तादाद बहुत ही कम है। अमेरिका में प्रति व्यक्ति ५.१ एकड और आस्ट्रेलिया मे प्रति व्यक्ति ३ एकड़ का औसत है।

हिन्दुस्तान में अब बिना खेती की जमीन बहुत कम रह गई है। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने हिसाब लगाकर बताया है कि अगर इस जमीन को भी खेती की जमीन के साथ मिला लिया जाय तो प्रति व्यक्ति के औसत में अधिक-से-अधिक आधा एकड की वृद्धि और होगी।[1]

सरकार को जनसंख्या अर्थात् आबादी के लिहाज़ से खेती की ज़मीन के इस अत्यल्प परिमाण को ध्यान मे रखकर सिंचाई की अर्थात् बन्द अथवा नहर की ही सुविधा करनी चाहिए थी; लेकिन उसकी ओर से ऐसी कोई सुविधा की गई हो, यह दिखाई नहीं देता।

सन् १९३१ में हिन्दुस्तान में कुल २२ करोड ५१ लाख एकड जमीन जोती गई। उसमें से क़रीब ५ करोड़ एकड़ भूमि के लिए ही सिंचाई की सुविधा थी। इसमें भी सरकारी बन्द या नहर की सुविधा तो क़रीब ३ करोड़ एकड के लिए ही थी, बाकी करीब २ करोड़ एकड़ भूमि

१ डा० राजेन्द्रप्रसाद कृत "Economics of Khadi" पृष्ठ ३-४

का काम प्राइवेट नहर और निजी तालाब तथा कुओं से चलता था।

अब कुल जोती गई जमीन मे से पानी की सुविधा वाली जमीन का परिमाण सिन्ध में ७३.७ फीसदी, पंजाब मे ४४.१, सीमान्त प्रदेश मे ३४.४; मद्रास में २६.७, संयुक्तप्रान्त मे २२, बिहार-उडीसा १७.४, बंगाल ६.२, आसाम ५.७, मध्यप्रान्त-बरार ४.२ और बम्बई ३.६ फीसदी है।[१] ये अङ्क अत्यन्त उद्बोधक हैं। इनसे यह सहज ही दिखाई पडता है कि मध्यप्रदेश और बम्बई आदि प्रान्तों के लिए बन्द आदि के द्वारा सिंचाई की सुविधा करना किस प्रकार आवश्यक है।

सरकारी जितने कुछ भी बन्द है उनमे के बहुत-से हिन्दू और मुसलमान राजाओं के समय के हैं। उनमें कई जगह मरम्मत की जरूरत हैं, लेकिन सरकार से वह अभीतक नहीं की जाती।[२]

देश के बहुसंख्य लोगों के किसान बन जाने के कारण खेती के काम मे आनेवाली जमीन का परिमाण बढ़ गया। इस परिमाण के बढजाने के कारण खराब जमीन का भी सहारा लिया जाने लगा। उसमें फसल खराब और कम पैदा होने लगी।[३] इसके सिवा जमीन की उत्पादक-शक्ति भी कम हो गई।[४] इस तरह खेती से होनेवाली किफ़ायत भी नष्ट होने लगी।

किसानों को उपज का आधा लगान देना पडता है। इसके सिवा कुछ अतिरिक्त कर भी देना पड़ता है। इस अतिरिक्त कर का कुछ भी परिमाण नहीं रहता है। सरकार की इच्छानुसार वह असमर्यादित रूप में

१ प्रो० जथार और बेरी—"Indian Economics Vol (1937) पृष्ठ २३५

२. होमरूल लीग की ओर से प्रकाशित गुजराती पुस्तक 'शेतकन्याची दु खे' पृष्ठ १२–१४.

३ Director of Agriculture for Bombay डा० बालकृष्ण कृत 'Industrial Decline in India' पृष्ठ १०८ से

४ ना० गोखले, डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ १०

बढा दिया जाता है। देश मे खेती के लगान की पद्धति की अनिश्चित और इस लगान के दिन-प्रतिदिन लगातार बढते ही जाने के कारण राष्ट्र का खेती का धन्दा भी डूब गया। संसार के किसी भी राष्ट्र को हिन्दुस्तान की-सी स्थिति मे रक्खा जाय तो उसकी भी वही गति हुए विना रह नहीं सकती। भारत के किसान थोडे मे ही गुज़ारा चलानेवाले, उद्योगी और शांतिप्रिय होते हुए भी उपरोक्त कारणों से दरिद्री और साधनरहित होगये है और इसलिए हमेशा ही अकाल और भूखमरी के शिकार होते रहते है।[१]

सर्वथा खेती पर अवलम्बित रहने के कारण राष्ट्र केवल अकाल अथवा भूखमरी का ही शिकार नहीं होता; बल्कि साथ ही उसकी बौद्धिक और मानसिक हानि भी कितनी होती है, यह बात सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ फेडरिक लिस्ट के निम्नलिखित उद्धरण से प्रकट होगी—

"सर्वथा कच्चे माल की खेती करनेवाले राष्ट्र मे मानसिक दुर्बलता, शारीरिक वक्रता और पुराने आचार-विचार तथा रीति-रिवाज, इन तीनों को दृढ पकड़ रखनेवाली हठवादिता आदि दुर्गुण पैदा हो जाते हैं और वह अपनी संस्कृति, वैभव और स्वतन्त्रता से हाथ धो बैठता है। इसके विपरीत व्यापार और उद्योग-धन्धों मे संलग्न राष्ट्र बौद्धिक और शारीरिक विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। और साथ ही उनमे सात्त्विक स्वाभिमान पैदा होकर वे स्वतन्त्रता-प्रिय बन जाते हैं।"[२]

श्री हरिगणेश फाटक अपनी 'स्वदेशी की मीमांसा' नामक पुस्तक में भारतीय किसानों की वास्तविक स्थिति का चित्र खींचते हुए लिखते हैं—

"गांव का पटवारी, तलाटी, पुलिस का सिपाही, सर्कल इन्स्पेक्टर, रेंजर, सबरजिस्ट्रार, फौजदार, तहसीलदार, आबकारी-ठेकेदार, ग्राम-पंचायत का अधिकारी, परगना व जिला बोर्ड के सदस्य, स्कूल-मास्टर, काजीहौस जमादार, गांव का मुखिया, साहूकार और मारवाड़ी व्यापारी

१ दत्त भाग २, भूमिका पृष्ठ ८

२ डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ २४-२५ से

छोटे-बड़े सभी उसके—किसान के—मालिक बन जाते हैं। हरेक की बरदाश्त करते-करते उसका नाक मे दम आ जाता है। अगर बैल भूल से रक्षित जंगल मे चला गया तो किसान पर जुर्माना! कोई लडका-बच्चा जंगल से लकडी-चारा उठा लाया कि जुर्माना! पटैल की फर्मायश पूरी नहीं की गई, इसलिए भुगत सजा! पुलिस को सन्तुष्ट नहीं कर सका, इसलिए खा लात-घूँसे! फ़ौजदार बेगार में गाडी-बैल ले गया तो रो बैठकर! दस्तावेज़ लिखानी हो तो ला दक्षिणा! कोई संस्कार कराना हो तो पकड पैर ब्राह्मण के! कोई कर भरना हो तो जोड सरकार के हाथ! लोकल फण्ड देना हो तो गिडगिडाते फिरो अफसरों के पास! दरख्वास्त लिखानी हो तो लाओ पैसे!

"इस प्रकार बेचारे किसान की जियो या मरो की-सी स्थिति हो गई है; तिस पर अगर वर्षा नहीं हुई तो उसकी मुसीबतों का कोई अन्त नहीं।

"अकाल पडने पर सरकार की तरफ़ से लगान की माफी मिलना कठिन होता है; घर का गहना-गांठा अथवा बैल-बकरा बेचे बिना गति नहीं होती। घर मे खाने को दाना नहीं। अकाल मे मजदूरी के लिए बाहर जाना मरणान्तक दुःख के समान होता है, उस समय किसी तरह साहस कर घर से बाहर निकले भी तो सुकाल मे जंगली सूअर, सियार, चोर आदि का कष्ट। इन सबके परिणाम में अगर किसान दु.ख मे 'भगवान्, न तो मुझे आपकी यह खेती चाहिए, न ये सब मुसीबतें' ये उद्‌गार निकाल कर गांव छोड जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है?

"महाराष्ट्र में लोग खेती छोड-छोडकर भागने लगे हैं। जहां ५०-५५ घर होने चाहिए थे, अच्छी पशुशाला व पुष्ट बैल डकारने चाहिए थे, अनाज की कोठियाँ भरी हुई, तिल्लेदार पगडी सिर पर सुशोभित दिखाई देनी चाहिए थी, वहां टूटे-फूटे मकान, दुबले-पतले पशु, नरकंकाल जैसे बच्चे, मिट्टी के हाँडी-बर्तन, सिरपर फटी-टूटी पगडी की चिंधियाँ, ऐसा हृदय-द्रावक दृश्य दिखाई देता है।[1]

१. श्री हरिगणेश फाटक कृत 'स्वदेशी ची मीमासा' पृष्ठ ८२

यहां तक हमने देखा कि देश के व्यापार और उद्योग-धन्धों की किस तरह बरबादी हुई। देश के किसानों की कैसी शोचनीय स्थिति है। यह बात भी हमारे ध्यान में आई। उसी तरह विभिन्न मार्गों से किस प्रकार देश की आर्थिक लूट चल रही है। इसकी भी कुछ कल्पना हुई।

राष्ट्र के सम्पत्तिशास्त्र का यह एक साधारण नियम है कि जनता के पास से कर के रूप में जो द्रव्य वसूल किया जाता है, वह उसी राष्ट्र में जनता के हित में ख़र्च किया जाय तभी राष्ट्र में पैसा रहता है। और तभी उसका व्यापार, उद्योग-धन्धे और कृषि सब फलते-फूलते हैं। इसका कारण यही है कि उस दशा में देश का पैसा किसी-न-किसी रूप में घूम-फिर कर जनता को वापस मिल जाता है। लेकिन जब कर के रूप में वसूल किया हुआ द्रव्य एक देश से दूसरे देश को भेज दिया जाता है, तब उससे हमेशा के लिए ही हाथ धो लेना पड़ता है और इसलिए व्यापार, उद्योग-धन्धे और खेत. को उत्तेजन मिल नहीं पाता।

भारतीय राष्ट्र की सम्पत्ति के तीनों ही स्रोतों—व्यापार, उद्योग-धन्धे और खेती—के इस प्रकार सूख जाने और लगभग एक शताब्दी से उसका इस प्रकार निरन्तर द्रव्य-शोषण होते रहने पर भी अगर वह दरिद्री नहीं होता तो ही आश्चर्य की बात होती![1]

हिन्दुस्तान की दरिद्रता की ऊपर जो मीमांसा की गई है, वैसी ही मीमांसा सन् १९०४ में भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के अध्यक्ष सर हेनरी काटन ने की थी। उन्होंने लिखा है—

"जांच के बाद मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि वैसे तो हिन्दुस्तान की बढ़ती हुई दरिद्रता के अनेक कारण हैं, लेकिन मुख्य कारण उसके घरेलू उद्योग-धन्धों का नाश और देश के माल की जगह विदेशी माल की प्रभुता है। खेती की बढ़ती भी एक सबल कारण है। देश की मुख्य फसल के लिए खेती की ज़मीन बढ़ाने के लिए शक्ति भर प्रयत्न किया जाता है और यह दिखाने की कोशिश की जाती है कि देश के कच्चे माल की निकासी में होनेवाली वृद्धि राष्ट्र की बढ़ती हुई समृद्धि का लक्षण

१ दत्त, भाग २, भूमिका पृष्ठ ८–९

है। लेकिन सच बात यह है कि वह राष्ट्र की समृद्धि का लक्षण न होकर उलटे उसकी अधोगति का ही सूचक है।"[1]

अब हम हिन्दुस्तान की दरिद्रता कितनी है, इस पर नज़र डालें। सन् १८६७ से १९३२ तक अनेक अर्थ-शास्त्रज्ञों और अङ्क-विशारदों ने हिन्दुस्तान की दरिद्रता के सम्बन्ध में जुदा-जुदा अनुमान निकाले हैं। व्यक्ति अथवा राष्ट्र की साम्पत्तिक स्थिति सदा एकसी नहीं रहती। इसलिए भिन्न-भिन्न समयों में निकाले गये सब अनुमानों का भी एकसा होना सम्भव नहीं है।

हिन्दुस्तान की औसत वार्षिक आय का ठीक-ठीक अनुमान निकालना बड़ा कठिन काम है; क्योंकि इसके लिए हिसाब में कौन-कौन से विषय लेने चाहिएँ, इस सम्बन्ध में कभी एक मत नहीं हो सका। इसके सिवा जुदा-जुदा वर्षों में जो अनुमान निकाले गये हैं, उनका तुलनात्मक अध्ययन करते समय उन वर्षों के वस्तुओं के भावों को ध्यान में रखकर वे निकाले गये होंगे। इतनी प्रास्ताविक सूचना के बाद, इस सम्बन्ध में अभी तक जो प्रयत्न किये गये हैं वे क्रमशः नीचे दिये जाते हैं—

क्रम संख्या	औसत निकालने वाले	औसत का वर्ष	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय
१	दादाभाई नौरोजी	१८७०	२०—०—०
२	वेअरिंग वार्बर	१८८२	२७—०—०
३	डिग्वी	१८९८-९९	१८—९—०
४	लार्ड कर्जन	१९००	३०—४—०
५	डिग्वी	१९००	१७—४—०
६	अटकिन्सन	१८७५	२५—०—०
		१८९५	३४—०—०
		१९११	५०—०—०
			८०—०—०

१. डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृ० १९६ से

७	वाडिया और जोशी	१९१३-१४	४४—५—६
८	विश्वेश्वरैय्या	१९१९	४५—०—०
९	शाह और खंबाटा	१९२१-२२	६७—०—६
१०	काले	१९२१	{ ४०—०—०
			{ ४८—०—०
११	फिंडले शिरास	{ १९२१	१०७—०—०
		{ १९२२	११६—०—०
१२	"	१९२३	११७—०—०
१३	"	१९२४	१२६—०—०
१४	"	१९२५	११४—०—०
१५	प्रो० घोष	१९२५	४६—०—०
१६	फिण्डले शिरास	१९२६	१०८—०—०
१७	"	१९२७	१०८—०—०
१८	"	१९२८	१०६—०—०
१९	"	१९२९	१०९—०—०
२०	"	१९३०	८४—०—०
२१	"	१९३१	६३—०—०
२२	"	१९३२	५८—०—०

सर विश्वेश्वरैय्या ने अपनी पुस्तक "Planned Economy for India" में कहा है कि हिन्दुस्तान के प्रत्येक व्यक्ति की औसत वार्षिक आय ८२) रु० माननी चाहिए। अवश्य ही यह अङ्क जिस वर्ष फ़सल अच्छी हुई होगी, उस वर्ष का समझना चाहिए। वर्तमान मन्दी के युग में उसका $\frac{1}{3}$ अर्थात् क़रीब २५) रु० औसत मानना ठीक होगा।"[१]

इस आय से विदेशी राष्ट्रों की प्रतिव्यक्ति औसत वार्षिक आय से तुलना करने पर यह मालूम होगा कि इस दृष्टि से संसार में हिन्दुस्तान का कौनसा स्थान है।

१ प्रो० जथार और वेरी कृत "Indian Economics" भाग २ (१९३७) पृष्ठ १५७-५८

क्रम संख्या	देश का नाम	सन	वार्षिक आय
१	ब्रिटिश हिन्दुस्तान	१९३१	६७॥)
२	इंग्लैण्ड	१९३१	१०२६)
३	आस्ट्रेलिया	१९२४	१२२३)
४	अमेरिका (युनाइटेड स्टेट्स)	१९३२	१२०१॥)
५	फ्रांस	१९२८	५५३॥)
६	चेकोस्लोवाकिया	१९२५	४७२॥)
७	डेन्मार्क	१९२७	७४२॥)

प्रो० जथार और बेरी के नियत किये हुए ५५) रु० और ऊपर उल्लिखित ६७॥) में अन्तर है। जुदा-जुदा अर्थशास्त्रियों ने जुदा-जुदा पद्धतियों से यह औसत निकाला है, इसलिए उनमें ऐसा अन्तर होना सर्वथा स्वाभाविक है। फिर भी इससे वार्षिक आय का औसत किसी दो अङ्कों के बीच है, यह सहज ही दिखाई देता है।

सन् १९३८ में एक पौण्ड की कीमत १३॥) थी। उसी हिसाब से उक्त अङ्क दिये गये हैं।

अब हम यह देखेंगे कि आय के अनुपात से कर का परिमाण क्या है।

क्रम संख्या	कर का विषय	समर्थ लोगों पर पड़ने वाला कर का बोझ (करोड़ रु०)	ग़रीबों पर पड़ने वाला कर का बोझ (करोड़ रु०)
१	ज़कात	२०	२१
२	भूमिकर और जलकर	२०½	२१½
३	आयकर	२०	०
४	आबकारी	०	२०
५	नमक	१¼	७½
६	जंगल और चरागाह	२	५
७	स्टाम्प	६½	६½
८	रेल्वे	३३	६०

९	पोस्ट ऑफिस	५	५½
१०	म्युनिसिपल कर	३	१०
११	जिला लोकल बोर्ड	०	१०
		११९⅛ करोड रु०	१६७ करोड रु०

इन अङ्को पर से प्रो० शाह इस नतीजे पर पहुँचे है कि आर्थिक दृष्टि से दुर्बल और कम समर्थ लोगो पर ही हिन्दुस्तान के करों का अधिकाधिक बोझ पडता है। स्थूल दृष्टि से इस बोझ का औसत धनवान लोगो पर १०० करोड और गरीबो पर १५० करोड रुपये है। हिन्दुस्तान की जन-संख्या के २५ फीसदी से भी कम लोग कुल ६०० करोड रुपये की सम्पत्ति का उपभोग करते है। इनमे से औसत वार्षिक १०००) रु० की आय वाले कुटुम्बों से वसूल होने वाले करों से १०० करोड रु० वसूल होते हैं। बाकी की जन-संख्या के ९६ फी सदी लोग कुल १००० से १२०० करोड रुपयों की सम्पत्ति का उपभोग करते है, इन पर पडने वाला करों का बोझ १५० करोड रुपये होता है!

करो का यह विभाजन न्याय अथवा आर्थिक दृष्टि से उचित है, ऐसा शायद ही कहा जा सके।[1]

हिन्दुस्तान मे प्रति व्यक्ति करो का क्या औसत पडता है यह फिर नीचे के अङ्को से दिखाई देगा—

वर्ष	कर का औसत रु० आ० पा०
१९२२-२३	५—४—५
१९२५-२६	५—६—७
१९२७-२८	५—५—०
१९३२-३३	५—०—६[2]

१ प्रो० जथार और बेरी कृत 'Indian Economics" (१९३७) भाग २ पृ० ५६५

२ प्रो० जथार और बेरी कृत "Indian Economics" (१९३७) भाग २, पृ० ५६२

प्रो० जथार और बेरी का मत है कि वर्तमान मन्दी के ज़माने में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय ५५) रु० मानना चाहिए। इस हिसाब से प्रति व्यक्ति ५) रु० कर का मतलब हुआ उसकी आय का १/११ भाग! कितना ज़बर्दस्त कर है यह!

ऐसे इस ग़रीब देश में गवर्नरज-नरल आदि बड़े-बड़े अधिकारियों की तनख्वाह क्या है, वह देखिए—

अधिकारी	मासिक वेतन
गवर्नर जनरल	२१,३३३-५-८
प्रान्तीय-गवर्नर	१०,६६६-१०-८
गवर्नर-जनरल की कार्य-कारिणी का सदस्य	७,३३३-५-४
प्रान्तीय गवर्नर की " "	५,३३३-५-४

संसार के किसी भी राष्ट्र के, फिर चाहे वह कितना ही उन्नत और समृद्ध क्यों न हो, बड़े-से-बड़े अधिकारी को इतना वेतन नहीं दिया जाता। इंग्लैण्ड मे रहनेवाले गवर्नर-जनरल के उच्च अधिकारी भारत-सचिव की तनख़्वाह ६२५०) रु० है।

हिन्दुस्तान संसार का ग़रीब-से-गरीब राष्ट्र है; लेकिन उसके अधिकारी का वेतन संसार के समृद्ध-से-समृद्ध राष्ट्र के अधिकारी के वेतन से भी अधिक! कैसी असंगत बात है यह! ऐसी स्थिति में हिन्दुस्तान दरिद्री न बनता तो ही आश्चर्य होता।

इस दरिद्रता का परिणाम जनता को किस प्रकार भुगतना पडता है, इस सम्बन्ध मे अनेक प्रभावशाली अंग्रेज़ सज्जनों ने जो मत व्यक्त किये हैं, उनसे परिस्थिति पर अच्छा प्रकाश पडता है। सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक सर विलियम हण्टर सन् १८८० मे लिखते है—

"चार करोड़ हिन्दुस्तानी अपर्याप्त भोजन पर अपने दिन काटते हैं।"[1]

इसी प्रकार सर चार्ल्स इलियट का अनुमान है कि "किसान वर्ग मे से आधे किसानों की भूख वर्ष के आरम्भ से लेकर अन्त तक कभी भी पेट भर भोजन करके शांत नहीं हुई।"[1]

१ बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ १६८ से

सन् १८६१ की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट मे लिखा है—"यह निश्चित प्रतीत होता है कि क़रीब-करीब ७ करोड लोग यह तक नहीं जानते कि दोनों वार पेट भर भोजन किसे कहते हैं! समृद्धिकाल में ही वे केवल इस आनन्द का उपभोग कर सकते है।[1] दोनों वार पेट भर भोजन को आनन्द कहना यह केवल भारतीय जनता के ही भाग्य मे वदा है?

सन् १८६३ मे मि० ग्रियरसन सी० आई० ई० ने अपनी पुस्तक 'गया ज़िले के नोट्स' मे जो कुछ लिखा है, उस पर से "पायोनियर" पत्र ने निम्नलिखित सार निकाला है—

"मज़दूर वर्ग मे के सब लोग और किसान तथा कारीगरों मे के दस फीसदी अथवा कुल जनसंख्या के ४५ फीसदी लोगों को पूरा अन्न अथवा वस्त्र दोनों ही चीजे नहीं मिलती, अगर यह मान लिया जाय कि गया की परिस्थिति अपवादात्मक नहीं है, तो हिन्दुस्तान के क़रीब १० करोड लोग अठारह विस्वे दरिद्रता मे ही अपने दिन काटते है।[2]

'पायोनियर' जैसे भारत-विरोधी एंग्लो-इण्डियन पत्र ने जो यह सार निकाला है, क्या वह विश्वसनीय नही है?

ब्रिटिश मज़दूर दल के सुप्रसिद्ध नेता (अब स्व०) मि० रेमज़े मेकडानल्ड अपनी "हिन्दुस्तान की जाग्रति" नामक पुस्तक मे लिखते हैं—

"इसे लेकर ५ करोड तक कुटुम्ब (जिसका मतलब हुआ १५ से लेकर २५ करोड तक मनुष्य) साढे तीन आने की आय पर अपना गुज़ारा करते है। . हिन्दुस्तान की दरिद्रता केवल कल्पना नहीं प्रत्यक्ष वस्तु स्थिति है। सर्वथा सम्पन्न काल तक मे क़र्जरूपी चक्की का अच्छा-ख़ासा मोटा पाट किसान के गले में लटका रहता है।"[3]

उन्होने अपनी पुस्तक में इससे भी अधिक भयङ्कर वस्तु स्थिति का चित्र खींचा है। वह लिखते है—

१ वालकृष्ण "Industrial Decline in India" पृष्ठ १६१

२ डा० वालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ २६३-६४ से

३. ,, ,, पृष्ठ १६४

"देहात में घूमने पर ऐसे कृश शरीर दिखाई पड़ते है जो दिन-रात के परिश्रम से चकनाचूर होगये हैं और जो भूखे पेट मन्दिर मे खिन्न वदन होकर परमेश्वर की उपासना करते है!" बेचारे धर्म-भीरु लोग! भगवान् का नही तो किसका आश्रय लेंगे?

मि० आयर्विन अपनी "Garden of India" नामक पुस्तक मे मज़दूरों की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखते है—

"अनाज मे से कंकर की तरह निकाले हुए अधनंगे-भूखे लोग गांव-गांव में सर्वत्र दिखाई पडते हैं। उनके पास मवेशी या ढोर-डंगर न होने के कारण आजीविका का कोई साधन नहीं है। कुदाली से खोदी हुई थोडी-सी ज़मीन के सिवा उनकी जीविका का और कोई साधन नहीं है। उन्हें २ सेर के भाव का बिलकुल हलका अनाज़ अथवा डेढ या दो आने रोज की दैनिक मज़दूरी मिलती है और यह नगण्य मजदूरी भी पूरे वर्ष भर नहीं मिलती! क्षुधा-पीडित और बहुधा वस्त्र-विहीन स्थिति मे ये लोग सर्दी के दिनो मे चोरों और पशुओं से अपनी खेती की रक्षा करके किस तरह जी सकते हैं, यह एक सतत आश्चर्य ही है!"[1]

क्या यह स्थिति हृदय-द्रावक नही है?

अब दरिद्रता के परिणाम पर नज़र डालिए।

कोई हिन्दुस्तानी एकबार दरिद्रता के चंगुल मे फंसा नहीं कि उसपर एक के बाद एक आपत्ति की शृंखला ही शुरू हो जाती है। दीनबन्धु एण्डरूज़ ने इस शृंखला का अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। उनके इस विवेचन से उनकी निरीक्षण शक्ति कितनी सूक्ष्म है इसकी सहज ही कल्पना होती है। वह कहते हैं—"जब खाद्य पदार्थों की अन्तिम सीमा आ पहुंचती है तब दरिद्री मनुष्य का जीवन उसके भी नीचे चला जाता है और वह ऐसे भंवर के चक्र में जा फंसता है कि उससे उसका छुटकारा होना कठिन होजाता है। दरिद्री मनुष्य का दुःखमय जीवन ही उसे नीचे गिरने पर मजबूर करता है। वह मानो दुःख के समुद्र मे ही डूब जाता है। आगे

१ डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" पृष्ठ २२८ में

दिन की कर्जदारी[१] और अपने बाल-बच्चों की चिन्ता में वह दब जाता है। बार-बार उसे बेकारी का मुकाबिला करना पड़ता है अथवा पसीना-पसीना कर देने वाली कड़ी मजदूरी—गुलामी से भी ऐसी मज़दूरी कम कष्टदायी नहीं होती—करनी पड़ती है। प्रत्येक मज़दूर यह जानता है कि वह कब बीमार पड़ जायगा, इसका कोई नियम नहीं। बीमारियों के कारण उसका जीवन इतना दारिद्र्य-मय हो जाता है कि उसे जो मजदूरी मिलती है वह किसी तरह पूरी नहीं पड़ती। यहाँ जाकर वह घातक भँवर रुकता है![२]

देश का सार्वजनिक स्वास्थ्य हलके दर्जे का और मृत्यु-संख्या बढ़ाने वाला हो तो देश की दरिद्रता का सूचक होता है।[३] अमेरिकन डा० बाइड एम० डी० का मत है कि "संक्रामक अर्थात् छूत से फैलने वाले रोगों के प्रतिकार की शक्ति देश-निवासियों के आर्थिक दर्जे पर अवलम्बित है। जिस क्षेत्रफल के बहुसंख्यक लोग अत्यन्त दरिद्री होते हैं, वहां रोग का प्रादुर्भाव बारम्बार होता रहता है। जिस भाग की आर्थिक स्थिति उन्नत होती है अथवा सुधर जाती है वहां रोगों का प्रादुर्भाव कम होता है। इसका कारण यही है कि वहां के निवासियों का भोजन अच्छा पुष्टिकारक होता है। और वहां रोगो के प्रतिकार की अधिक सुविधा होती है।"[४]

डा० बॉइड का यह मत सर्वथा ठीक है। भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न भिन्न अवधि में लाखो हिन्दुस्तानी किस तरह मृत्यु के मुँह मे गये यह देखिए[५]—

अवधि	कारण	संख्या
१८७१ से १९२१ (५० वर्ष)	अकाल	२८८ लाख

१ 'यग इडिया'—२० जुलाई १९२८

२ 'भारतीय किसान पर १६०० करोड रुपया कर्ज होने का अदाज है'—हमारा आर्थिक प्रश्न, पृष्ठ १९०

३ रिचार्ड बी० ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृष्ठ १५३

४ "Young India"—२५ अक्तूबर १९२८

५ प्रो० सी० एन० वकील "Young India" २६ जुलाई १९२८

१८९६ से १९२१ (२५ वर्ष)	प्लेग	१०० लाख
१९०१ से १९२१ (२० वर्ष)	शीतज्वर	१८३ "
१९१८ से १९१९ (९महीने)	इन्फ्ल्युएंजा	१२२ "

अब मनुष्यों और बालमृत्युओं का औसत देखिए—

राष्ट्र का नाम	मनुष्यों का औसत फ़ी हज़ार	शिशुओं का औसत फ़ीहज़ार	जनमते ही मरने वाले शिशुओं का औसत प्रति सैकड़ा
अमेरिका	९·५	६५	१
इंग्लैण्ड	११·७	७५	७·५
फ्रांस	११·५	८५	८·५
जर्मनी	१२·२	१०८	१०·८
जापान	१४·५	१६६	१६·६
हिन्दुस्तान	३०·२	१९४	१९·४
न्यूजीलैण्ड	९·२	४५	४·५

हिन्दुस्तान और दूसरे देशों की आयु का औसत इस प्रकार है—

देश का नाम	आयु का औसत
हिन्दुस्तान	२२ ९
जर्मनी	४९·४
डेनमार्क	५६·४०
इंग्लैण्ड और वेल्स	५३·४२
फ्रांस	३७·४३[२]

उपरोक्त सारे विवेचन से पाठकों को इस बात की स्पष्ट कल्पना हो जायगी कि हिंदुस्तान की इस दर्जे की दरिद्रता का देश पर कितना भयङ्कर परिणाम हो रहा है।

२. प्रो० जथार और बेरी कृत "Indian Economics" भाग १ (१९३७) पृष्ठ ५८

: ५ :

हिन्दुस्तान के अकाल

हिन्दुस्तान दरिद्रता की तरह अकाल का भी घर बन गया है! सन् १७५७ के पलासी के युद्ध से लेकर १६०० तक ३५ अकाल पडे जिनमे ५ करोड लोग उनके बलि चढे।[१] डा० अभ्फरिया के मतानुसार यह स्पष्ट दिखाई पडता है कि सन् १८०० से १८२५ तक २ अकाल, सन् १८२५ से १८५० तक २, सन् १८५० से १८७५ तक ६, और १८७५ से १६०० तक १८, इस प्रकार सौ वर्षों मे कुल ३२ और इससे पहले सन् १७५७ से १८०० तक के ४३ वर्षों मे ३ अकाल पडे। सन् १८५१ से १६०० तक के ५० वर्षों मे पडे २४ अकालों के सम्बन्ध मे डा. अभ्फरिया कहते हैं—"तीन करोड लोग इन अकालों की बलि चढे और १५ करोड लोग इतने दुर्बल होगये कि सब तरह के संसर्गजन्य अर्थात् छूत के रोगों के वे सहज ही शिकार हो जाते है।"

ये अङ्क मनन करने योग्य है। सन् १८०० से १८५० तक ८ और १८५१ से १६०० तक २४ अकालो का पडना और उनमे ३ करोड लोगों का मृत्यु के मुख मे जाना!—कितनी शोचनीय और हृदय-द्रावक स्थिति है यह! उन्नीसवी सदी के द्वितीयार्द्ध अर्थात् ५० वर्षों में २४ अकाल पडे, इसका मतलब यह है कि प्रति दो वर्षों मे एक अकाल का औसत हुआ! इसके बाद सन् १६०१ और सन् १६०७ मे संयुक्त-प्रान्त मे, १६१२ में अहमदनगर में, १६१८ और १६२० और फिर १६३७ तक हिन्दुस्तान के जुदा-जुदा भागों मे और अकाल पड़े हैं।

आइए, अब इन अकालों के कारणों की मीमांसा करे। बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् और अंकविशेषज्ञ श्री ज्ञानान्जन नियोगी ज़ोर देकर कहते

१. "Forward" के १६२७ के नववर्षांक मे श्री ज्ञानांन्जन नियोगी

है—"सरकार की तरफ से बार-बार कहा जाता है कि वर्षा का अभाव ही अकाल का कारण है, लेकिन उसका यह कथन जितना पोच है उतना ही असत्य भी है। १५० वर्ष पहले जितनी वर्षा होती थी, अब उससे कम होती है यह सिद्ध करने के लिए उसके पास कोई प्रमाण नही है। इसके विपरीत हमारे पास ऐसे प्रमाण मौजूद हैं, जिनसे यह प्रतिपादन किया जा सकता है कि प्रान्त मे वर्षा का इतना अधिक अभाव कभी नहीं हुआ जिससे कि वह अपने लिए आवश्यक अन्न पैदा न कर सके। लोगों के पास अनाज ख़रीदने के लिए पैसा न रहना ही उनके मत से अकाल का असली कारण है। वह दावे के साथ कहते है कि लोगों की यह भुखमरी रेलें चालू करने से मिटनेवाली नही है।[1]

हिन्दुस्तान से प्रति वर्ष द्रव्य का जो अधिकाधिक शोषण होता रहता है, श्री रमेशचन्द्र दत्त के मत से, हाल के अकालों का यही प्रमुख कारण है। वह कहते है—

"शासन मे परिवर्त्तन होने के बाद—१८५७ मे शासनसूत्र ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के हाथो से निकल कर महारानी विक्टोरिया के हाथों मे आने के बाद—बारह वर्ष के अन्दर ही यह द्रव्यशोषण चौगुना होगया। इस निरन्तर और बढते जाने वाले शोषण को सहन कर हिन्दुस्तान ने उन्नीसवी सदी के अन्तिम भाग मे बार-बार और व्यापक परिमाण मे आने वाले अकालो की भूमिका तैयार कर रक्खी थी? संसार का कोई भी देश इस निरन्तर द्रव्यशोषण को सहन नही कर सकता। स्वभावतः ही उसका आर्थिक परिणाम अकाल होता है।[2]

अमेरिका के सुप्रसिद्ध विद्वान् और वृद्धलेखक डा० सण्डरलैण्ड ने हिन्दुस्तान के अकाल के सम्बन्ध मे नीचे लिखेनुसार अपना मत व्यक्त किया है—

"हिन्दुस्तान मे जो अकाल पडते है, उनके कारणो के सम्बन्ध मे अगर खुले दिल और पूरी तरह से जाच की जाय तो यही सिद्ध होगा

१ "Forward" सन् १९२७ का नववर्षांक, पृष्ठ ९०

२. दत्त, भाग २, पृष्ठ १३८

कि जनता की दरिद्रता ही उसका फल और मुख्य कारण है। यह दरिद्रता इतनी तीव्र और भयङ्कर है कि जिस वर्ष खूब अच्छी फसल होती है उस वर्ष तक मे लोगों को भूखा रहना पडता है। इतना ही नहीं, आडे वक्त पर काम आने के लिए जो थोडा बहुत अनाज संग्रह करके रखना चाहिए, इस दरिद्रता के कारण वह तक नहीं किया जा सकता, और इसलिए जब फसल धोखा दे जाती है, उस समय उसकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो जाती है। उस हालत मे अगर दान-धर्म के किसी फण्ड से उनको कुछ सहायता मिल गई तब तो वे बच जाते है, नही तो मृत्यु तो अपना मुंह बाये बैठी ही रहती है।"[१]

इस प्रकार पैसे का अभाव—लोगों की हद दर्जे की दरिद्रता—ही अकाल का प्रधान कारण है। अकाल अनाज का नहीं, पैसे का पडता है, लोग अगर सामान्यतः सम्पन्न स्थिति मे हों—उनके पास काफी पैसा हो—तो पड़ौस के प्रान्त से भी अनाज लाकर अकाल के संकट को टाल सकते है! ऐसा करने से कम-से-कम किसी तरह की प्राण-हानि तो नहीं होती। लेकिन जब लोगों के पास कुछ दम नहीं रहता—एक पाई भी पास नहीं रहती, तब वे पडौस के प्रदेश से अनाज ख़रीद नहीं सकते। ऐसी स्थिति में हज़ारों ही क्या, लाखों को मृत्यु का शिकार होना पड़ता है।

पण्डित मदनमोहन मालवीय कहते है—

"अनाज का अभाव कोई अकाल का कारण नहीं है। इस देश में काफी अनाज पैदा होता है। अनाज खरीदने के लिए लोगों की जेब मे काफी पैसे नहीं होते, अकाल का यही असली कारण है।"[२]

इसी प्रकार का मत श्री मजबूर रहमान ने भी व्यक्त किया है। वह कहते हैं—

"अकाल का कारण अनाज का अभाव नहीं, बल्कि द्रव्य का अभाव ही उसका प्रधान कारण है।"[३]

१ "Forward" सन् १९२७ नव वर्षांक से—पृष्ठ ९१

२ Swadeshi Symposium पृष्ठ १२३

३ ,, ,, पृष्ठ २४१

यहां यह प्रश्न हो सकता है कि क्या पहले अकाल नहीं पड़ते थे? ठीक है पड़ते थे[१]; लेकिन यह बात सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट है कि इस तादाद में कभी नहीं पड़ते थे! पहले के और अब के अकालों की संख्या में कितना अन्तर है! पहले ४०० वर्ष में या बहुत हुआ तो १०० वर्ष में एकाध अकाल पड़ता था; लेकिन अब तो एक वर्ष बीता नहीं कि अकाल का दौरा तैयार है! पहले जमाने में जब अकाल पड़ता था तब उससे पहले वर्ष में फसल की पैदावार अच्छी होती थी और अकाल निवारण के लिए तत्कालीन नरेश[२] की तरफ से तुरन्त ही उपाय किये जाते थे, इस कारण उसके संकट की अवधि अल्पकालीन और उसकी तीव्रता अत्यन्त न्यून भासित होती थी। कुछ मुगल सम्राट हृदय के

१ सन् ६५० और १०३३ में भयकर अकाल पडे थे। मुग़ल-शासनकाल में सिर्फ चार ही अकाल पड़े थे। (श्री रमेशचन्द्र दत्त के "Famines in India" की भूमिका पृष्ठ १९ में वर्णित श्री दादाभाई के उद्गार)

२. मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने अकाल प्रतिबन्ध के उपाय के रूप में ये नियम बना रक्खे थे—(१) सरकारी कोठार में का सिर्फ आधा ही अनाज काम में लाया जाता था (पहले कर अनाज के रूप में ही वसूल होता था) बाकी का आधा अनाज संकट-ग्रस्त लोगों के संकट-निवारण के लिए सुरक्षित रक्खा जाता था और (२) अकाल के समय अगली फसल बोने के मौके पर जनता को देने के लिए अच्छे बीज का संग्रह रक्खा जाता था. इसके सिवा, (३) अकाल-पीड़ितों की सहायता के विचार से कुछ नई इमारतें बनाने का काम शुरू करके उन्हें मजदूर के तौर पर उसमें लगाया जाता था, और उपरोक्त कोठार में से उन्हें मुफ्त में अनाज दिया जाता था, (४) धनवान लोगों से अकाल फण्ड वसूल किया जाता था, और मित्र-राष्ट्र की भी शक्तिभर सहायता ली जाती थी।

इन उपायों से भी अगर अकाल का नाश पूरा न हो तो कौटिल्य ने सुझाया है कि (१) राजा को चाहिए कि जहां अच्छी फसल पैदा हुई

उदार और हिन्दुस्तान के ही स्थायी निवासी थे, इसलिए अकाल के कारण और प्रतिबन्ध के लिए उदारतापूर्वक उपाय सोचते थे।[१] अब हर दो साल में एक बार अकाल पड़ता है, और बहुत सा अनाज विदेश को रवाना हो जाता है, इसलिए लोग उसका संग्रह कर ही नहीं पाते। फसल के तैयार होते ही लगान की अदायगी के लिए उसका अनाज बेच देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में अकाल का मुकाबला करना सम्भव नहीं रहता।[२]

अपने मुख्य अनाज का विदेश भेजा जाना भी हिन्दुस्तान के अकाल का एक कारण है। सन् १८९१ से १९२१ तक हिन्दुस्तान की जनसंख्या में ढाई करोड की वृद्धि हुई। लेकिन गेहूँ और चावल की पैदावार में वृद्धि नहीं हुई, इसके विपरीत निर्यात काफी तादाद में बढ गया। इस निर्यात के कारण हिन्दुस्तान में अनाज का संग्रह बहुत कम रहता है। गत तीन वर्षों में चावल और गेहूँ की पैदावार क्रमशः ७६ और २४ करोड मन हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि जनसंख्या की वृद्धि के बराबर अनाज की पैदावार में वृद्धि नहीं हुई। 'यूल' साहब का मत है कि जिस राष्ट्र की ऐसी स्थिति हो उसे स्वभावतः ही भुखमरी

हो, कुछ समय के लिए अपनी प्रजा को लेकर वहाँ रहने के लिए चला जाय, (२) किसी तालाब, नदी या समुद्र के किनारे जाकर नया उपनिवेश बसावे। वहाँ अनाज, शाक-सब्जी, मछली, शिकार आदि के जरिये लोगों की उपजीविका चलावे।

(श्री एस के दास कृत "Economic History of Ancient India" पृष्ठ १७७ से—क्या बुद्धिमान नरेश इस पर से अच्छा खासा सबक नही ले सकते ?)

१ "Forward" सन् १९२७ के नववर्षांक पृष्ठ ९० मे श्रीज्ञानाञ्ज नियोगी।

२ दादाभाई कृत "Poverty and Un-British Rule in India" पृष्ठ ६५५

सहन करनी पड़ती है और धीरे-धीरे अन्त में वह नष्ट हो जाता है।[1]

अनाज की निकासी के साथ-साथ देश का खाद भी देश के बाहर जाता रहता है, इसलिए उसकी फसल के अच्छा होने में भी उसका अनिष्टकारक परिणाम हुए बिना नहीं रहता।

श्री ज्ञानाञ्जन बाबू "Forward" सन् १९२७ के नववर्षाङ्क में लिखते हैं—

"भारत से प्रत्येक मिनट पर ७ मन हड्डी, ७ मन खली और १४ मन तिलहन विदेश को रवाना होता है।"

इसके सिवा दादाभाई ने हिन्दुस्तान के अकालों का एक और भी कारण बताया है। वह अत्यन्त मार्मिक है और साधारण लोगों के ध्यान में आने योग्य नहीं है। वह कहते—

"साम्राज्यांतर्गत युद्धों का और उनके लिए रक्खी जानेवाली अपार सेना का खर्च हिन्दुस्तान पर डाला जाता है। उसे यह खर्च बरदाश्त नहीं करना चाहिए। वह बरदाश्त कर नहीं सकता, फिर भी वह लादा जाता है, इसीसे उसपर बहुतांश में अकाल का संकट आता रहता है।[2]

यह है हिन्दुस्तान के अकालों की मीमांसा।

अब अकाल-ग्रस्त लोगों की स्थिति पर नज़र डालिए। मि० डब्ल्यू० एस० लिली, आई० सी० एस० अकाल-ग्रस्त भाग का अपना अनुभव लिखते हुए कहते हैं—

"मैं अकाल सम्बन्धी अपने अनुभव कभी भी नहीं भूलूंगा। प्रति दिन शाम के वक्त जब मैं घोड़े पर चढ़कर घूमता था तो कुछ हाड़-मांस सूखे मनुष्यों के झुण्ड-के-झुण्डों को इधर-उधर भटकते हुए दिखाई देते थे। इसी तरह रास्ते के एक ओर कुत्तों और गिद्धों की खाई हुई अरक्षित और दाहसंस्कार न की गई मनुष्यों की लाशें पड़ी नज़र आती थीं!

१ "Forward" सन् १९२७ के नव वर्षाङ्क पृष्ठ ९० में श्रीज्ञानाञ्जन नियोगी।

२ दत्तकृत 'Famine in India' की भूमिका पृष्ठ १९ में दादाभाई का उद्धरण।

इससे भी भयंकर दृश्य मैंने देखा—माताओं ने अपने नन्हें बच्चों को छोड दिया था। ग्रीक लोग बच्चों को संसार का आनन्द मानते हैं; परन्तु उन्हीं कोमल बच्चों की चमकती हुई आँखें बुखार के कारण अन्दर धँस गई थीं। शरीर में थोडी हलचल बाकी थी। सिर की हड्डी निकल आई थीं! फाकेकशी मे ही वे गर्भ मे आये, जन्मे और परवरिश पाये। इससे तरह-तरह की बीमारियो से ग्रस्त हुए! यह उनका हाल था। वह दृश्य और उसके विचार अबतक मेरा पीछा नहीं छोडते है।[१]

सन् १९०७ के अकाल के सम्बन्ध मे फरीदपुर के तत्कालीन कलक्टर मि० जेकसन ने अत्यन्त आश्चर्यजनक बात कही है। वह लिखते हैं—

"अभी वृक्षो मे पत्ते बाकी हैं और स्त्रियाँ अभीतक वेश्यायें नहीं बनीं हैं, इससे मालूम होता है कि इस भाग मे अभी अकाल नहीं है।"[२]

इसमें सन्देह नहीं कि अकाल की भयंकर स्थिति की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करने की मि० जेकसन की यह कसौटी सचमुच अद्वितीय है।

१ "Forward" का नववर्षांक पृष्ठ ९०

२ ,, ,, पृष्ठ ९१

: ६ :

बेकारी और आलस्य

पिछले अध्याय में हम यह देख ही चुके हैं कि हिन्दुस्तान किस तरह औद्योगिक राष्ट्र के पद से गिर कर कृषिप्रधान राष्ट्र बन गया और दरिद्रता और अकालों ने उसे किस तरह घेर रक्खा है। अब इस अध्याय में हमें यह विचार करना है कि इस कृषिप्रधान राष्ट्र को खेती भी पर्याप्त काम देती है या नहीं।

सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार हिन्दुस्तान की आबादी ३५,०५,२६,५५७ अर्थात मोटे तौर पर ३५ करोड़ है। इसमें की ६७ फी सदी अर्थात २३,४८,००,००० जन-संख्या कृषि की उपज पर निर्भर रहती है। इनमें के सभी लोग खेती करते हों सो बात नहीं। उपरोक्त २३,४८,००,००० में के २८ फी सदी अर्थात १०,३३,००,००० लोग खुद खेती का काम करते हैं और बाक़ी के ३६ फीसदी अर्थात १३,१५,००,००० लोग इन खेती का काम करने वालों पर अवलम्बित रहते हैं।

खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र (Economics of Khaddar) के लेखक मि० ग्रेग ने इसका हिसाब लगाया है। वह लिखते हैं—"सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार सिर्फ ब्रिटिश इलाके में १० करोड़ ७० लाख लोग 'चरखे और खेती' के काम पर अपनी उपजीविका चलाते हैं। पिछले अध्याय में हम यह देख ही चुके हैं कि प्रति व्यक्ति भूमि का औसत बहुत कम होने से इन १०,७०,००,००० लोगों को भी लगातार बारह महीने बराबर काम नहीं मिलता—कम-से-कम वर्ष के तीन महीने तक वे बिलकुल बेकार रहते हैं। उक्त १० करोड़ ७० लाख मनुष्य हिन्दुस्तान की कुल आबादी का करीब-करीब एक तिहाई भाग है।

हिन्दुस्तान की बढती हुई दरिद्रता और खेती की विशेष परिस्थिति के कारण इन १० करोड ७० लाख लोगों को, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वर्ष में से कुछ महीने बेकार रहना पडता है। इस कारण उनकी स्थिति 'दुबले को दो असाढ' अथवा 'मरे को मारे शाहमदार' की सी हो जाती है। सारे धन्धे पहले ही डूब गये, बचते-बचते बचा था खेती का धन्धा, वह करने गये तो उससे भी पूरा नही पड़ता, तब मजबूर होकर कर्ज़ और भुखमरी के शिकार बनकर दिन काटने पडते है!

हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे खेती पर निर्वाह करने वालो को कितने महीने काम मिलता है और कितने महीने उन्हे बेकार रहना पडता है, इस सम्बन्ध मे सन् १६२१ की मर्दुमशुमारी के प्रान्तीय अधिकारियों ने जो विवरण दिये थे, वे महत्त्वपूर्ण है। उन सबके सुर एक ही है।

बंगाल की मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट मे मि० थॉमसन लिखते हैं—

"हरेक किसान के हिस्से में २.२१५ एकड़ भूमि का औसत पड़ता है। इस स्थिति के कारण ही किसान ग़रीब है। ज़मीन का औसत २$\frac{1}{8}$ एकड से भी कम पडने के कारण उन्हे वर्ष मे बहुत कम दिन काम मिलता है। किसान जब अपनी ज़मीन जोतता है तब उसे बहुत कडी मेहनत करनी पडती है, लेकिन वर्ष के अधिकाश दिनो में उसके पास बहुत कम या कुछ भी काम नहीं रहता।"[1]

चौथे अध्याय में हम यह देख चुके हैं कि सारे हिन्दुस्तान में ज़मीन का औसत प्रति व्यक्ति $\frac{3}{8}$ एकड़ पडता है। ऐसी हालत मे बंगाल मे २$\frac{1}{8}$ एकड़ औसत होना यह उसकी अपनी खुद की विशेषता है। वहां दायमी बन्दोबस्त की प्रथा है, इसीलिए वहां का यह औसत बढा हुआ है। लेकिन दूसरे प्रान्तों की अपेक्षा वहां ज़मीन का औसत अधिक होते हुए भी, मि० थॉमसन के कथनानुसार वहांके किसानो के पास अधिकांश दिन काम नहीं रहता। इससे दूसरे प्रान्तों की क्या स्थिति होती होगी इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

'बिहार और उड़ीसा प्रान्त' मे प्रति व्यक्ति ज़मीन का औसत $\frac{3}{8}$ एकड़

१ श्री ग्रेगकृत "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९३

है। [१] इस प्रान्त के मर्दुमशुमारी अफसर मि० टेलेएट्स लिखते हैं—

"कुल वर्ष भर में कुछ समय तो ऐसा होता है जिससे किसान के कुटुम्ब के सब मनुष्यों के लिए खेत पर काम रहता है; लेकिन कुछ समय ऐसा भी होता है जब उनके पास काम न रहने की वजह से उन्हें हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहना पड़ता है। ऐसे समय में उनकी काफी शक्ति बेकार जाती है, इसलिए उनके लिए किसी दूसरे सहायक धन्धे की जरूरत है।"[२]

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि मि० टेलएट्स व्यर्थ जाने वाली शक्ति का और सहायक धन्धे का उल्लेख करते हैं।

संयुक्त प्रान्त के मर्दुमशुमारी-अफसर मि० एडाई का विवरण इससे भी अधिक स्पष्ट है। वह कहते हैं—

"आबादी का घना भाग तो खेतिहर है और यहां खेती का अर्थ साधारण रीति से साल में दो फसल जोतना, बोना, काटना और रखना है। विलायत की-सी मिली-जुली खेती यहाँ नहीं है। इस तरह की खेती में कभी-कभी थोड़ी मुद्दत के लिए बड़ी-कड़ी मेहनत रहती है—साधारण रीति से दो बोवाई, कटाई, बरसात में कभी-कभी निराई और सरदी में तीन चार की सिंचाई—और बाकी साल भर प्रायः कोई काम नहीं रहता। ऐसे भागों में जहां खेती की दशा अनिश्चित रहती है, कभी-कभी मौसिम भर और कभी साल भर भी, बेकार रह जाना पड़ता है। ये बेकारी के दिन अधिकांश अवस्था में सुस्ती में ही बीतते हैं। जहां किसान कोई ऐसा काम कर सकता है, जो खेती से बचे हुए समय में सहज ही हो सके और जिसमें बराबर लगे रहने की जरूरत न हो, तो उस काम की जो मजदूरी मिले, वह बचाये हुए समय के दाम हैं, उससे बरबादी बचती है और वह साफ मुनाफा है। इनमें सबसे अच्छा नमूने का काम और जिसका सबसे अधिक प्रचार भी है, हाथ के कते सूत का कपड़ा तैयार करना है।"

मि० एडाई के उक्त विवरण पर से ये तीन अत्यन्त महत्वपूर्ण मुद्दे

१ बाबू राजेन्द्रप्रसाद कृत "Economics of Khadi" पृष्ठ ३

२ ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९८

निकलते हैं—(१) विलायत की-सी मिली-जुली खेती यहां सम्भव नही है, (२) सहायक धन्धे का रूप कैसा होना चाहिए और (३) सूत कातना विशेष प्रकार का सहायक धन्धा है।

किसी भी विचारशील व्यक्ति के मन मे स्वभावतः ही ये प्रश्न उठे बिना रह नही सकते कि आखिर हिन्दुस्तान के किसान कुछ अर्से तक बेकार क्यों रहते है? उन्हे वर्ष भर काम क्यों नहीं करना चाहिए? मि० एडाई का जो उद्धरण ऊपर दिया गया है उसमे अज्ञात रूप मे इन प्रश्नो का उत्तर दिया गया है। एक तो यह कि हिन्दुस्तान के किसानों के पास उनकी ग़रीबी के कारण, जमीन थोडी होती है, जिससे उनकी खेती का काम जल्दी ही पूरा हो जाता है। दूसरे, वर्षा का परिमाण अनिश्चित रहता है, इसलिए कुछ अर्से तक निठल्लापन अनिवार्य हो जाता है। यहां इंग्लैण्ड की तरह किसानो के पास न तो जमीन के मोटे-मोटे टुकडे हैं, न नियमित वर्षा ही होती है, इसलिए उनको बडी दिक्कत होती है।

ऐसे किसानों के लिए सहायक धन्धे की अत्यन्त आवश्यकता है। इस धन्धे का कैसा स्वरूप होना चाहिए मि० एडाई ने यह अच्छी तरह स्पष्ट करके दिखा दिया है। उनका कहना है कि "जिसमे बराबर लगे रहने की ज़रूरत न हो" ऐसा धन्धा चाहिए। यह ठीक ही है! अगर सहायक धन्धे मे ही सारा समय लगने लगे तो वह सहायक न रहकर मुख्य धन्धा हो जायगा! जब मन मे आवे तभी किया जासके और करना सम्भव हो सके ऐसा ही सहायक धन्धा उपयुक्त हो सकता है, दूसरा नही।

मि० एडाई ने जो यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उपर्युक्त दृष्टि से विचार करने पर सूत कातना ही ऐसा विशेष सहायक धन्धा है. यह उनके लिए अत्यन्त प्रशंसा की बात है!

अब हम, कुछ अंग्रेज़ लेखकों और अधिकारियों ने किसानों की बेकारी की अवधि के सम्बन्ध मे जो मत व्यक्त किये है, उनपर कुछ नज़र डालेंगे।

पंजाब सरकार के सहयोग-विभाग के रजिस्ट्रार मि० एच० केलवर्ट

किसानों के काम का हिसाब लगाकर अपनी Wealth and Welfare of the Punjab नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"पंजाब का औसत किसान जो कुछ काम करता है, बारहों मास की पूरी मेहनत में डेढसौ दिनों से अधिक उसका काम नहीं ठहरता और इन हरेक दिनों में भी काम का औसत कुछ उन्नत पाश्चात्य देशों की अपेक्षा काफ़ी कम होता है।"[1]

बारह महीने में डेढसौ दिन काम का मतलब हुआ वर्ष में पांच महीने काम और सात महीने बेकारी।

बंगाल सरकार के भूतपूर्व सेटिलमेण्ट आफीसर मि० जे० सी० जेक अपनी "Economic Life of a Bengal District" नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"जब किसान की ज़मीन सन बोने लायक नहीं रह जाती, तब उसका साल भर का समय तीन महीने की कड़ी मेहनत और नौ महीने की बेकारी में बीतता है। और अगर वह जूट के साथ ही चावल की भी खेती करे तो जुलाई-अगस्त के महीनों में उसे छः हफ्ते का काम और मिल जाता है।"[2]

इसका अर्थ हुआ वर्ष भर में साढ़े चार महीने काम और साढ़े सात महीने बेकारी।

मध्यप्रान्त की स्थिति यह है कि साल भर में सिर्फ़ बरसात-बरसात के चार महीने काम रहता है और बाकी के करीब-करीब आठ महीने बेकारी में बिताने पड़ते हैं। इस प्रान्त के मर्दुमशुमारी अफ़सर मि० शेटन लिखते हैं—

"बहुसंख्यक लोग जिस खेती पर अवलम्बित रहकर अपनी जीविका चलाते हैं, वह खेती लोगों को पूरे साल भर काम नहीं देती। प्रान्त में अधिकांश भाग ऐसा है जहां बरसात के अन्त में काटी जानेवाली खरीफ की फसल ही महत्व की चीज़ है। इस फसल का अनाज काटकर इकट्ठा

१. पृष्ठ २४५ : ग्रेग : Economics of Khaddar" पृष्ठ १०८ से
२. पृष्ठ २९ : " पृष्ठ १०८ से

करने के वाद दूसरी वरसात शुरू होने तक वीच के समय में किसानों के पास शायद ही कोई काम रहता है।"[१]

मद्रास प्रान्त में काम के दिन कुछ अधिक प्रतीत होते हैं। मद्रास यूनिवर्सिटी के प्रो० गिल्वर्ट स्लेटर अपनी "Some Months in Indian Villages" नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"मद्रास प्रान्त की एक फसलवाली ज़मीन पर किसान को साल भर में सिर्फ पांच महीने काम मिलता है और जहां की ज़मीन में दो फसलें होती हैं वहां किसान को आठ महीने काम रहता है।"[२]

(इसके आगे वह कहते हैं कि यही दशा मैसूर की और शेष समस्त दक्षिण भारत की भी है !)

लेकिन आगे यह भी कहते हैं—

"इस समय दक्षिण भारत में ऐसी स्थिति पैदा होगई है कि किसानों को काम वहुत कम मिलता है, जिसके कारण उन्हें कई महीने वहुत ही कम वेतन पर काम करना पड़ता है।"[३]

हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों की साधारणतया यह स्थिति है। कम-से-कम १० करोड़ ७० लाख आदमियों को साल भर में कम-से-कम चार महीने वेकार रहना पड़ता है, इससे राष्ट्र की कितनी प्रचण्ड शक्ति व्यर्थ जाती है इसकी सहज ही कल्पना हो सकती है। अपने यहां एक कहावत है—"उद्योगी के घर ऋद्धि-सिद्धि पानी भरती है।" इस कहावत के अनुसार अगर उपरोक्त वेकार लोगों के फुरसत के समय का किसी उपयुक्त धन्धे में उपयोग किया जाय तो उससे उनकी आर्थिक स्थिति में कम-से-कम आंशिक उन्नति तो अवश्य हुए विना नहीं रहेगी। अगर उनका वह समय आलस्य में वीता तो यह अनुभव सिद्ध वात है कि अंग्रेज़ी कहावत के अनुसार शैतान अपनी शैतानी से वाज़ नहीं आयेगा।

१ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ १९५।

२ पृष्ठ १६ · ग्रेग Economics of Khaddar पृ० १९६ में

३. पृष्ठ २३४ : ग्रेग की " " पृ० १९६ में

: ७ :

चरखा-संजीवनी

"वास्तव में गांधीजी एक महान् औद्योगिक इञ्जिनियर प्रतीत होते हैं।"[१]

"हिन्दुस्तान में आजकल बेकारों की संख्या बहुत अधिक है। वास्तव में ये बेकार वे अंजन हैं जिनमें अन्न-जल रूपी थोड़ा-बहुत कोयला-पानी तो दिया जाता है, लेकिन जिन्हें माल उत्पन्न करनेवाले यन्त्र या मशीन आदि से जोड़ा नहीं जाता। गांधीजी उन्हें चरखे के साथ जोड़कर उनसे काम लेना चाहते हैं, अर्थात इस समय जो अपार सूर्य-शक्ति बेकार जा रही है उसे काम में लाना चाहते हैं।"[२]

जो भारतवर्ष अनेक बार वैभव के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ रहा, आज उसकी कैसी दयनीय स्थिति हो गई है! उसके सारे उद्योग-धन्धे टूट गये हैं; लग-भग डेढ़ सौ वर्ष से उसकी सम्पत्ति का स्रोत कल-कल करता हुआ निरन्तर विदेश की ओर प्रवाहित हो रहा है; ९७ प्रतिशत लोगों के पास खेती के सिवा जीविका का और कोई साधन न रहने के कारण वे सोलहों आने दरिद्रता के चंगुल में फंसे हुए हैं; अकालों का ताता बंध गया है और आबादी का कम-से-कम एक तिहाई हिस्सा सालों-साल चली आनेवाली बेकारी से त्रस्त और बेदम होगया है। इस प्रकार हमारी मातृभूमि—भारतवर्ष—लगभग मरणासन्न स्थिति तक पहुँच चुकी है!!

ऐसे समय में उसके लिए संजीवनी मात्रा की अत्यन्त आवश्यकता थी। उसके सपूत—महात्मा गांधी—ने वही आज उसे दी है। इस दृष्टि से देखने पर महात्मा गांधी राष्ट्रीय धन्वन्तरी ठहरते हैं।

१ ग्रेग Economics of Khaddar पृष्ठ ३३

२. ,, ,, पृष्ठ १९ (खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र पृष्ठ ३१)

लेकिन वह केवल धन्वन्तरी ही नहीं, इञ्जिनियर भी हैं। Economics of Khaddar—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र—के लेखक श्री० रिचार्ड बी० ग्रेग ने उनका नाम 'राष्ट्र के महान् औद्योगिक इञ्जिनियर' रख कर उनकी दूरदर्शिता का सम्मान किया है।

मि० ग्रेग ने खादी के आन्दोलन की वैज्ञानिक और मार्मिक मीमांसा कर हिन्दुस्तान की बडी सेवा की है। इसके लिए इसमे कोई शक नही है कि भारतीय जनता सदैव उनकी ऋणी रहेगी।

इस अध्याय मे जिस विषय का प्रतिपादन किया गया है, वह उन्हीं की पुस्तक के आधार पर किया गया है! मि० ग्रेग अमेरिकन है और वकील होने के साथ-साथ इञ्जिनियर भी हैं। वे प्रत्येक वस्तु को इञ्जिनियर की दृष्टि से देखते हैं उनके ग्रन्थ मे यह बात पग-पग पर दिखाई देगी। उनका दृष्टिकोण यह है—

"संसार मे दो तरह की शक्तियाँ है—आध्यात्मिक (Spiritual) और आधिभौतिक (Physical) इनमे की आधिभौतिक शक्ति सूर्य से मिलती है। यह शक्ति भी दो तरह की है—सङ्कलित और प्रवाही अथवा तरल। कोयला और पेट्रोलियम—ये गत युग के सूर्य-शक्ति के प्रवाह के रूपान्तरित संग्रह और तालाव ही है। समुद्र के पानी का वाष्पी-करण सूर्य ही करता है। इसलिए पानी हमे प्रकारान्तर से वादल और वारिश के रूप मे सूर्य से ही मिलता है। ये सारे संकलित शक्ति के उदाहरण है। घोडे, मवेशी, और मनुष्य की शक्ति का भी उद्गमस्थान सूर्य ही है। ये प्रवाही सूर्य-शक्ति के उदाहरण है। इन सब प्राणियो का जीवन वनस्पतियों पर अवलंबित है। वनस्पतियां, सूर्य-शक्ति इकट्ठा करती हैं, क्योंकि वनस्पतियां सूर्य से ऑक्सीज़न ग्रहण करके कारबन छोडती है। फसलो की वृद्धि भी भी सूर्यकिरणो से ही होती है। इस फसल से, धान्य से, अन्न से ही ये सब प्राणी जीवित रह सकते है, तब प्रकारान्तर से सूर्य ही—सूर्य-किरण ही सारी जडशक्ति का उत्पादक है। ऐसी हालत मे इस सूर्यशक्ति का, सूर्यकिरण का, अन्न का, अन्न खानेवाले मानव की शक्ति का, पहले जितना उपयोग होता था उससे अधिक उपयोग करके उसे व्यवस्थित और

कार्यस्वरूप देनेवाली कोई भी योजना इञ्जिनियरी की दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से भी हितकारक ही सिद्ध होगी।

मानव-प्राणी जो अन्न खाता है उससे ही उसे शक्ति प्राप्त होती है। और अन्न सूर्य-किरणों की सहायता से तैयार होता है, इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि वह प्रकारान्तर से सूर्य-किरणों पर—सूर्य की शक्ति पर—जीवित रहता है। पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके है कि हिन्दुस्तान मे १० करोड से अधिक लोग बेकार है। इन सबको अन्नरूपी ईंधन से काम करने की शक्ति मिलती है; लेकिन क्योंकि उनके पास काम नहीं है, इसलिए उनकी वह शक्ति—सूर्य-शक्ति व्यर्थ जाती है। दस करोड से अधिक बेकार लोगों की शक्ति को इस तरह व्यर्थ जाने देने का अर्थ हुआ इतनी सूर्य-शक्ति को बेकार जाने देना। इस प्रकार इस शक्ति के व्यर्थ जाने से राष्ट्र की अपार हानि होती है। ऐसी दशा मे महात्माजी जैसे व्यवहार कुशल वैश्य के दिमाग में जो यह बात समाई कि उस शक्ति को व्यर्थ न जाने देकर किसी भी काम के ज़रिये उसका उपयोग कर लेना चाहिए, इसी में उनकी दूरदर्शिता और व्यवहार कुशलता दिखाई देती है।

महात्माजी अपना एक मिनट भी व्यर्थ नहीं गँवाते और अपनी शक्ति भी बेकार नहीं जाने देते। ऐसी दशा मे उन्हें अपने करोड़ों देश-वासियों के समय और शक्ति को स्वयं अपनी आंखों के सामने बेकार जाते हुए देखना कैसे सहन हो सकता है? बेकार लोगों को काम देकर उनकी व्यर्थ जाने वाली शक्ति का उपयोग कर लेना, इसीमें महात्माजी का इञ्जिनियरिंग-कौशल्य है। दूसरे इञ्जिनियरों और महात्माजी मे केवल उतना अन्तर है कि दूसरे इञ्जिनियर तैल भाफ वायु (Gas) और विद्युत अथवा बिजली की सहायता से चलने वाले यन्त्रों एवम् मशीनरी का उपयोग करते हैं और महात्माजी उसके बजाय चलते-फिरते, बोलते-चालते मनुष्यरूपी अंजन का उपयोग करते है। दोनों ही तरफ़ के इञ्जिनों की शक्ति का उद्गम स्थान सूर्य ही है। जिस तरह दूसरे प्रकार के अंजनों को किसी मशीन आदि एकाधिक यन्त्र

से संलग्न होना पड़ता है, उसी तरह महात्माजी ने मनुष्यरूपी एंजनों को चरखे तथा करघे में संलग्न किया है। दूसरे एंजनों को किसी-न-किसी तरह का ईंधन देना पड़ता है, उसी तरह मनुष्यों के लिए अन्न ईंधन का काम दे सकता है। नीचे दिये हुए विवरण से यह रचना विशेषरूप से स्पष्ट होगी।
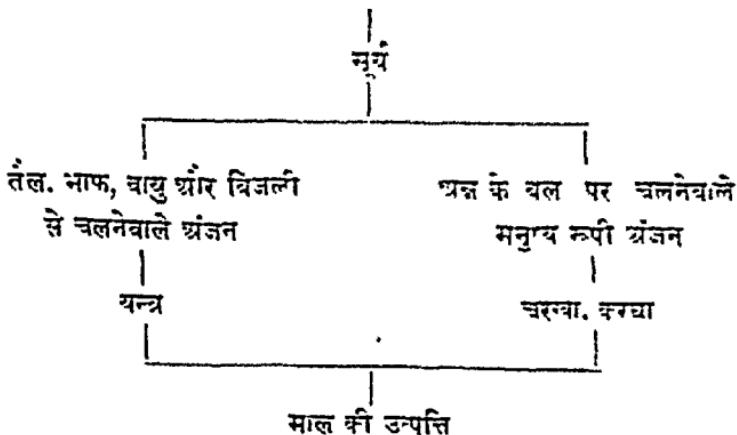
मि० लिप्सन अपनी (Increased Production) बढ़ी हुई उत्पत्ति—नामक पुस्तिका में लिखते हैं—

"देश की सम्पत्ति मुख्यतः उसके निवासियों की कार्य क्षमता पर ही निहित होती है। जिस देश में प्राकृतिक साधनों की तो बहुतायत है, किन्तु निवासी आलसी और पिछड़े हुए हैं; दूसरी ओर देश में नैसर्गिक साधनों की तो इतनी विपुलता नहीं है, लेकिन निवासी पूरे अध्यवसायी और परिश्रमी हैं, इन दो तरह के राष्ट्रों की तुलना करने पर पहली तरह का राष्ट्र ही दरिद्री ठहरेगा। काम करने वाले लोगों की कार्य शक्ति को बढ़ानेवाली कोई भी बात हो, उससे राष्ट्र की सम्पत्ति में वृद्धि ही होगी, इसके विपरीत उसकी कार्य क्षमता में कमी करनेवाली कोई भी बात राष्ट्र की सम्पत्ति को धक्का पहुँचानेवाली होगी। इससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि किसी भी समाज को अपनी किसी भी इकाई की

द्रव्योपार्जन शक्ति का ह्रास न होने देना चाहिए। बेकारी की केवल चिन्ता अथवा भय उत्पादक कार्य के सहयोग मे विघ्नरूप हो बैठता है। हमे भूतदया की इस दृष्टि से भी यह बात—बेकारी का यह प्रश्न—भूलना नहीं चाहिए।[1]

मि० लिप्सन का यह विवेचन हिन्दुस्तान की स्थिति पर सर्वथा लागू होता है। महात्माजी ने बेकारी के इस प्रश्न को हाथ मे लेकर करोड़ों मानव-प्राणियों के जीवन को सुखी बनाने और साथ ही राष्ट्र की सम्पत्ति मे भी वृद्धि करने का कैसा प्रयत्न आरम्भ किया है यह इस पर से सहज ही मालूम पड़ जाता है।

पहले हम यह देखेंगे कि हिन्दुस्तान के बेकारों की कितनी शक्ति व्यर्थ जाती है। हिन्दुस्तान पर पडनेवाली सूर्य-किरणों की शक्ति का माप लेने पर उसका औसत प्रतिवर्ष ४६,६६,००,००,००,००,००,००,००० अश्व शक्ति[2] (हॉर्स पॉवर) होता है। मनुष्य साधारणतः एक मिनट मे १/६ अथवा १/१०- अश्व शक्ति काम कर सकता है।

पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके है कि हिन्दुस्तान मे १० करोड ७० लाख मनुष्य केवल खेती का काम करते है, इससे उनके पास वर्ष भर में पांच से लेकर सात महीने तक कोई काम नहीं रहता। मनुष्य १/१० अश्व-शक्ति काम करता है। अगर १० करोड ७० लाख आदमी इस औसत से काम करने लगे तो उनका काम १ करोड ७० लाख अश्व-शक्ति होगा। अगर यह मान लिया जाय कि चरखे पर कातने के लिये १/१०० शक्ति की आवश्यकता होती है तो उससे १ अरब ७० करोड चरखे चलाने के लिए आवश्यक शक्ति का निर्माण होगा।

सन् १९१९ मे बम्बई की मिलों और कारख़ानों मे मिलाकर कुल १ लाख अश्वशक्ति ही काम होता था। हिन्दुस्तान के सब कारख़ाने १० लाख अश्वशक्ति से कुछ ही अधिक काम देते हैं। इस दृष्टि से

१ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ ९१

२ ५०० पौंड वजन एक सेकन्ड मे एक फुट ऊँचा उठाने मे जितनी शक्ति की दरकार होती है उतनी को १ अश्वशक्ति (हॉर्स पॉवर) कहते है।

हिसाब लगाने पर बम्बई की मिलो और कारखानो की अपेक्षा हिन्दुस्तान के अकेले बेतहर किसान-बेकारो की काम करने की शक्ति अधिक है। यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि इसमे देश के दूसरे बेकारो की शक्ति का समावेश नहीं किया गया है। यह हुआ देश के किसान-बेकारो की शक्ति का कामचलाऊ औसत हिसाब। अब हम यह देखेगे कि इस बेकारी के कारण आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र की कितनी हानि होती है और बेकारो को काम दिया जाने पर उस हानि की किस तरह पूर्ति हो सकती है।

हम यह मानकर चले कि किसानो की दैनिक मज़दूरी तीन आने है। वास्तव मे तो उनकी दैनिक मज़दूरी इससे अधिक ही है, फिर भी हम कम-से-कम औसत लगाकर हिसाब करेगे।

१० करोड ७० लाख आदमियों को तीन महीने अर्थात नब्बे दिन— इन तीन महीनो मे ये सर्वथा बेकार रहते है—काम मिले तो तीन आने रोज के हिसाब से वे १,८०,५६,२५,००० रुपये कमा सकेगे। भारत सरकार की सन् १९२४-२५ के एक वर्ष की कुल आय—१,३८,०३,९२,२४४ रु० से भी यह रकम अधिक है! मान लीजिए कि इन बेकारो ने तीन महीने तक पूरे दिन काम न कर साधारण कातनेवालो की तरह दिन के कुछ हिस्से मे काम करके एक आना रोज कमाया तो भी वे वर्ष के अन्त अन्त मे ६० १८,७५,००० कमा सकेंगे। यह रकम भी कोई मामूली रकम नहीं है।

यह हिसाब सिर्फ तीन महीने लायक ही है। पिछले अध्याय मे हम यह देख ही चुके हैं कि बेकारी की मियाद असल मे इसकी अपेक्षा कहीं अधिक होती है। उसी तरह यह हिसाब तो केवल किसान बेकारो से चरखा चलवाने पर उससे राष्ट्र की सम्पत्ति मे कितनी वृद्धि होगी उसका हुआ। किसानों के सिवा देश मे दूसरे बेकारों की संख्या भी काफी है, उन्हे काम पर लगाया जाय तो उससे उक्त सम्पत्ति मे और भी अधिक वृद्धि होगी, यह अत्यन्त स्पष्ट है।

ग्रेग साहब का कहना है कि सूर्य-शक्ति के सम्पूर्ण उपयोग की दृष्टि से विचार करने पर मिल की अपेक्षा चरखे की काम करने की शक्ति अधिक है, क्योंकि चरखे अथवा मिल के तकुओं के उपयोग मे आने के

पहले उनके बनाने में कितनी शक्ति ख़र्च होती है यह बात विचारणीय है।[1] शुरू से लेकर अन्त तक पूरी मिल की सारी मशीनें बनाने में लकड़ी के चरखे की अपेक्षा कई गुना अधिक सूर्य-शक्ति ख़र्च होती है। उसी तरह इन मशीनों के उपयोग में भी उतनी ही अधिक प्रचण्ड शक्ति खर्च होती है। जबकि चरखे पर कातने में बहुत ही कम सिर्फ १/८ अश्वशक्ति ही खर्च होती है।

शिल्पी (इन्जनियरिंग) की दृष्टि से, जितना माल बाज़ार में खप जाने की उचित आशा की जा सकती है, और आगे खपत में जितनी बढ़ती की सम्भावना हो, उतने ही माल की तैयारी में जितनी मशीनों की ज़रूरत हो उसी अन्दाज़ से वे तैयार की जानी चाहिएं। आवश्यकता से अधिक बड़ी अथवा प्रचण्ड शक्ति की मशीनों को काम में लाने से शक्ति का अपव्यय होता है। मशीनों की अनावश्यक वृद्धि का अर्थ निरर्थक रहने वाले यन्त्रों की चिन्ता करना-सा है। उससे ज़रूरत से कहीं ज्यादा ख़र्च और नुकसान होता है।[2]

यह बात बिलकुल साफ़ है कि चरखे के बनाने और उसके चलाने में शक्ति कम लगती है। उसी तरह यह भी हमारे प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि लोहे की मशीनों के मुकाबले में उसकी कीमत भी बहुत ही कम अथवा क्षुद्र होती है। इसके सिवा चरखे की दुरुस्ती में मशीन की दुरुस्ती के मुकाबले में बहुत ही मामूली सी रक़म खर्च पड़ती है। कुल मिलाकर सब बातों का विचार कर वैज्ञानिक भाषा में कहा जाय तो उसका मतलब यह होगा कि मिलों की अपेक्षा चरखे विद्यमान सूर्यशक्ति का अधिक सस्तेपन से उपयोग कर सकते है।

मि० ग्रेग का कहना है कि शिल्पी और आर्थिक दृष्टि से चरखों और करघों की उपयोगिता कीमत में मिलों से ज्यादा ठहरती है। आगे वह यह भी कहते है "मिलों से थोड़े से मनुष्यों के एक समाज को अधिक मुनाफा होता है। इसे एक तरफ रखकर हमें यह

१ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ २७

१. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ २८

भी देखना चाहिए कि जो मनुष्य-बल और सूर्य-बल इस समय राष्ट्र को उपलब्ध है, उसका ऐसी दशा मे बेकार नष्ट होना इतनी भारी हानि है कि, उसके मुकाबले मे मुट्ठीभर पूँजी वालो का उक्त भारी मुनाफा कुछ भी नही ठहरता। [१]

मि० ग्रेग का यह सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण होने के सिवा विचार-क्रान्ति पैदा करने वाला भी है। अस्तु

अबतक के विवेचन से पाठकों के ध्यान मे यह बात अच्छी तरह आ गई होगी कि हिन्दुस्तान के १० करोड से अधिक किसानो के पास वर्ष मे कम-से-कम तीन महीने खेती का कोई काम नही रहता, इसलिए उनकी प्रचण्ड शक्ति और समय व्यर्थ ही जाता है अथवा उसका दुरुपयोग होता है। ऐसी दशा मे उन्हे अगर चरखे और करघे देकर उनपर काम लिया जाय तो उनकी व्यर्थ जानेवाली शक्ति और समय का सदुपयोग होकर राष्ट्र की सम्पत्ति मे कितनी वृद्धि हो सकती है। ऊपर हम देख ही चुके है कि कम-से-कम एक आना रोज़ मज़दूरी के हिसाब से वर्ष के अन्त मे वे ६०,१२,७५,००० रु० कमा लेंगे। दाने-दाने अन्न के लिए तरसनेवालो की दृष्टि मे यह रकम कितनी भारी है। हद दर्जे की दरिद्रता मे फँसे हुए और बार-बार पडने वाले अकालों से त्रस्त हुए इन दीन-हीन लोगों द्वारा अवकाश के समय मे काम करके कमाई हुई यह थोडी सी रकम भी उनके लिए संजीवनी मात्रा के समान हितकर हुई है, [२] और आगे भी होगी। [३]

१ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृ० २९ २ इस पुस्तक का "अखिल भारतीय खादी कार्य" नामक अध्याय देखिए।

३ बरसात के तीन-चार महीनो मे जिस तरह किसान बेकार रहते है, उसी तरह उनके बैल भी निकम्मे रहते है। ऐसी दशा मे जिस तरह किसानो को चरखे और करघे पर लगाकर उनकी व्यर्थ जानेवाली शक्ति का उपयोग कर लेने की कल्पना सूझी, उसी तरह अगर कोई इन बैलो के लिए भी कोई ऐसा सहायक धन्धा तलाश कर बतावे तो उससे राष्ट्र की सम्पत्ति मे निश्चय ही वृद्धि होगी।

: ८ :

चरखा ही क्यों ?

हिन्दुस्तान जैसे कृषिप्रधान राष्ट्र के ८९ फीसदी लोग गांवों में निवास करते हैं और इनमें ६० फीसदी लोग खेती पर अपनी जीविका चलाते हैं। वर्ष में कम-से-कम तीन-चार महीने उनके पास काम नहीं रहता, ऐसी दशा में उनके हाथ में चरखा ही क्यों दिया जाय, अब हमें इसी विषय पर चर्चा करनी है।

दूसरे सब धन्धों को एक तरफ छोड़कर सिर्फ चरखे को ही क्यों अपनाया जाय, इस प्रश्न पर सब दृष्टियों से विचार करने के लिए नीचे लिखे चार मुद्दों पर विस्तारपूर्वक चर्चा करना आवश्यक होगा—

(१) पिछले जमाने में चरखे की कारगुजारी,

(२) चरखे की उपयुक्तता,

(३) दूसरे धन्धों से चरखे की तुलना, और

(४) चरखे के सम्बन्ध में फैली हुई ग़लतफहमियों का निराकरण।

आइये, इनमें से एक-एक मुद्दे पर क्रमशः विचार करें।

(१) अतीत काल में चरखे की कारगुज़ारी

पिछले अध्याय में यह बताया ही जा चुका है कि वेदकाल से लेकर अंग्रेजी शासन के आरम्भ तक किस प्रकार चरखा वस्त्र स्वावलम्बन और उपजीविका का सहायक साधन था। बहुत पुराने जमाने की चर्चा क्यों करें ? अगर हम यह जान लें कि सौ-सवासौ वर्ष पहले भारतीय जीवन में चरखे ने कौनसा स्थान प्राप्त कर लिया था और उसने भारतीय जगत की कैसी सहायता की, तो आज चरखे का जो मजाक उड़ाया जाता है उसका रहस्य आसानी से समझ में आ जायगा।

इस सम्बन्ध में श्रीरमेशचन्द्र दत्त ने अपनी "The Economic

History of British India" नामक पुस्तक मे बहुमूल्य जानकारी दी है।

हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसका अपने उद्योग-धन्धे और व्यापार मे उपयोग कर लेने की नीयत से सन् १८०० मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर-जनरल लार्ड वेलज़ली ने कम्पनी के ही एक कर्मचारी डा० बुकानन को उस काम के लिए नियुक्त किया। डा० बुकानन ने देश की कृषि और उद्योग-धन्धों का जो निरीक्षण किया वह तीन ग्रन्थों के रूप में प्रकाशित हुआ है। श्री रमेशचन्द्र दत्त ने उपरोक्त जानकारी इन्ही ग्रन्थों के आधार पर दी है, ऐसी दशा मे वह कितनी अधिक विश्वसनीय है यह बताने की कुछ आवश्यकता ही नहीं रहती। इसमें से सिर्फ चरखे और हाथ के करघे सम्बन्धी जानकारी ही नीचे दी जाती है।

डा० बुकानन ने उत्तर-हिन्दुस्तान के विहार प्रान्त का दौरा कर अपने निरीक्षण का जिलेवार जो विवरण दिया है, वह इस प्रकार है—

पटना शहर और विहार ज़िला[1]

क्षेत्रफल ५,३३८ वर्गमील

आबादी ३३,६४,४२०

खेती के साथ-साथ कातना और बुनना ये दो बडे राष्ट्रीय धन्धे थे। कातने का काम स्त्रियां करती थीं। इस जिले मे कातनेवाली स्त्रियों की संख्या ३,३०,४२६ थी। "इनमे की वहुत सी स्त्रियां तीसरे पहर कातती थीं और प्रत्येक स्त्री वर्ष भर मे जितना सूत कातती थी, उसका औसत निकालने पर उसकी क़ीमत करीब सात रुपये, दो आने, आठ पाई[2] और कुल स्त्रियों के वर्ष भर मे काते हुए सूत की क़ीमत २३,६७,२७७ रु०

१ श्री रमेशचन्द्र दत्त, भाग १ पृष्ठ २३५—२३६

२ उस समय रुपये की अच्छी कीमत थी, साथ ही सम्तापन भी खूब था। उस समय की कीमत का आज हिसाव लगाने पर यह रकम उससे पचगुनी होगी। उदाहरणार्थ इतिहासज्ञो के मत से उस समय के ७ रु० २ आ० ८ पा० आज के ३५ रु० १३ आ० ४ पा० के वरावर

होती थी। इस सूत के कातने मे जो कच्चा माल—रुई—लगा, उसकी फुटकर क़ीमत १२,८६,२७२ थी। कुल आमदनी में से इस रकम को घटा देने पर १०,८१,००९ रु० ख़ालिस नफ़ा रह जाता है, और इस प्रकार प्रत्येक स्त्री को ३ रु० चार आने मिले[1]।

सूती कपडा बुननेवाले जुलाहे बहुत थे। चादर अथवा पलंगपोश का कपडा बुनने के ७५० करघे थे। उनसे कुल ५,४०,००० रु० का माल तैयार होता था। इसमे से सूत की कीमत घटा देने पर ८१,४०० रु० ख़ालिस मुनाफ़ा रहता था। इस हिसाब से तीन जुलाहों के प्रत्येक करघे पर १०८ रु० लाभ रहता था, अथवा दूसरे शब्दों में कहा जाय तो प्रत्येक जुलाहे को ३६ रु० मुनाफ़ा होता था। लेकिन सूती कपड़ा बुनने वाले जुलाहों मे के बहुत से जुलाहे गॉवडों में रहनेवाले लोगों के उपयोग के लिए प्रति वर्ष २४,३८,६२१ रु० का मोटा-झोटा कपडा तैयार करते थें। इसमे से सूती की क़ीमत घटा देने पर ६,६७,२४२ रु० ख़ालिस मुनाफ़ा रहता था। इस हिसाब से प्रत्येक करघे पर २८ रु० लाभ होता था।

पूर्णतया अथवा आंशिक रूप में 'टसर' नामक रेशमी कपडा बुनने-वाले जुलाहे मुख्यतः फतुहा, गया और नावडा में रहते थे। वे वर्ष के अन्त तक ४,२१,७१० रु० का माल तैयार करते थे और उन्हे प्रत्येक करघे पर ३३ से लेकर ६० रु० तक मुनाफ़ा रहता था। इस प्रत्येक करघे पर एक-एक स्त्री-पुरुष को काम करना पडता था।

शहाबाद ज़िला[2]

क्षेत्रफल ४०,८७ वर्गमील; आबादी १४,१६,५२०

होते, उसी तरह उस समय के २३,६७,२७७ रु० का मतलब आज के १,१८,३६,३८५ रु० होता। इसलिए हम चाहते है कि इस अध्याय को पढते समय उस समय की कीमतो का अनुमान इस हिसाब से लगावे।

१ श्री रमेशचन्द्र दत्त का कहना है कि जैसे-जैसे ऊँचे माल की माँग में लगातार कमी होती गई, वैसे-वैसे कातने वालियो की आमदनी में कमी हो उनका भारी नुकसान हुआ। दत्त, भाग १, पृष्ठ २३५

२ दत्त, भाग १, पृष्ठ २३८-२३९

कातना और बुनना, शहाबाद ज़िले के ये दो बडे राष्ट्रीय धन्धे थे। १,५६,५०० स्त्रियाँ कातने का काम करके साल के अख़ीर में १२,५०,००० रु० का सूत तैयार करती थीं। रुई की कीमत घटा देने पर प्रत्येक स्त्री की आय का औसत १॥ से लेकर ३ रु० तक पडता था। यह आमदनी बहुत कम है; लेकिन प्रत्येक स्त्री के कुटुम्ब मे इतनी आमदनी की वृद्धि होती थी। (दत्त)

इस ज़िले के जुलाहे सूती कपडा ही बुनते थे। इन जुलाहो के ७०,२५ घर थे और उसके पास ७,६५० करघे थे। वर्ष के अन्त मे प्रत्येक करघे पर २०।।।) की आमदनी होती थी। इस प्रत्येक करघे पर एक स्त्री-पुरुष और एक लडका और लडकी के काम करने की ज़रूरत होती थी। डा० बुकानन ने यह आशंका प्रकट की है कि "जबकि ४८) रु० से कम आमदनी से एक कुटुम्ब का भरण-पोषण नहीं होता, तब प्रत्येक करघे की जो आमदनी दिखाई गई है वह उचित से कम दिखाई गई है।"

भागलपुर ज़िला[१]

क्षेत्रफल ८,२२५ वर्गमील, आबादी २०,१६,९००

इस ज़िले मे सब जाति के लोगो को कातने की छूट थी। १६०,००० स्त्रियाँ कातती थी और रुई की क़ीमत घटाकर प्रत्येक स्त्री वर्ष के अख़ीर मे ४।।) रु० कमाती थी। कुटुम्ब की समूची आय मे इससे वृद्धि होती थी!

कोरा रेशम बुननेवाले जुलाहे कम थे। भागलपुर शहर के नज़दीक बहुत से जुलाहे रेशम और सूत मिलवाँ कपडा बुनते थे। इस तरह का मिश्र (मिला हुआ) कपडा बुनने के करघो की तादाद ७,२७५ थी। इस तरह का मिश्र कपडा बुनने पर प्रत्येक जुलाहे को ४६) रु० वार्षिक आय होती थी। इसके सिवा उनकी स्त्रियों की आय अलग है।

सूती कपडा बुननेवाले ७,२२६ करघे थे। प्रत्येक करघे पर २०) आमदनी होती थी। दूसरी तरह हिसाब करने पर प्रत्येक पति-पत्नी को ३२) रु० मुनाफा रहता था।

१ दत्त, भाग १, पृ० २४१, २४२

इस ज़िले में सूती ग़लीचे, निवाड, तम्बू की रस्सियाँ, छींटें और कम्बल आदि माल भी तैयार होता था।

गोरखपुर ज़िला[१]

क्षेत्रफल ७,४२३ वर्गमील; आवादी १३,८५,४९५

इस ज़िले में १,७५,६००० स्त्रियाँ कातने का काम करती थीं। प्रत्येक स्त्री ढाई रुपया वार्षिक कमाती थी।

यहाँ जुलाहों के कुल ५,४३४ परिवार थे और उनके पास ६११४ करघे थे। डा० बुकानन कहते हैं—"यह अनुमान बहुत कम है। मेरा ख़याल है कि प्रत्येक करघे पर ३६ रु० वार्षिक आय होती होगी।"

नवावगंज ज़िले में छींटें और ज़िले के निवासियों के उपयोग के लिए तैयार होती थीं।

दिनाजपुर ज़िला[२]

क्षेत्रफल ५३७४ वर्गमील; आवादी ३०,००,०००

उच्चश्रेणी की सब स्त्रियों का और किसान-वर्ग की बहुत सी स्त्रियों का कातना एक मुख्य धन्धा था। तीसरे पहर के फ़ुरसत के समय में कातकर प्रत्येक स्त्री वर्ष के अन्त तक तीन रुपये कमा लेती थी। जिले की कत्तिनों ने जो कच्चामाल—रुई—खरीदा उसकी कीमत २,५०,००० रु० और उसको जो सूत कातकर बेचा उसकी कीमत ११,६५,००० रु० थी, इस हिसाब से स्त्रियों को ९,१५,००० ख़ालिस मुनाफ़ा होता था।

रेशमी ताना और सूती बाना का कपडा माल्डा मे तंयार होता था, इसलिए उस कपडे का नाम "माल्डाई" कपडा पड गया था। यहाँ कपडा बुननेवाले ४००० करघे थे। डा० बुकानन का कहना है कि प्रत्येक करघे पर प्रतिमास २० रु० का कपडा निकलने की जो बात कही जाती है उसमें बहुत अतिशयोक्ति है। 'एलाची' नामक वडे अरज़ या पन्ने का कपड़ा बुननेवाले ८०० करघे थे।

खालिस रेशमी कपडा माल्डा के आसपास ही तैयार होता था,

१. दत्त, भाग १ पृ० २४५
२. " " २४८-२४९

इसलिए बुननेवाले जुलाहों के ५०० घर थे और कुल मिलाकर १,२०,००० रु० का माल तैयार होता था।

सिर्फ सूती कपडा तैयार करना अधिक महत्त्व का काम था, वह ज़िले भर में कुल १६,७४,००० रु० का होता था।

हिन्दू समाज की निम्नश्रेणी की कोच, पुलिया और राजवंसी जातियाँ अपने उपयोग के लिए 'पट' अथवा 'रूर' के वस्त्र तैयार करती थीं। बहुत से परिवारों में करघा होने के कारण तीसरे पहर को बहुत-सी स्त्रियाँ काता करती थीं।

माल्डा की मुसलमान स्त्रियों को कपडे पर नकाशी के फूल-पत्ते निकालने का काम मिलता था। इन कपडो पर बेल-बूटेदार नकाशी के फूल होते थे अथवा अलग-अलग फूल या बुंदके होती थीं।

कुछ मुसलमान स्त्रियाँ पाजामा, कंठी अथवा पहुँची बाँधने के रेशमी बन्द भी तैयार करती थी।

पूर्निया ज़िला[१]

क्षेत्रफल ६३४० वर्गमील, आबादी २१,०४,३८०

कोई भी जाति कातने के काम को नीचे दर्जे का काम नहीं समझती थी। ज़िले की बहुत-सी स्त्रियाँ अपने फुरसत के समय में काता करती थी, डा० बुकानन के लिए उनके मुनाफे का अन्दाज लगाना काफी कठिन काम था, फिर भी उनका अनुमान है कि जिले की कत्तिनो ने एक वर्ष में ३,००,००० रु० की रुई से १३,००,००० रु० का सूत काता और इस प्रकार उससे १०,००,००० रु० नफा कमाया।

सिर्फ रेशमी कपडा बुनने के २०० करघे थे, जिनपर ४८,६०० रु० का माल तैयार होता था। इसमें से कच्चे रेशम की क़ीमत के ३४,२०० रु० निकाल देने पर १४,४०० रु० ख़ालिस मुनाफा रहता था। इस हिसाब से प्रत्येक करघे पर वर्ष के अख़ीर तक ७२) रु० मिलते थे।

रुई और रेशम मिला हुआ मिश्र कपडा बुननेवाले जुलाहों की स्थिति दिनाजपुर के जुलाहों जैसी ही थी।

१ दत्त. भाग १ पृ० २५२

सूती कपडा बुननेवाले जुलाहे काफी तादाद मे थे। वे ग्रामीण लोगों के लिए मोटा-झोटा कपडा तैयार करने थे। ये १०, ८६, ५०० रु० का माल तैयार करते थे, जिसपर उन्हे ३२,४०० रु० का खालिस मुनाफा रहता था। इस हिसाब से प्रत्येक करघे पर ३२॥) वार्षिक मुनाफा होता था। अधिक सफाईदार माल तैयार करने के काम मे ३,५०० करघे घिरे हुए थे, उनपर ५०, ६०, ००० का माल तैयार होता था, जिनपर कुल मिलाकर १, ४६,००० रु० का खालिस मुनाफा रहता था। प्रत्येक करघे पर ४३ रु० नफा होता था।

ख़ुद पूर्निया शहर मे दरी और निबाड बुनने का काम होता था। सन का मोटा-झोटा कपड़ा भारी तादाद मे तैयार होता था और पूरब की तरफ की बहुत-सी स्त्रियाँ वस्त्र के स्थान पर उसीका उपयोग करती थीं। धुग्गी और दूरारा ऊनी माल मोटा-झोटा तो होता था; लेकिन बरसात और सरदी के दिनों मे गरीबों के लिए वह बडे काम का होता था।

उन्नीसवीं सदी के पहले और दूसरे दशक मे बिहार प्रान्त के छः ज़िलों मे कताई का काम कितनी भारी तादाद मे होता था, इसका अनुमान लगाने के लिए उपरोक्त जानकारी काफी है।

कत्तिनों की तादाद और उनकी वार्षिक आमदनी का अनुमान सहज ही हो जाय इसके लिए छः जिलों के अंक एक जगह इकट्ठे कर नीचे दिये जाते है :—

ज़िला	कत्तिनों की संख्या	वार्षिक आमदनी
बिहार	३,३०,४२६	१०,८१,००५ रु०
शहाबाद	१,५६,५००	२,३६,२५० ,,
भागलपुर	१,६०,०००	७,२०,००० ,,
गोरखपुर	१,७५,६००	४,३६,००० ,
दिनाजपुर	२,७५,०००?	६,१५,००० ,,
पूर्निया	३,००,०००?	१०,००,००० ,
कुल जोड	१४,००,५२६	४३,६४,२५५ रु०

डा० बुकानन ने दिनाजपुर और पूर्निया ज़िले की कत्तिनो की संख्या

न बताकर सिर्फ उनकी आमदनी का उल्लेख किया है, अतः इस पर से हिसाब लगाकर हमने उनकी क्रमशः २॥। और ३ लाख की संख्या का जो अनुमान किया है, बहुतकर वह ग़लत नहीं ठहरेगा। इन आनुमानिक अङ्कों सहित छःहों जिलों की कत्तिनों की जोड़ लगाने पर वह १४ लाख ५२६ हज़ार होती है। और फ़ुरसत के समय काम करके उन्होंने एक वर्ष में जो कमाई की उसकी जोड़ ४३ लाख ६४ हजार २५५ रु० होती है। आमदनी का यह हिसाब डा० बुकानन का ही है, अतः उसमें सन्देह करने का तो कोई कारण ही नहीं है।

कातनेवाली स्त्रियों की व्यक्तिगत आमदनी यद्यपि थोड़ी दिखाई देती है¹ फिर भी उसका समष्टि रूप से विचार करने पर वह रकम कितनी प्रचण्ड हो सकती है, यह सहज ही समझा जा सकता है। उस समय के ४३,६४,२५५ रु० का अर्थ हुआ इस समय के ७,१६,३१,२७५ रु०। छः ज़िलों की स्त्रियों की फ़ुरसत के समय कातकर की गई यह कमाई कुछ उपेक्षणीय नहीं है! इसके सिवा, इस आमदनी का विचार करने के साथ-साथ उस समय के सस्तेपन का भी ध्यान रखना चाहिए। डा० बुकानन ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि उस समय विहार जिले में एक रुपये के ७० सेर चावल मिलते थे। इसपर से उस समय के सस्तेपन का सहज ही अनुमान हो सकता है। कातनेवाली स्त्रियों को फ़ुरसत के समय कातने से रुपया, दो रुपये, चार रुपये जो कुछ भी आमदनी होती थी उससे उनकी गृहस्थी को कितनी मदद मिलती थी, यह इससे स्पष्ट हो जाता है।

यह हुआ उत्तर-भारत के एक प्रान्त के छः जिलों का विचार। डा०

१ बम्बई सरकार के कृषि-विभाग के डाइरेक्टर डा० हेरल्ड एच० मान ने कहा है, "चाहे और तरह पर गांधीजी उचित मार्ग से भटक ही गये हों, लेकिन उन्होंने चरखे का जो पक्ष लिया है, उसमें वे भारत की दरिद्रता के असली रहस्य के भीतर पैठ गये हैं।" उनके इस कथन की ओर हम आलोचकों का ध्यान आकर्षित करते हैं। ग्रेग, Economics of Khaddar पृष्ठ १०७

बुकानन ने उत्तर-भारत की तरह दक्षिण-भारत के कर्नाटक, मैसूर, कोइम्बतूर, मलाबार, केनेरा आदि प्रदेशों का भी दौरा किया है। उनका कहना है कि वहाँ भी कातने-बुनने का रोज़गार जोरों से और मुनाफे के साथ चलता था।[१] लेकिन यह हमारा दुर्भाग्य है कि उन्होंने उत्तर हिन्दुस्तान की तरह इस प्रदेश के अङ्क नहीं दिये।

श्रीरमेशचन्द्र दत्त अपनी "Indian Trade Manufactures and Finance" नामक पुस्तक में कहते हैं—

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ तक कातना और बुनना हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय धन्धा था। चरखे और हाथ के करघे का सब जगह उपयोग होता था। यह कहने में शायद ही अतिशयोक्ति हो कि औसत प्रौढ़ स्त्रियों में की क़रीब-करीब आधी स्त्रियाँ खुद अपनी मेहनत की कमाई से अपने पति अथवा पिता की आय में वृद्धि करती थीं। ये धन्धे भारतीय ग्राम्य-जीवन के खासतौर पर अनुकूल हैं। उस समय बड़ी-बड़ी मिलें अथवा कारखाने नहीं थे। प्रत्येक स्त्री आस-पास के गाँव के बाज़ार से रुई लाती थी और उसे कातकर गांव के जुलाहे उसका कपड़ा बुनकर व्यापारियों अथवा कपड़े का व्यवसाय करनेवालों को देते थे। इस तरह तैयार हुआ कपड़ा अरब, डच और पुर्त्तगालवासी लोग अपने देशों को भेजते थे।[२]"

इस सारे विवेचन पर से और वर्तमान समय में चलनेवाले लाखों[३] चरखों की संख्या और परम्परा देखने पर इस बात का स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि सौ-सवासौ वर्ष पहले केवल बिहार और मद्रास प्रान्त में ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दुस्तान भर में चरखे ने प्रत्येक घर में कौन-सा स्थान प्राप्त कर रक्खा था और उसने भारतीय समाज को कितना सहारा पहुँचाया था।

इस विवेचन पर से यह बात भी समझ में आ सकती है कि और

१ दत्त, भाग १ पृष्ठ २०५—२०६

२ दत्त, भाग १ पृष्ठ १८०

३ मि० ग्रेग का कहना है कि विश्वस्त अनुमान के अनुसार ५० लाख चरखे होने चाहिएँ।

दूसरे बहुत से सहायक धन्धों के होते हुए भी महात्माजी ने चरखे और हाथ के करघे पर ही इतना जोर क्यो दिया। सैकड़ों ही नहीं हजारों वर्षों से चरखे और करघे की परिपाटी चली आ रही है। उसने अतीत काल मे राष्ट्र की सम्पत्ति मे काफी वृद्धि की है। जैसाकि श्री दत्त के ऊपर के उद्धरण से प्रकट है, हिन्दुस्तान जैसे कृषिप्रधान और भारी तादाद मे रुई पैदा करनेवाले राष्ट्र के ग्रामीण-जीवन के लिए ये धन्धे विशेष रूप से अनुकूल थे। ऐसी दशा में महात्माजी ने जो यह रहस्य खोज निकाला कि दरिद्रता अकाल और बेकारी द्वारा पकड़े हुए हिन्दुस्तान में अगर चरखे और हाथ के करघे का पुनरुद्धार किया जाय तो वह फिर सम्पन्न हो जायगा, इसीमे उनका—महात्माजी का—बुद्धि-कौशल दिखाई देता है।

(२) चरखे की उपयुक्तता

अब हम चरखे की उपयुक्तता पर विचार करेंगे। किसानों के लिए कोई ऐसा सहायक धन्धा तलाश किया जाय जिसमे उन्हे अपनी खेती अथवा घरबार न छोड़ना पड़े और जिसे वे जब चाहें तब एक तरफ रखकर जिस समय चाहें दिन अथवा रात मे और सब ऋतुओं मे घर-के-घर में ही कर सके तो वह चरखा कातना ही हो सकता है। दूसरी बहुत सी दृष्टियो से भी किसानो के लिए चरखा अत्यन्त अनुकूल है। ता० २१ अक्तूबर १९२६ के 'यंगइण्डिया' मे 'एकमात्र गृहोद्योग—चरखा' इस शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके अन्त मे चरखे के सब गुण अत्यन्त मार्मिक रूप से संकलित किये गये हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) यह धन्धा तुरंत किया जा सकने योग्य है, क्योकि

(अ) इस धन्धे के शुरू करने के लिए न तो किसी ख़ास पूंजी की ज़रूरत होती है, न ख़ास औज़ारो की। कच्चा माल (रुई) और औजार—(चरखा) दोनों ही सस्ते मूल्य पर अपनी जगह पर ही मिल सकते हैं।

(आ) हिन्दुस्तान के अज्ञान और दरिद्रता-ग्रसित लोगों के पास

जितनी बुद्धि अथवा कौशल है, उससे अधिक बुद्धि अथवा कौशल की इस धन्धे में कोई खास आवश्यकता नहीं होती।

(इ) इस धन्धे मे शारीरिक श्रम इतना कम पड़ता है कि छोटा बच्चा और वृद्ध पुरुष भी उसे कर सकता है और पारिवारिक सम्पत्ति में अपना भाग दे सकता है।

(ई) कातने की परिपाटी अभी तक जीवित है, इसलिए उसके फिर से जारी करने के लिए किसी नई भूमिका की आवश्यकता नहीं होती।

(२) कातनेवालों के पास सूत तैयार होते ही उसके लेनेवाले असंख्य लोग हमेशा ही तैयार रहते हैं। अन्न के बाद केवल सूत ही ऐसी चीज़ है, जिसकी तुरन्त खपत होती है, इसलिए वह सब जगह और हमेशा काम देनेवाला है। इस प्रकार इससे दरिद्रता से ग्रसित किसानों के लिए सतत और नियमित आमदनी का मानों बीमा होजाता है।

(३) बरसात पर अवलम्बित न होने के कारण अकाल मे भी यह धन्धा किया जा सकता है।

(४) वह लोगों की धार्मिक अथवा सामाजिक भावनाओं के विरुद्ध नहीं है।

(५) अकाल का मुकाबिला करने का यह अत्यन्त परिपूर्ण और तैयार साधन है।

(६) किसान अपनी निजी झोंपडी तक मे यह धन्धा कर सकता है, इसलिए आर्थिक संकट उपस्थित होने पर इसके ज़रिये कुटुम्ब की फाकाकशी—भुखमरी—टाली जासकती है।

(७) हिन्दुस्तान की ग्राम-पंचायतों से—जो अब लगभग नष्टप्राय हो चुकी हैं—गांवों को जो लाभ मिलता था, इस धन्धे के जारी होने पर वह लाभ उन्हें फिर मिलनेवाला है।

(८) किसानों की तरह ही हाथ-करघे पर काम करनेवाले जुलाहों का भी यह—चरखा कातने का—धन्धा मुख्य आधार है। करघे के धन्धे

पर इस समय ८० लाख से १ करोड तक जुलाहे अपना पेट भरते हैं[१] और ये ही हिन्दुस्तान के लिए आवश्यक कुल कपडे का एक तिहाई कपडा तैयार करते हैं।[२] ऐसी स्थिति मे हाथ-कते सूत का धन्धा ही इन जुलाहो के धन्धे को स्थायी और ठोस आधार पर क़ायम कर सकता है।

(९) हाथ से सूत कातने के धन्धे का पुनरुद्धार होने से ग्राम्य-जीवन से संलग्न और तत्सम धन्धों को भी गति मिलेगी और इससे अधोगति को पहुँचे हुए गांवों का बचाव होगा।

(१०) हाथ से सूत कातने का यह अकेला धन्धा ही हिन्दुस्तान के करोडों लोगो मे सम्पत्ति का न्यायपूर्ण बटवारा कर सकेगा।[३]

(११) किसानो की कुछ महीनों की बेकारी का ही नहीं, बल्कि रोजगार की तलाश में इधर-उधर भटकते फिरने वाले सुशिक्षित नौजवानों की बेकारी के प्रश्न को भी हाथ से सूत कातने का यह धन्धा ही हल कर सकेगा। यह काम इतना जबर्दस्त है कि इतना आन्दोलन का सूत-सन्चालन अच्छी तरह होने के लिए देश के सब बुद्धिमान लोगो की शक्ति संघटित करनी होगी।"

ये सब स्थूल लाभ हुए। इनके सिवा कुछ सूक्ष्म और मानसिक लाभ भी होते थे। श्रद्धा से और वस्त्र-स्वावलम्बन के उद्देश्य से सूत

१ इस समय जुलाहे करीब २६ लाख है—'हरिजन' ता० १७ सितम्बर १९३८

२ इस समय करघे देश के लिए आवश्यक कुल कपड़े का २६ फीसदी भाग तैयार करते है—एम पी गांधीकृत Indian Cotton Textile Industry Annual (१९३८) पृष्ठ ९१

३ जीवन वेतन के सिद्धान्त के अनुसार महाराष्ट्र चरखा सघ ने मजदूरी की दरो मे जो वृद्धि की है, उसको ध्यान मे रख हिसाब लगाने पर मालूम होगा कि एक रुपये की खादी खरीदने पर मजदूरी का विभाजन इस प्रकार होगा—

रुई ०–२ आ० ६ पा०+कताई-पिंजाई ०-८ आ० ६ पा० बुनाई–२–आ० धुलाई, ढुलाई, व्यवस्था खर्च ०–३ आ०–० कुल १ रु०–०–०

कातने की आदत डाल लेने के कारण स्वयं अपने से दृढ निश्चय, एकाग्रता और कष्ट-सहिष्णुता आदि सद्‌गुण पैदा हो जाते है। इससे भी अधिक महत्व की बात यह है कि समय का महत्व अधिकाधिक प्रतीत होने लगता है। जिसे घण्टों चरखे पर सूत कातने की आदत पड गई है वह मनुष्य सहसा अपना समय व्यर्थ नही गंवायगा। किसी-न-किसी उपयुक्त व्यवसाय मे वह हमेशा संलग्न रहेगा। इसके सिवा, अगर वह धार्मिक वृत्ति का मनुष्य हुआ तो कातते समय हमेशा आत्मनिरीक्षण करता रहेगा और इस तरह मन के विकार दूर कर सात्त्विक गुणों का विकास करने के लिए अहर्निश प्रयत्न करता रहेगा। सद्‌गुणों की वृद्धि और आत्मोन्नति की दृष्टि से चरखे से होने वाले ये लाभ आर्थिक लाभ की अपेक्षा कुछ कम महत्व के नहीं है।

३. दूसरे धन्धों से चरखे की तुलना

यहां यह आपत्ति की जा सकती है कि क्या चरखे के सिवा कोई और दूसरा गृहोद्योग नहीं है; इसलिए अब इसपर विचार करना ज़रूरी है।

चरखे के सिवा दूसरे बहुत से उद्योग-धन्धे है। गृह-उद्योगों मे (१) रेशम के कीडे पालना, (२) मुर्गे, बतख और मछलियों की परवरिश (३) फल-फूल लगाना, (४) सिलाई, (५) टोकरियां बनाना, (६) बढईगिरी अथवा सुतारी (७) डेअरी अथवा दुग्धालय, और (८) हाथ के करघे आदि धन्धे बताये जाते है। इन धन्धों के बताने वालों का कहना है कि दूसरे इतने धन्धों के होते हुए भी सिर्फ चरखा चलाने पर ही इतना जोर क्यों दिया जाता है? क्या ये धन्धे चरखे की अपेक्षा अधिक लाभदायक नही है?

इस पर हमारा साधारणतया यह उत्तर है :

(१) ऊपर, सहायक धन्धे के रूप में अनेक दृष्टियों से चरखे की जो उपयुक्तता और विशेपता बताई गई है, वह इन आठ धन्धों में से एक में भी नहीं है।

(२) अन्न के बाद मनुष्य की दूसरी आवश्यकता वस्त्र की है, इस दृष्टि से देखने पर कातने का धन्धा सहायक धन्धा होते हुए भी आवश्यक

है। क्योंकि वह आज मरणासन्न स्थिति को पहुँच गया है, इसलिए उसके पुनरुद्धार के लिए प्रयत्न किया जारहा है। उपरोक्त आठों धन्धों की ऐसी स्थिति नहीं है। ये सब धन्धे अभी तक जीवित हैं, उनका ह्रास नहीं हुआ है, इसलिए उनके पुनरुद्धार का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

(३) ये सब धन्धे ऐसे नहीं हैं, जिन्हें सब कोई कर सके।

इन सब धन्धों मे प्रत्येक मे क्या दोष है अब उसपर विचार करेंगे।

(१) रेशम के कीड़े पैदा करना

(१) जल-वायु की कुछ विशेष अनुकूलताओं मे ही ये कीडे पैदा होते हैं, इसलिए यह धन्धा सारे हिन्दुस्तान में व्यापक होने योग्य नहीं है।

(२) रेशम सब स्थिति के लोगों के लिए आवश्यक वस्तु नहीं है; इसलिए अगर यह मानकर चलें कि यह धन्धा हिन्दुस्तान के सब भागों में जारी हो सकता है तो मांग की अपेक्षा उत्पत्ति अधिक होने के कारण तैयार हुआ माल बेकार पड़ा रहेगा।

(३) इस धन्धे मे हिंसा होने के कारण पापभीरु लोगों के लिए वह त्याज्य है।

(२) मुर्गे, बतख और मछलियों को पालना

(१) यह धन्धा भी ऐसा नहीं है, जिसे सब तरह के लोग कर सकें। इसमें भी सूक्ष्म हिंसा है, इसलिए अहिंसक लोगों के लिए यह त्याज्य है।

(२) हिन्दुस्तान मे बहुत से लोग केवल शाकाहारी हैं, इसलिए मांग और खपत का नियम यहाँ भी लागू होता है। इसलिए सबके लिए यह ग्राह्य नहीं है। लोग शाहकारी न हों तो भी इसके लिए आवश्यक मांग नहीं रहेगी।

(मुर्गों और बतकों मे छूत का रोग पैदा होने पर आठ नौ घण्टे के अन्दर-अन्दर ही—उपचार करते-करते ही सब मर जाते हैं। ऐसी स्थिति मे इस धन्धे का विशेष लाभदायक हो सकना सम्भव नहीं है।

(३) फल-फूल पैदा करना

यह धन्धा भी ऐसा नहीं है जिसे सब लोग सब परिस्थितियों में कर सकें। इन फल-फूलों के बोने के लिए हरेक को जो थोडी बहुत ज़मीन और पानी की आवश्यकता होगी, वह कहाँ से लायगा? यह सब मानकर चल सकते हैं कि फल खाद्य पदार्थ है, इसलिए उनका थोडा बहुत उपयोग अवश्य होगा। लेकिन फूल अगर आवश्यकता से अधिक पैदा हों तो उनका क्या ख़ास उपयोग होगा, और इसमें लाभ भी कितना रहेगा? इसके सिवा उनकी मांग कहाँ से होगी? गांवों मे इन फूलों का ग्राहक कौन होगा?

(४) सिलाई और (५) टोकरी बनाना

मांग और खपत का नियम यहां भी लागू होने के कारण ये दोनों धन्धे भी ऐसे नहीं है, जिन्हें हर कोई कर सके। ऐसा अनुभव है कि एक बसौड दो गांवों की टोकरियों की आवश्यकता पूरी कर सकता है।

(६) बढ़ईगिरी या सुतारी

(१) आबालवृद्ध सब स्त्री-पुरुषों से हो सकने योग्य यह धन्धा नहीं है।

(२) इसके सिवा सब लोग मेज़-कुर्सी बनाकर बेचेंगे कहाँ? हिन्दुस्तान के ग़रीब-निर्धन लोगों के लिए उनका क्या उपयोग होगा? गांव की आबादी के लिहाज से साधारणतया एक ही बढई या सुतार अपना पेट भर सकता है। अनुभव यह है कि इससे अधिक को वहाँ काम नहीं मिलता।

(७) डेअरी या दुग्धालय

(१) यह धन्धा भी ऐसा नहीं है जिसे सब लोग कर सके। आबाल-वृद्ध स्त्री-पुरुषों के लिए इसमे स्थान नहीं है।

(२) उत्पत्ति और खपत का नियम यहाँ भी लागू होता है। शहरों के सिवा गांवड़ों मे दूध के ग्राहक कहाँ से मिलेंगे?

इसके सिवा यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि यद्यपि टोकरी बनाने का धन्धा बहुत थोडी पूंजी पर चल सकता है; फिर भी दूसरे

सब धन्धों के लिए तो कम-ज्यादा तादाद मे—कम-से-कम चरखे के लिए आवश्यक पूंजी से अधिक तादाद मे—पूंजी की आवश्यकता होगी ही. वह सब कहाँ से आयेगी ? साथ ही इन धन्धो के लिए थोडे-बहुत कौशल की आवश्यकता होगी ही। सब स्थिति के लोग वह कहाँ से पैदा कर सकेंगे ? इन सब धन्धो में कुछ समय तक उम्मेदवारी किये बिना प्रवेश हो सकना कठिन है। सब परिस्थिति के लोगों को यह तालीम कैसे मिल सकेगी ? एक बात यह और विचारने योग्य है कि इन धन्धों मे जितना श्रम पडता है उतनी मेहनत कातने के धन्धे मे नहीं पडती।

इन सब दृष्टियो से उपरोक्त सात धन्धे सहायक धन्धे के रूप में ग्राह्य नहीं ठहरते।

(८) हाथ का करघा

अब रहा हाथ के करघे का धन्धा। हमेशा यह सवाल किया जाता है कि चरखे की अपेक्षा करघे पर मज़दूरी अधिक मिलती है, ऐसी दशा मे महात्माजी चरखे के बजाय करघे की हिमायत क्यों नहीं करते ? इसलिए इस प्रश्न का उत्तर देना ज़रूरी है।

पहली बात तो यह है कि करघे का धन्धा हमेशा मुख्य धन्धा ही समझा जाता है, क्योंकि अकेले मनुष्य से यह धन्धा सधता नहीं है। उसके लिए बहुत से आदमियो की ज़रूरत होती है। अगर मदद करने वाले दूसरे आदमी नहीं तो जुलाहा अपनी इच्छानुसार जब चाहा तब करघे पर बैठकर बुन नहीं सकेगा। इसके सिवा इस धन्धे मे कला-कौशल की भी काफी आवश्यकता है, इसलिए आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष वह कर नहीं सकते। साथ ही थोड़ी-बहुत पूंजी की भी आवश्यकता होती ही है। सस्ते-से-सस्ता करघा बिठाने में भी कम-से-कम बीस रुपये तो लग ही जायँगे।

कातने के धन्धे की तरह इस धन्धे का सार्वत्रिक हो सकना सम्भव नहीं है। हिन्दुस्तान मे आज २६ लाख जुलाहे हैं।[१] अगर वे एक घण्टे मे कम-से-कम एक गज़ के हिसाब से एक दिन में आठ गज़ कपडा बुनें,

१ 'हरिजन' ता० १७–९–३८

तब वर्ष मे काम करने के ३०० दिन गिनने पर भी वे हिन्दुस्तान के लिए आवश्यक ४७५ करोड गज़ कपडा तैयार कर सकेंगे। आज के भाव से हिसाब करने पर उन्हें अधिक-से-अधिक छः से आठ आने रोज तक मजदूरी पडेगी। अवश्य ही इस मजदूरी मे जुलाहे के परिवार के लोगों का भी हिस्सा होगा, क्योंकि वे लोग उसके काम मे मदद करते है। इस हिसाब से उपरोक्त आमदनी को परिवार के सब लोगों पर बांटा जाय तो वह और भी कम ठहरती है इसके सिवा यह हिसाब लगाते समय यह मानकर चला गया है कि विदेशी वस्त्र और देशी मिलो के कपडे का बहिष्कार पूर्णतः सफल हो गया है। मतलब यह कि मौजूदा जुलाहे ही सारे हिन्दुस्तान के लिए आवश्यक कपडा बुन सकते है। ऐसी दशा मे सब लोगों से इस धन्धे को करने के लिए कहा जाय तो आवश्यकता की अपेक्षा उत्पत्ति अधिक होगी और राष्ट्र के सामने उस को ठिकाने लगाने का एक जबर्दस्त प्रश्न खडा हो जायगा! दूसरे शब्दों मे कहा जाय तो यों कहना होगा कि उत्पत्ति के अधिक होने पर बेकारी फिर बढ जायगी, और इस तरह जिस बात को हम टाल सकते थे, वही हमारे सिर चढ बैठेगी !

मिल का सूत और हाथ के करघे की बुनाई

अगर बुनकर या जुलाहे का धन्धा सार्वत्रिक हो गया तो उसकी सूत की आवश्यकता की पूर्त्ति कहां से होगी? अगर मिलों से यह आवश्यकता-पूर्त्ति की जाय तो बुनकरों को सर्वथा उन्हीं पर अवलम्बित रहना पडेगा। और मैदान मे अपना कोई प्रतिस्पर्धी न देखकर मिले अपनी मर्जी के मुताबिक सूत का भाव बढा कर जुलाहो को जितना भी सम्भव हो सकेगा महंगा बेचेंगी! इसके सिवा, जुलाहे जिस नमूने का कपडा बुनेंगे खुद मिले भी उसी नमूने का कपड़ा बुनने लगेंगी,—बुनने लगी भी है। उदाहरणार्थ सूत के वस्त्र बुनने मे उन्होंने सफलता प्राप्त की है। इन ओढनों की मांग दिन-पर-दिन अधिक बढती जाती है। इन ओढनों के बुनने वाले जुलाहे इधर-उधर मिल के सूत पर अवलम्बित रहने लगे थे। नतीजा यह हुआ कि उन्हें वह सूत अब बहुत महंगा मिलने लगा, जिससे अब उस धन्धे

मे कोई खास मुनाफा नहीं रहा। इस सङ्कट के कारण हजारो जुलाहों ने अपना वह धन्धा छोड दिया है। सूत के सम्बन्ध मे मिलो पर अवलम्बित रहने के कारण उन पर यह आपत्ति आई है !

चरखा और हाथ-करघा, ये धन्धे परस्पर पूरक हैं; जबकि मिल के सूत और हाथ के करघे मे परस्पर स्पर्धा है। सूत की आवश्यकतापूर्ति के लिए मिलों पर अवलम्बित रहकर सिर्फ बुनाई के काम मे मिलो को मात देना स्वभावतः ही असम्भव है। मिल का सूत लेकर हाथ-करघे पर उसका कपडा बुनना और उसको उसी नम्बर के सूत के मिल के कपड़े की अपेक्षा सस्ते भाव मे बेचने का प्रयत्न करना ऐसा ही है जैसा कि दूसरे के कंधे-पर चढकर उससे आगे दौडने का प्रयत्न करना !

मिल का सूत और हाथ-करघे की बुनाई के हिमायती लोग यह समझते हैं कि—

(१) मिलों को अपने सूत का कपडा बुनकर बेचने की अपेक्षा सूत बेचने मे अधिक मुनाफ़ा रहता है।

(२) मिले हाथ के करघों की सुविधा के लिए ही सूत तैयार करती है।

(३) हाथ-करघों के बुनकर जिस तरह का कपडा बुनेगे, मिले उस तरह का कपडा नहीं बुनेंगी।

लेकिन उनके ये तीनों ही मुद्दे पोच हैं।

(१) अपना सूत बेचने की अपेक्षा मिलों को उसका कपडा तैयार कर बेचना अधिक लाभप्रद होता है।

(२) अपने खुद के स्वार्थ के लिए मिले खडी की जाती हैं। हाथ-करघे की सुविधा अथवा लाभ का ख़याल उनके कर्त्तव्य-क्षेत्र मे नहीं आता।

(३) अनुभव से यह बात ग़लत सिद्ध हुई है कि मिले, कुछ थोडे से ख़ास नमूनों को छोडकर हाथ-करघों के बुनकर जिस तरह का कपडा बुनते हैं वैसा कपडा नहीं बुनेंगी।[१]

१ Indian Cotton Textile Industry annual, 1937 पृ० ८३ से ९८ और १७५ से १७८।

सारांश यह कि इस बात को खुद जुलाहे स्वीकार करते है कि मौजूदा जुलाहों को अगर जीवित रहना हो तो उन्हे हाथ के कते सूत का पल्ला पकडना चाहिए। उसीमें उन्हे लाभ है और इस दृष्टि से देखने पर हाथ से सूत कातने के धन्धे ही सार्वत्रिक हो सकना सम्भव है, क्योंकि एक जुलाहे को दस कतवारियों के सूत की आवश्यकता होती है। मिल का सूत और हाथ-करघे की बुनाई की हिमायत करनेवालों को यह बात खास तौर पर ध्यान मे रखना चाहिए कि जुलाहे अगर मिलों के सूत पर अवलम्बित रहे तो वे खुद तो बेकार होंगे ही, साथ-ही उनका यह कार्य देश की करोडों कत्तिनों के पेट पर लात मारने के समान होगा।

(४) चरखे के सम्बन्ध में फैली हुई ग़लतफ़हमी का निराकरण

कुछ लोग यह प्रश्न करते है कि महात्माजी गला फाड-फाडकर जो यह कहते है कि सूत कातो, सूत कातो, तब क्या इसका मतलब यह है आजीविका का धन्धा छोडकर चरखा कातने बैठे ? इसका सहज उत्तर यह है कि महात्माजी ने कभी प्रतिपादित नही किया कि लोग दूसरे धन्धे छोड़कर चरखा कातने बैठें। सूत कातने को सहायक धन्धा[1] मानकर ही महात्माजी ने उसकी हिमायत की है।

अगर हिन्दुस्तान कृषिप्रधान राष्ट्र न होता, यहाँ रुई पैदा न होती, कपड़े के लिए प्रतिवर्ष ६५ करोड़ रुपये विदेश को न जाते होते, किसानों के वर्ष मे कम-से-कम तीन-चार महीने बेकारी और आलस्य मे न बीतते होते, चरखा चलाने की परिपाटी न होती, चरखे की ऐसी बनावट न होती जिससे कि बालक से लेकर बूढे तक स्त्री-पुरुषों के लिए उसपर काम करना सुलभ और सुसाध्य होता, और शरीर-संरक्षण के लिए कपडे की अनिवार्य आवश्यकता न होती तो 'चरखे और खादी' पर महात्माजी ने इतना तूमार न बाँधा होता! कल्पना कीजिए कि हिन्दुस्तान में प्रतिवर्ष बाहर से जो माल आता है, उसमें बिस्कुटों पर राष्ट्र का अधिक-से-अधिक पैसा विलायत को जाता है, हिन्दुस्तान के लोग घर पर भोजन बनाना छोड़कर बाज़ार से विलायती बिस्कुट लाकर खाने पर टूट पडे होते तो

१ देखिए 'यग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ५२३

उस दशा मे महात्माजी ने इसी वात पर ज़ोर दिया होता कि हिन्दुस्तानियो को घर-घर चूल्हे की प्राण-प्रतिष्ठा कर अपने खेत अथवा तहसील, ज़िला, प्रान्त एवं देश में उत्पन्न हुए गेहूँ के ही बिस्कुट तैयार करके खाने चाहिए ! देश की विशेष परिस्थिति का सब दृष्टियों से विचार करने के वाद ही महात्माजी ने चरखे और खादी की हिमायत की है।

महात्माजी की विचार-सरणी स्पष्ट है। राष्ट्र की वर्तमान परिस्थिति मे खादी का पुनरुद्धार करने के वजाय कोई दूसरी वात करना आवश्यक होता तो महात्माजी ने उसके लिए भी उतना ही भगीरथ प्रयत्न किया होता ! उदाहरणार्थ अगर राष्ट्र ने ज्वार-बाजरा खाना छोडकर स्काटलैण्ड से 'ओट' अथवा रूस से 'राय' नामक अनाज मँगाना शुरू कर दिया होता तो महात्माजी कहते—"मैं राष्ट्र के—जनता के—रसोईघरो मे घुसकर उसकी (राष्ट्र को) शक्तिभर भर्त्सना करूँगा, वहाँ धरना लगाकर वैठ जाऊँगा और लोगो को अपने हृदय की वेदना सुनने के लिए वाध्य करूँगा।" अभी हाल के ज़माने मे इस तरह वाते हुई है। गत महायुद्ध के समय राष्ट्रो ने अपनी जनता पर यह पावन्दी लगाकर कि उसे अमुक प्रकार की ही फसल वोनी चाहिए, उसके खान-पान पर नियन्त्रण लगाया था।[२]

प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी स्थिति देखकर कार्य करना पडता है। "महायुद्ध के समय इंग्लैण्ड और अमेरिका के राष्ट्रों को जितने भी आदमी मिलना सम्भव था उन सवको जहाज़ वनाने के काम मे लगा दिया गया और लोगो ने अत्यन्त आश्चर्यजनक गति से वह काम पूरा करके दिखा दिया।" महात्माजी कहते हैं— "मुझे अपनी इच्छानुसार काम करने की सुविधा हो तो जो कोई भी भारतीय सज्जन मुझे मिले मैं उस हरेक को कातना अथवा वुनना सीखने पर मजवूर करूँगा और दिन के कुछ विशेष समय तक राष्ट्र के लिए काम करने में लगाऊँगा। स्कूल-कालेज वनी वनाई

२ 'यग इण्डिया' भाग २ पृष्ठ ४७६

सुसंगठित इकाइयाँ हैं, इसलिए मैं वहीं से शुरुआत करता।"[1]

इस सारे विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महात्माजी ने हिन्दुस्तान की ग़रीबी, अकाल और बेकारी की हालत में क्यों चरखे को ही सहायक धन्धे के रूप मे ढूँढ निकाला और किस तरह बालक से लेकर बूढ़े तक सब स्त्री-पुरुष अपने फ़ुरसत के समय में उसे कर सकते है।

१ 'यंग इण्डिया' भाग १, पृष्ठ ४८६। इसी विचारसरणी पर 'वर्धा-शिक्षण-पद्धति' का निर्माण हुआ है।

: ६ :

खादी और मिलें

"मिलो की काफी वृद्धि होने पर भी वे भारत की दरिद्रता के प्रश्न को हल कर नहीं सकतीं।"[१] —महात्मा गांधी

इस अध्याय में हमें इस बात पर विचार करना है कि राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से किस प्रकार मिलो की अपेक्षा चरखा ही अधिक श्रेष्ठ है।

मिलो और चरखे का विचार करते समय नीचेलिखी बातो को पहले ध्यान मे रखकर फिर आगे बढना चाहिए :

(१) हिन्दुस्तान संसारभर मे सबसे अधिक निर्धन राष्ट्र है,

(२) हिन्दुस्तान कृषिप्रधान राष्ट्र है और उसकी ८६ फीसदी जनता गाँवों मे रहनेवाली है, और

(३) गाँवों मे रहनेवाली इस खेतिहर—किसान—जनता को वर्ष मे कम-से-कम चार महीने कुछ काम नहीं मिलता।

पहले आर्थिक दृष्टि से मिलो का विचार करे। एक मिल जारी करना हो तो लगभग १६ से २० लाख तक रुपये खर्च पड़ता है। नौ-दस लाख रुपये तो सिर्फ मशीनो के भारतीय तट पर उतारते ही लग जाते हैं। इमारतों का खर्च इससे अलग है। हिन्दुस्तान में यद्यपि पहली मिल सन् १८१८ मे स्थापित हुई थी, फिर भी इस सम्बन्ध मे असली शुरुआत सन् १८५१ मे ही हुई। तब से लेकर सन् १९३७ के अगस्त के अन्त तक ८६ वर्ष की अवधि मे हिन्दुस्तान मे कपडे की कुल ३७० मिलें काम करने लगी हैं।

इन मिलों की उत्क्रान्ति का इतिहास मनोरञ्जक और बोधप्रद है। नीचे के अंकों से यह स्पष्ट दिखाई देगा कि इन मिलो के जारी करने

[१] 'यंग इंडिया' भाग १, पृष्ठ ४८९

में अपने देश के पूँजीपतियों का साहस जितना कारणीभूत हुआ है उससे कहीं अधिक लोगों की बढती हुई स्वदेशी की भावना किस प्रकार सहायक रूप हुई है :

सन्	नई मिले	सन्	नई मिले
१८७६ से १८८०	९	१९०६ से १९१०	६६
१८८१ से १८८५	३१	१९११ से १९१५	९
१८८५ से १८९०	५०	१९१६ से १९२०	१९
१८९१ से १८९५	११	१९२१ से १९२५	८४
१८९६ से १९००	२५	१९२६ से १९३०	३
१९०१ से १९०५	२४	१९३१ से १९३५	१७

इन अङ्कों पर से चतुर पाठकों के तुरन्त ही यह बात ध्यान मे आ जायगी कि जब राष्ट्रीय आन्दोलन का पारा ऊँचा चढता था तभी मिलों मे वृद्धि हुई है। सन् १८८५ मे कांग्रेस स्थापित हुई; १८९६ मे लोकमान्य तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओं पर राजद्रोह के मुकदमे चले, १९०५ में बङ्ग-भंग का, १९२१ मे असहयोग का और १९३०-३१ मे सविनय कानून भंग का आन्दोलन चला। पाठक देखेंगे कि जबतक ये प्रचण्ड आन्दोलन चले, तभी-तब पूँजीपतियों को मिलों की वृद्धि करने का पूरा मौका मिला है।[१]

इन मिलों मे अगस्त सन् १९३७ के अख़ीर तक ३९,२८,००,०००रु० की पूँजी लगाई गई, जिससे इनमे ८४,४१,००० तकुवे और १,९७,००० करघे चलते हैं और सिर्फ ४,१७,००० मज़दूरों को काम मिलता है।[२]

इस पर से हम यह देख सकते हैं कि—

(१) कपडे की मिलें स्थापित करने मे भारी पूँजी की आवश्यकता होती है;

(२) हिन्दुस्तान की जनसंख्या को ध्यान मे रखते हुए, इस धंधे में बहुत कम मज़दूरों को काम मिल सकता है; और

१ Indian Cotton Textile Industry Annual १९३७ पृ० १००

२ ,, ,, ,, १९३८ पृ० २४

(३) इन मज़दूरों को जो मज़दूरी मिलती है उसका अगर कुल मिला कर विचार किया जाय तो वह बहुत कम ठहरती है; मज़दूरों की अपेक्षा पूँजी लगाने वाले, संयोजक और दलालों की संख्या बहुत कम होते हुए भी उनकी आय कई गुणा अधिक होती है !

इसके विपरीत, नीचे दिये हुए विवरण से प्रतीत होगा कि चरखे और खादी मे पूँजी कम लगती है, यह धन्धा करोड़ों लोगों को काम दे सकता है और इस मे दी जाने वाली कुल मज़दूरी की तादाद बहुत है और पूँजीपति लोगों और दलालों को रक्त-शोपण का मौका नहीं मिलता।

हिन्दुस्तान की मिलो के काम का दस वर्ष का औसत निकाला जाय तो हम यह देखेगे कि कपडे की कीमत पर क़रीब छः फ़ीसदी 'ब्याज' के तौर पर दिया जाता है। हिस्सेदार (शेअर-होल्डर्स) और मैनेजिंग एजेण्ट्स आदि दूसरे लोगों को 'नफे' के नाम से जो रक़म दी जाती है, वह करीब आठ रु० सैकडा होती है। खादी के काम पर देख-रेख रखने के लिए जितने आदमियो की ज़रूरत होती है, उनकी अपेक्षा मिलो के काम की देख-रेख रखने के लिए आदमियो की संख्या तादाद मे कहीं ज़्यादा होती है। व्यवस्था का नाम लेकर सिर्फ व्यवस्थापक को ही क़रीब पांच फीसदी रकम दी जाती है। मिलों के मज़दूरों को मज़दूरी के नाम पर कपडे की कीमत का करीब बीस सैकडा दिया जाता है। कोयला और दूसरी वस्तुओं का किराया, ब्याज और मुनाफे आदि में बारह फीसदी और मशीनों की घिसाई आदि के नाम पर चार फ़ीसदी खर्च होता है।

इसके विपरीत खादी के काम में ब्याज तो सर्वथा उपेक्षणीय होता है। नफ़े के लिए बहुत कम मौका मिलता है, क्योंकि खादी जहाँ तैयार होती है वहीं उसे खपाना पडता है और जैसे-जैसे तैयार होती है, वैसे-वैसे ही खपानी पडती है, इसलिए बहुतकर भाव में चढाव का मौक़ा नहीं रहता और इसलिए नुक़सान का धोका भी कदाचित ही रहता है। उत्पत्ति केन्द्र की व्यवस्था पर ख़र्च बहुत कम होने के कारण मज़दूरी के रूप में ७० फीसदी रक़म कारीगरों के हिस्से में आ जाती है ! खादी के उपकरण चरखे आदि की मामूली दुरुस्ती तो उस पर काम करने वाले

लोग खुद ही कर लेते हैं। उसमें कोई खास बिगाड हो जाय तो गांव के सुनार-लुहार से वह ठीक कराया जा सकता है। उसके लिए जो मज़दूरी देनी पडती है वह कुछ आनों से ज़्यादा नहीं होती।

हिन्दुस्तान की मिलें करीब ५० करोड रुपये का कपडा तैयार करती है। इसमें से मज़दूरी के रूप में सिर्फ दस करोड रुपये ही जाते हैं। इसके विपरीत अगर ५० करोड रुपये की खादी तैयार की जाय तो उसमें से ३५ करोड रुपये मज़दूरी के रूप मे बांटे जायँगे। पचास करोड रुपये का कपड़ा तैयार करने के लिए जितनी रुई काम में लाई जाती है, उतनी रुई की खादी तैयार की जाय तो उसका मौजूदा भाव ही कायम रहेगा। यह मानकर चलने पर वह सौ करोड रुपयों में बिकेगी और इन सौ करोड मे से सत्तर करोड रुपये मज़दूरों को मज़दूरी के रूप मे चुकाये जायंगे।

फिर, मिलों के मजदूरों को जो दस करोड रुपये बांटे जायंगे वे सिर्फ़ चार लाख लोगों में ही बांटे जायंगे। हरेक मज़दूर को दस आने रोज़ मिलेंगे। लेकिन खादी के मज़दूरों को मज़दूरी के रूप में जो सत्तर करोड रुपये बांटे जायंगे। वे उन १०,६७,३०,७८८ लोगों मे बांटे जा सकते हैं, जिनको वर्ष मे चार महीने काम नहीं मिलता। शहरों में मिल के मज़दूरों को मिलने वाली मजदूरी मकान-किराया, व्याज, मुनाफा आदि के रूप मे फिर शहरी लोगों मे ही बंट जायगी; लेकिन खादी के कारीगरो को मिलने वाली मज़दूरी गॉव-की-गॉव मे ही रह कर उसके ज़रिये वहां के जुदा-जुदा धंधे वाले लोगों का पोषण होता रहेगा।[१]

मिलें हिन्दुस्तान के सिर्फ ४ लाख लोगों को ही काम देती है। मान लीजिए कि मिलों के व्यवसाय मे लगे हुए मजदूरों के सिवा हिन्दुस्तान मे जितने मजदूर है, उन सबको मिलों में काम दिया जाय तो हिन्दुस्तान मे एक वर्ष मे इतना कपडा तैयार होगा कि वह सारे संसार के लिए कई वर्षों के लिए काफी होगा। अगर हिन्दुस्तान इस अतिरिक्त कपडे को दूसरे राष्ट्रों पर लादने में सफल हुआ तो दूसरे राष्ट्रों के करोडो

१. गुलजारीलाल नंदा कृत 'खादी के कुछ पहलू' अध्याय २।

लोग बेकार हो जायंगे और उन्हें अन्न तक के लाले पड़ने लगेंगे। बलवान राष्ट्र, दूसरे राष्ट्रों पर अपना माल लादने के इस अधिकार का प्रयोग अपने हाथ मे रखने के लिए दौड-धूप करते है। दूसरे देशों पर अधिकार, उपनिवेशो का विस्तार, अन्तर्राष्ट्रीय चढाऊपरी, युद्ध और उपरोक्त दौड-धूप इनमें कभी भी अन्तर नही किया जा सकेगा। मिलों द्वारा की गई कपडे की उत्पत्ति एक राष्ट्र के कुछ प्रान्त और कुछ व्यक्तियों के जीवन को ही खतरे में नहीं डालती, बल्कि वह अनेक राष्ट्रो के सुख, स्वातन्त्र्य, सुरक्षितता और प्रामाणिकता को भी कम कर देती है।[१]

मिलो से आज जो सूत निकलता है वह औसत १८-२० नम्बर का होता है। अगर इसी नम्बर का सूत चरखे पर काता जाय और प्रत्येक चरखा प्रतिदिन आठ घण्टे जारी रक्खा जाय तो प्रत्येक चरखे पर प्रतिदिन कम-से-कम आठ तोले सूत निकलेगा। और वर्ष मे काम के सिर्फ ३०० दिन गिने जायें तो इस हिसाब से वर्ष के अन्त मे ६० पौण्ड सूत तैयार होगा। अगर सूत १०-१२ नम्बर का काता जाय तो १०० पौण्ड निकलेगा। लेकिन अगर मिल के सूत से तुलना करनी हो, तब उस मिल के सूत को २८ नम्बर का मानकर चलने पर अभी हिन्दुस्तान की ३७० मिलो मे क़रीब-क़रीब ४० करोड रुपये ख़र्च करके जो १,०५,८२,००,००० पौण्ड सूत निकलता है, उतना सूत आठ घण्टे के दिन के औसत से वर्ष के ३०० दिन काम करने पर १ करोड ७६ लाख ३६ हज़ार ६६६ चरखे निकाल सकेंगे। अगर यह मानकर चलें कि सब चरखे नये ही चलाने पडेंगे—वास्तव मे ऐसा मानने का कोई कारण नही है, क्योंकि आज भी देश में जगह-जगह पर चरखे मौजूद है—तो भी मिलों पर अभी तक जो ४० करोड रुपये ख़र्च हुए उसका आठवां भाग अर्थात् ५ करोड रुपये भी इसमे नहीं लगेंगे।

मि० एर्नोपियर्स का मत है कि इस समय देश में ५ करोड चरखे मौजूद है।[२] लेकिन श्री० एम० पी० गांधी का मत है कि उक्त संख्या

१ गुलजारीलाल नदाकृत 'खादी के कुछ पहलू' अध्याय २

२ Tariff Board 1932

अतिशयोक्तिपूर्ण है। उनके अनुमान से देश में चरखों की तादाद ५० लाख है। अगर यह मानकर भी चलें कि यह दूसरी संख्या ठीक है तो भी ऊपर जो यह अनुमान किया गया है कि चरखे जारी करने में ४ करोड़ रुपये लगेंगे, उसमें कमी करनी होगी।

ऊपर के हिसाब में हम यह कह आये हैं कि प्रतिदिन आठ घण्टे के हिसाब से पौने दो करोड़ चरखे चलने चाहिए। ऊपर यह भी दिखाया जा चुका है कि अपने देश में खेती पर काम करनेवाले १०,९७,३०,७८८ लोगों के पास वर्ष में औसत ४ महीने कुछ काम नहीं रहता। इनमें से अगर हरेक प्रतिदिन ४ घण्टे काम करे तो भी सिर्फ़ चार महीने में ही देश के लिए आवश्यक सारा सूत सहज ही तैयार हो जायगा।

इस विवेचन से कोई यह न समझ बैठे कि इस समय मिलों का हम विरोध करते हैं। हमें तो सिर्फ़ इतना कहना है कि—

"खादी और मिलों में स्पर्धा नहीं होनी चाहिए और शुद्ध दृष्टि से विचार किया जाय तो स्पर्धा है भी नहीं।

"चरखा करोड़ों लोगों का गृह-उद्योग—घरेलू धन्धा—और जीवन का आधार है। अगर मिलों का धन्धा इस तरह चला अथवा चलने दिया गया जिससे कि उसके चरखे का नाश हो जाय तो यह मानना होगा कि मिलों का यह धन्धा करनेवाले और उसे चलने देने वाले लोक-हित का विचार नहीं करते।

"इस विचारसरणी को ध्यान में रखने पर अगर मिलें कायम रहनी हैं तो उनका क्षेत्र चरखे के क्षेत्र के बाहर रहना चाहिए। अर्थात् करोड़ों लोग जिस तरह का सूत कात और बुन सकते हैं, मिलों को वैसा सूत और कपड़ा तैयार करने की मनाई होनी चाहिए।"[१]

महात्माजी कहते हैं—"मिलों की संख्या में कितनी ही वृद्धि क्यों न हो, वे हमारी दरिद्रता की समस्या को हल नहीं कर सकतीं. हमारा जो रक्त-शोषण हो रहा है, उसे रोक नहीं सकतीं और हमारी झोंपड़ियों में

१. किशोरलाल मश्रुवाला कृत 'गांधी विचार दोहन' द्वितीय संस्करण पृ० १५८

४० करोड रुपये नहीं बांट सकतीं। वे केवल सम्पत्ति का और मज़दूरों का केन्द्रीकरण करती है और इससे 'एक तो बन्दर स्वभाव से ही चञ्चल और ऊपर से उसे पिलादी शराब' ऐसी स्थिति हो जाती है।"[१]

अब सामाजिक और नैतिक दृष्टि से इन मिलों पर नज़र डालिए—

"गति बढानेवाली, बडे परिमाण मे कायम करनेवाली, श्रम बचाने वाली, श्रम का विशेषवर्गीकरण करनेवाली पाश्चात्य आर्थिक पद्धति ने—मशीनों ने—व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का बहुत नुकसान किया है; क्योंकि शहरों में घनी वस्तियों मे, चालों मे रहने और मिलों मे कई घण्टे काम करने से स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। शहर मे इस तरह का जीवन बिताना पड़ता है, इस कारण गांवो मे बिताये गये जीवन मे खण्ड पडता है। इसके सिवा बेकारी, हडताल, पूंजीपति और मज़दूरों के बीच बढते जाने वाला खिंचाव और व्यापार के सम्बन्ध मे एक दूसरे राष्ट्र के बीच बढती जानेवाली प्रतिस्पर्धा और युद्धों के कारण व्यक्तियों और समाज की अत्यन्त हानि हुई है।"[२]

"लङ्काशायर और यॉर्कशायर के स्त्री-पुरुषों को मशीने राक्षस के समान प्रतीत होती हैं। मशीनों ने उनकी सारी कल्पना-शक्ति और कुशाग्रबुद्धि को नष्ट कर दिया है। जबसे इस प्रचण्ड शक्ति ने उनके जीवन में प्रवेश किया है, तभी से उनके प्रचलित व्यवहार, उनकी स्वतन्त्रता और उनके कौटुम्बिक एवं गार्हस्थिक सम्बन्ध नष्ट हो गये है और पुरुष और स्त्री के नाते उनका वैभव और शील भ्रष्ट होगया है।"[३]

श्री विपिनचन्द्रपाल पश्चिमी देशों में घूमे हुए सुप्रसिद्ध भारतीय है (थे), उन्होंने पश्चिमी देशों की प्रत्यक्ष स्थिति खुद अपनी आंखों से देखी है। वह कहते हैं—

"युनाइटेड किंगडम (इंगलैंण्ड, स्काटलैण्ड, वेल्स और आयलैंण्ड)

१ "यग इण्डिया" भाग १ पृ० ५८६

२ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृ० २५५

३ तालचेरकृत "Charkha Yarn" पृष्ठ ६०–६१ मे श्रीमान् और श्रीमती हेमण्ड

और अमेरिका के औद्योगिक केन्द्रों के निरीक्षण करने पर मन पर यह दुःखदायक छाप पडे बिना नही रहती कि आधुनिक औद्योगिक पद्धति के कारण मानव शरीर, मन और आत्मा का नाश होगया।"[१]

विपिन बाबू उपरोक्त एक ही निर्णय करके चुप नहीं होगये। वे एक महत्व की सूचना भी देते है—

"अपनी संस्कृति और शील मे नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से जो उत्तमोत्तम वस्तु है अगर हमे उसकी रक्षा करनी है तो आधुनिक पूंजीपतियों के औद्योगिक हमलों का ज़ोरों से प्रतिकार करना चाहिए।"[२]

ऊपर के सारे विवेचन से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि—

(१) चरखे के ज़रिये हिन्दुस्तान के बेकारो को काम मिलकर उनकी व्यर्थ जानेवाली शक्ति का उपयोग होता है, और

(२) चरखा और मिलों के लिए आवश्यक मशीनों के उपयोग मे आने के पहले और उनके तैयार होने पर उनके ढोने, उन्हे ठिकाने पर बैठाने अथवा फिट करने, चलाने और दुरुस्त करने आदि मे कितनी सूर्यशक्ति ख़र्च होती है, इस इंजिनियरी की दृष्टि से,

(३) मिलों के मज़दूरों को मजदूरी के रूप में कपडे की क़ीमत मे से सिर्फ़ २० फीसदी मिलता है, लेकिन खादी की कीमत मे से मजदूरों के हिस्से मे ७० फीसदी आता है, इस आर्थिक दृष्टि से,

(४) चरखे से आरोग्य और शील की रक्षा होती है, इस नैतिक दृष्टि से,

(५) चरखा वस्त्र-स्वावलम्ब का साधन है, इस दृष्टि से,

(६) चरखे के कारण पैसे का समान बंटवारा होकर समाज में सर्वत्र सन्तोष फैलता है और समाज की अस्त-व्यस्त हुई स्थिति सुधरती है, इस सामाजिक दृष्टि से, और

(७) चरखे मे सन्निहित तत्व और परम्परा का समष्टि रूप से

१. "New Economic Menace to India" पृ० २१३
२ " " पृ० २१८

विचार करते हुए भारतीय संस्कृति की दृष्टि से मिलों की अपेक्षा चरखा ही अधिक श्रेष्ठ सिद्ध होता है।

पश्चिमवासी और उनका अन्धानुकरण करने वाले दूसरे लोग मशीनों की सिर्फ बाहरी और ऊपर-ऊपर दीखनेवाली उपयोगिता की तरफ़ ही ध्यान देते हैं; लेकिन पूर्वीय लोग किसी वस्तु का समाज, राष्ट्र और संस्कृति पर क्या परिणाम होता है, और समाज का स्वास्थ्य और स्थैर्य किस बात में है, इसका दीर्घ दृष्टि से विचार कर उसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता का निश्चय करते हैं। पूर्वीय लोग प्रत्यक्ष लाभ की तरह अप्रत्यक्ष लाभ और हानि पर ध्यान देते हैं। यह बात नहीं है कि हमारे पूर्वजों को मशीनें बनाना न आता हो। महात्माजी कहते हैं—

"सब लोग अपना-अपना व्यवसाय करते थे और प्रचलित पद्धति के अनुसार मज़दूरी लेते थे। यह बात नहीं है कि हमारे पूर्वज यंत्रों का आविष्कार नहीं कर सकते थे, बल्कि उन्होंने देखा कि यंत्रों आदि के जाल में फंस कर लोग गुलाम ही बनेंगे, और नीति-धर्म को छोड़ देंगे। विचार करके उन्होंने यह कहा कि अपने हाथ-पैरों से जो किया जा सके वही किया जाय। हाथ-पैरों का उद्योग करने में ही सच्चा सुख है। उसी में आरोग्य है।"[1]

यहांतक मिलों और चरखों का विचार कर हमने देखा कि राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से किस प्रकार चरखा मिल की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है। इसके सिवा यह भी दिखाई देता है कि "कला-कौशल की दृष्टि से और रुई के टिकाऊपन की दृष्टि से भी चरखे और हाथ के करघे का स्थान श्रेष्ठतर है।

दूसरे अध्याय में यह हम देख ही चुके हैं कि कला-कौशल की दृष्टि से विचार करने पर चरखे पर कितना बारीक सूत निकलता है। आज भी एकाध कारीगर चरखे पर ५०० नम्बर का सूत निकाल सकता है। लेकिन उसी अध्याय में हम यह भी देख चुके हैं कि क्लेअर

१ 'हिन्द स्वराज'

आदि अंग्रेज़ यन्त्रकला-विशारदों ने स्वीकार किया है कि चाहे जैसी मशीन की योजना करने पर भी उसपर ४०० नम्बर का सूत नहीं निकलेगा।

"चरखे और हाथ के करघे पर काम करने पर कारीगरों को अपना हस्त और बुद्धि-कौशल दिखाने का जैसा मौक़ा मिलता है, वैसा मशीनों पर काम करते हुए नहीं मिलता।"[१] "कुछ तरह के और दरजे के कपड़े ऐसे भी हैं जिनके लिए हाथ के करघे की होड़ मिल का करघा न तो करता है, न सफलता-पूर्वक कर सकता है।"[२] मद्रास-सरकार के बुनाई-कला के विशेषज्ञ श्री अमलसाद कहते हैं—"विवाह और दूसरे मांगलिक कामों के समय उच्च वर्णों की हिन्दू-स्त्रियाँ विशेष रूप से अत्यन्त सुन्दर नयन-मनोहर ज़री के बेलबूटे और भांति-भांति के जरी के किनारेवाली उत्तम साड़ियाँ भी पहनती हैं। यह कपड़े साधारण यन्त्र-बल (मशीनों) से चलने वाले करघों में बन ही नहीं सकते।"[३]

छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों में लगे हुए कारीगरों का कौशल नष्ट न होने देने के सम्बन्ध में प्रिन्स क्रोपाटकिन ने जो चिन्ता प्रकट की है वह प्रशंसनीय है। वह कहते हैं—"छोटे-छोटे उद्योग-धन्धों की विचित्रता और उनमें लगे हुए कारीगर लोगों का कौशल और शोधक-बुद्धि देखकर कुतूहल-सा मालूम होता है। लेकिन यहाँ यह प्रश्न बरबस उत्पन्न होता है कि उत्पत्ति की अधिक कार्यक्षम योजना मे इस सारी बुद्धिमत्ता और कलाकुशलता का उपयोग करके उन्हें प्रगति का नूतन और सजीव उद्गम स्थान बनाया जाय अथवा मिलों की रगडपट्टी में उन्हें कुचल दिया जाय? क्या कारीगरों की स्वतन्त्रता और शोधक-बुद्धि मिलों के सपाटे मे नष्ट करनी ही चाहिए? अगर वह नष्ट हो गई तो मानव-प्राणियों का अध्ययन करनेवाले अर्थ-शास्त्रज्ञों के

१ वी० ए० तालचेर कृत, "Charkha Yarn" साथ ही ग्रेग कृत "Economics of Khaddar" पृ० ३९

२ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृ० ३८

३. " " " " पृ० ३९—४०

मतानुसार क्या उस स्थिति में वह देश की प्रगति का गमक होगा ?"[१]

क्या प्रिन्स क्रोपाटकिन का यह प्रश्न अर्थ-शास्त्रज्ञों की विचार-शक्ति को गति देने वाला नहीं है ? अस्तु।

अब टकाऊपन की दृष्टि से विचार करेंगे। 'संसार में हाथ के व्यवसायों का स्थान' शीर्षक परिशिष्ट नम्बर २ में हमें दिखाई देगा कि स्काटलैण्ड की हैरिसट्वीड कम्पनी के हाथ के करघे के माल की जो इतनी संसार-व्यापी प्रसिद्धि हुई है इसका कारण उसका टिकाऊपन है। लेकिन यह तो हुई स्काटलैण्ड की बात। इसके सिवा, स्वयं हिन्दुस्तान का भी अनुभव ऐसा ही है। मध्यप्रान्त के मि० रिवेटकरनेक ने सन् १८७० में स्वीकार किया है कि "मिलों का माल देशी माल को निर्मूल कर नहीं सका। क्योंकि देशी माल अत्यन्त मज़बूत होने के कारण उससे गर्मी, बरसात और सर्दी का निवारण होता है और धोबी से कितनी ही बार धुलाने पर भी उसकी उपयुक्तता में कमी नहीं आती।"[२] श्री अमलसाद कहते हैं—"अनेक वर्षों से सर्वथा ग़रीब लोगों की यह निश्चित धारणा चली आ रही है कि मिलों के कपडे की अपेक्षा हाथ से बुने हुए कपडे अधिक टिकाऊ होते है। उनकी इस धारणा में ज़रा भी अन्तर पड़ा दिखाई नहीं देता।"[३]

"मिल अथवा मशीनों के माल की अपेक्षा हाथ के कते सूत और हाथ के करघे पर बुनी खादी अधिक टिकाऊ होती है, इसमें आश्चर्यजनक कोई बात नहीं है, क्योंकि मशीनों में लोढनो से लेकर उसके बुने जाने तक की क्रिया करने में रुई की शक्ति जितनी अधिक कम होती है[४] वैसी

१ Prince Kropotkin's "Fields, Factories and Workshops" पृ० ३१८ (इस पुस्तक का अनुवाद शीघ्र ही मण्डल से प्रकाशित हो रहा है।)

२ 'Essay on Handspinning and Handweaving' पृ० १०६

३ ग्रेग "Economics of Khaddar" पृ० ३९

४ जो लोग पीजना जानते हैं, उन्हें यह अनुभव हुआ ही होगा कि जिस रुई की पिजाई अधिक हो जाती है, उसका सूत बार-बार टूटता

हाथ के कते सूत की खादी की नहीं होती। इसलिए पोत, मजबूती और टिकाऊपन की दृष्टि से मिल का कोई सा भी माल उस खादी की बराबरी कर नहीं सकेगा।"[१] श्री तालचेरकर ने अपनी इस बात की पुष्टि के लिए मिलों की लोढने से लेकर कपडा बुनने तक की प्रत्येक क्रिया के विशेषज्ञ[२] की हैसियत से वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन किया है, और ऐसा करते हुए इस बात का अत्यन्त मार्मिक दिग्दर्शन किया है कि यांत्रिक क्रियाओं में कैसे-कैसे दोष रहते हैं, यन्त्रों—मशीनों—में कितना ही सुधार करने पर भी किस तरह उनमें से इन दोषों का निकलना सम्भव नहीं है और किस तरह हाथ के चरखे और हाथ के करघे (खड्डी) पर मनुष्य की बुद्धि और हस्तकौशल का उपयोग होने के कारण ये सब दोष टाले जा सकते है।

है। सूत के वार-वार टूटने का कारण यही होता है कि रुई की शक्ति उचित की अपेक्षा अधिक क्षीण हो गई है।

१ श्री तालचेरकर कृत "Charkha Yarn" पृष्ठ ५

१. इन्दोर राज्य के बुनाई के काम के विशेषज्ञ

: १० :

खादी और अर्थशास्त्र

"जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण का विघातक है, वह अनीति-मूलक अतएव पापयुक्त अर्थात 'आसुरी' अर्थशास्त्र है।"[१]

—महात्मा गांधी

पश्चिमीय अर्थशास्त्र का एक सिद्धान्त है कि "बाज़ार में जो सस्ता और सुन्दर अथवा मुलायम माल हो वही लिया जाय।" इस सिद्धान्त का अनुसरण कर कुछ लोग यह प्रश्न करते हैं कि "हम मोटी-झोटी मंहगी खादी क्यों खरीदें ? क्या अर्थशास्त्र की दृष्टि से खादी काम में लाना श्रेयस्कर है ? पश्चिमीय अर्थशास्त्र, उस अर्थशास्त्र का उपरोक्त सिद्धान्त और उसका अनुसरण कर किये गये प्रश्न ही इस अध्याय के प्रतिपाद्य विषय हैं, अतः इन पृष्ठों में अब हम इन्हीं पर विचार करेंगे।

हिन्दुस्तान में अंग्रेजी शासन क़ायम होने के बाद अंग्रेज़ी शिक्षा का आरम्भ हुआ, और इस शिक्षा के परिणाम के बारे में इसके प्रथम प्रवर्त्तक लार्ड मेकाले ने जो सङ्केत किया था वही हुआ। ऐसा प्रतीत होने लगा कि हमारी संस्कृति, हमारा तत्वज्ञान और हमारा रहन-सहन यह सब त्याज्य और उपेक्षणीय और अंग्रेज़ी संस्कृति, अंग्रेज़ी तत्वज्ञान और अंग्रेज़ी रहन-सहन यही सब प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

इसके साथ-ही-साथ लोग यह भी कहने लगे कि अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र ही सच्चा अर्थशास्त्र है, और इसलिए हिन्दुस्तान में उसी अर्थशास्त्र के सिद्धान्त लागू किये जाने चाहिए। जिस तरह इंग्लैण्ड में पूंजी खड़ी की जाती है, उस तरह यहां भी पूंजी खड़ी की जाय; वहां जिस तरह के बड़े-बड़े कल-कारखाने हैं, उस तरह के यहां भी स्थापित किये जायं; जिस

१ "यंग इण्डिया" भाग १ पृष्ठ ८७२

तरह वहां पूंजीवालों और मज़दूरो का संगठन है, यहां भी वैसा ही संगठन किया जाय; जिस तरह वहां पूंजीवालों की नस ढीली करने के लिए हड़ताल आदि की जाती है, उस तरह यहां भी किया जाय; वहाँ जिस तरह 'साम्यवादी' आदि आन्दोलन पैदा हुए, वैसे यहाँ भी किये जायं, और जिस तरह वहां 'खुला व्यापार' है, वैसा हमे भी करना चाहिए, इत्यादि, इत्यादि।

महात्माजी कहते है—"सरकारी कालेजों में जो अर्थशास्त्र सिखाया जाता है वह ग़लत होता है। अगर हम जिज्ञासु होंगे तो हमें दिखाई देगा कि जर्मन, अमेरिका और फ्रांस आदि देशों मे जो अर्थशास्त्र सिखाये जाते है वे भिन्न-भिन्न होते है। मेरे पास एक हंगेरियन सज्जन आये थे। उनकी बातचीत पर से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका अर्थशास्त्र कुछ दूसरा ही होना चाहिए। प्रत्येक देश की स्थिति के अनुसार ही वहां का अर्थशास्त्र बनाया जाता है। यह समझ बैठना ठीक नही है कि एक देश का अर्थशास्त्र सारे संसार पर ही लागू हो जायगा। हिन्दुस्तान में आज जो अर्थशास्त्र सिखाया जाता है वह इस देश को तबाह करता है। हमे हिन्दुस्तान का अर्थ-शास्त्र मालूम ही नही है, हमे उसकी खोज करनी है।"[1]

हमारे यहाँ के कालेजों मे सिखाये जानेवाले अर्थशास्त्र के सम्बन्ध मे सिर्फ़ महात्माजी ही ऐसा कहते हों सो बात नहीं है। प्रो० काले का भी कहना है कि—"अभी परसों तक सिर्फ़ यही समझा जाता था कि डिग्री की परीक्षा की तैयारी करनेवाले विद्यार्थियों को पढाना सिर्फ़ यही कालेज के प्रोफ़ेसरों का काम है। सिखानेवाले जो सिखाते और सीखनेवाले जो सीखते वह अत्यन्त हलके दरजे का होता था। कालेज में (अध्ययन करने का) सुभीता बहुत कम होता था। विश्वविद्यालय अथवा यूनिवर्सिटी पाठ्यक्रम निश्चित करने और परीक्षा लेने मे ही अपना समाधान मान लेती थी। देश की सामाजिक और राजनैतिक स्थिति में क्रमशः जैसे-जैसे विकास होता गया, वैसे-वैसे कालेज और विश्वविद्यालय की कक्षा से बाहर के लोगों में इनका संशोधन और चर्चा करने की

१. 'नवजीवन' १७ जून १९२८

स्फूर्ति पैदा हुई। देश के लोगों की अठारह विस्वे दरिद्रता, देश मे अकालों की परम्परा, सरकार की अवाधित अर्थात् खुले व्यापार की नीति, उसकी लगान और विनिमय-पद्धति, किसानों का बढता हुआ क़र्ज़ा और बेकारी, शासन-कार्य मे हुआ केन्द्रीभवन, प्रान्तीय सरकार का खाली खजाना, रुई की आयात और देश-के-देश मे चलनेवाले व्यापार पर जकात, नमक-कर तथा उद्योग-धन्धों का नाश आदि बातों ने मुख्यतः (कालेज से बाहर के) लोगो का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया और उनपर चर्चा हुई। दादाभाई, रानाडे, रमेशचन्द्रदत्त तथा गोखले ने इन बातो के सम्बन्ध में स्वतन्त्र विचार की दिशा दिखाई।"[1]

महर्षि दादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्त्ति रानाडे, श्री रमेशचन्द्रदत्त तथा माननीय गोखले आदि ने यह प्रतिपादन करके कि अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र हिन्दुस्तान की परिस्थिति के अनुकूल नहीं है, इसलिए भारतीय अर्थशास्त्र का स्वतन्त्र रूप से विचार करना चाहिए, हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी अर्थशास्त्र लागू करने की हिमायत करनेवालो के कान ऐंठे हैं। यह उन्होने बहुत बड़ा काम किया है जिस के लिए वे प्रशंसा के पात्र हैं।

प्रो० काले ने उपरोक्त सज्जनो के साथ महात्मा गांधी का नाम क्यों नहीं लिया, यह समझ मे नहीं आता! श्री ग्रेग कहते हैं—"गांधीजी की नम्रता और मानव-जाति पर उनके प्रेम के सद्गुणों के कारण ही हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति का विचार करनेवाले दूसरे किसी भी व्यक्ति की अपेक्षा उन्हे सूक्ष्मतर और अत्यन्त मार्मिक विवेचन करने की दृष्टि प्राप्त हुई है।"[2] यह ठीक ही है। हम पश्चिमीय अर्थशास्त्र सीखकर और पश्चिमीय चश्मा लगाकर अपने देश की ओर देखते हैं, इसीलिए हमें अपनी परिस्थिति का सम्यग्दर्शन नहीं होता। सम्यग्दर्शन होने के लिए जनता के साथ समरस होना चाहिए।

प्रो० काले भी यही कहते हैं—"यह बात कदाचित ही किसी के

१ मैसूर आर्थिक परिषद (२ जनवरी १९२९) के सभापति का भाषण

२ "Economics of Khaddar" पृ० १५९

ध्यान में आई मालूम होती है कि "अपनी-अपनी दृष्टि से मूल्यवान फसलें, खेत और बीज आदि का कितना ही संशोधन करने पर भी जबतक हम ग्रामीण जनता के जीवन का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से और सम्पूर्णतः अध्ययन नहीं करेंगे, तबतक किसानों की स्थिति नहीं सुधार सकेंगे। ग्रामीण जनता के जीवन और हालचाल का, भिन्न-भिन्न अङ्गों का सूक्ष्म अध्ययन करना सचमुच अत्यन्त आवश्यक है। इस दिशा मे अभी बहुत काम होना बाकी है।"[१]

ग्रामीण जनता के जीवन का अध्ययन महात्माजी की अपेक्षा किसने अधिक किया है? भारत के सब भागों के हज़ारों गाँवों में जाकर गरीब भारतीय जनता की परिस्थिति का प्रत्यक्ष अवलोकन अगर किसी ने किया है तो वह महात्मा गांधी ने ही किया है। भारतीय ग्रामीण-जनता के साथ महात्माजी जैसे एक-रस होगये है, वैसा कोई दूसरा हुआ दिखाई नहीं देता। महात्माजी उसके साथ इतने एक-रस होगये हैं, इसलिए उन्हे चरखे का अर्थ-शास्त्र सुझाई पडा है। जनता के साथ एक-रस होने के कारण, उसके दुःख का—रोग का ठीक निदान हुआ, इसलिए उस रोग का उपचार भी ठीक सुझाया जा सका है। भारतीय अर्थशास्त्र पर बोलने अथवा लिखने के लिए वर्तमान भारत मे उनके जितना अधिकारी पुरुष आज दूसरा और कौन है? अस्तु,

अभी कालेजों में जो अर्थ-शास्त्र सिखाया जाता है, उस पर से महात्माजी ने 'नीति-मूलक' और 'अनीति-मूलक' ये दो भेद किये हैं। "जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण का विघातक है, वह अनीतिमूलक अतएव पापयुक्त अर्थात् 'आसुरी' अर्थशास्त्र है।"[२] इसके विपरीत जो अर्थशास्त्र व्यक्ति के अथवा राष्ट्र के सम्पूर्ण विकास मे सहायक होता है उसे दैवी अर्थशास्त्र समझना चाहिए। अपना आशय स्पष्ट करने के लिए महात्माजी ने आसुरी अर्थशास्त्र के नीचे लिखे कुछ उदाहरण दिये है—

१ मैसूर आर्थिक परिषद (२ जनवरी १९२९) के सभापति का भाषण।

२. 'यग इण्डिया' भाग १ पृ० ६७२।

'जो अर्थ-शास्त्र एक देश को दूसरे देश के भक्ष्य स्थान मे पड़ने देता है वह अनीतिमूलक अर्थ-शास्त्र है।[१]

(१) यह जानते हुए भी कि अपने पड़ोस का अनाज का व्यापारी सिर्फ ग्राहक न मिलने के कारण ही भूखों मरता है उसे भूखों मरता छोड़ कर स्वयं अमेरिकन गेहूँ खाना पापमूलक है।[२]

(२) यह जानते हुए भी कि अपने पडोस की मां-बहिनों के काते और बुने वस्त्र काम में लाने से अपनी आवश्यकता की पूर्ति के साथ-ही-साथ उनका भी पोषण होता है मैंने अगर "रीजण्ट स्ट्रीट" का सर्वथा नये-से-नया फेशन ग्रहण कर लिया तो मैं पापी समझा जाऊँगा।[३]

अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्त त्रिकालाबाधित अथवा सार्वत्रिक सिद्धान्त नही है।[४]

"सजातीय वस्तु का ही जोड हो सकता है, इस प्रकार गणित के अचूक और निरपवाद सिद्धान्त पर देश, काल, इतिहास, संस्कृति, रहन-सहन और शासन-पद्धति आदि इन सब बातो का थोडा-बहुत असर पडता है, इसलिए उसके—अर्थशास्त्र के—जो नियम इंग्लैण्ड के लिए गुणकारक होते है, वही नियम फ्रांस और अमेरिका के लिए लागू नहीं होते। ऐसी दशा मे हिन्दुस्तान जैसे भिन्न तत्वज्ञान और धार्मिक कल्पना पर प्रस्थापित और हज़ारों वर्ष उसी पर कायम रहनेवाले देश की तो बात ही क्या है। स्वयं इंग्लैण्ड मे भी ऐसे मौक़े आये हैं जब उसे अपनी अर्थशास्त्र-विषयक कल्पना को तिलांजलि देनी पड़ी है। उसके सामने ऐसे मौके आये है जिनमें उसे अपने 'अबाधित अर्थात् खुले

१ यह राष्ट्र को दिया हुआ उदाहरण है। यंग इण्डिया, भाग १ पृ० ६२२

२. यह व्यक्ति को उद्देश्य करके दिया हुआ उदाहरण है। यग इडिया भाग १, पृष्ठ ६२२

३ " " "

४ महात्मा गाधी 'यंग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ५४९

व्यापार' का वाबेला कम करके और जोड़-तोल मिला कर अपने उद्योग-धन्धों के संरक्षण के लिए जकात के अतिरिक्त कर लगाने पड़े है।"[1]

यह सम्भव नहीं है कि अर्थ-शास्त्र के जो सिद्धान्त स्वतन्त्र देश के के लिए उपयोगी पड़ते हों वही भारत जैसे पराधीन देश के लिए उपयुक्त हों।

प्रत्येक राष्ट्र के अर्थ-शास्त्र के सिद्धान्त किस प्रकार भिन्न होते हैं यह बात महात्माजी ने भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के उदाहरण देकर सिद्ध कर दिखाई है। संक्षेप में वह इस प्रकार है—

इंग्लैएड और जर्मनी—जर्मनी के अर्थ-शास्त्र से इंग्लैएड का अर्थ-शास्त्र भिन्न है। जर्मनी ने अपने देश में 'चुकन्दर से शक्कर तैयार करने के कारखानों को संरक्षक सहायतायें देकर, अपने को सम्पन्न बना लिया। दूसरे देशों के व्यापार पर कब्ज़ा करके इंग्लैएड ने अपनी तौंद भरली है। यह छोटा-सा देश जो कुछ कर सका वह १६०० मील लम्बे और १५०० मील चौड़े हिन्दुस्तान में हो सकना सम्भव नहीं है।

इंग्लैएड और हिन्दुस्तान—जल, वायु, भूस्तर-रचना एवं राष्ट्र-स्वभाव इन तीनों बातों में इंग्लैएड से हिन्दुस्तान की स्थिति जुदा होने के कारण इंग्लैएड के लिए हितकर बहुत सी बातें हिन्दुस्तान के लिए विष के समान हैं। गोमांस मिश्रित चाय भले ही इंग्लैएड की वायु के अनुकूल हो, लेकिन धर्म-निष्ठ हिन्दुस्तान की उष्ण वायु के लिए वह विष जैसी है। ब्रिटिश प्रायद्वीप के उत्तरीय भाग में तो शराब पीना आवश्यक हो सकता है, किन्तु हिन्दुस्तान की वायु में उसका सेवन करना अथवा सेवन कर समाज में व्यवहार करना सम्भवनहीं है।

स्काटलैएड और हिन्दुस्तान—स्कॉटलैएड की हवा में वहाँ का ऊनी कोट अनिवार्य वस्तु होगी, लेकिन हिन्दुस्तान की हवा मे वह बोझ रूप होकर असह्य हो जायगा।[2]

यहां तक तो अर्थ-शास्त्र का सामान्य विवेचन हुआ। अभी तक

१ हरिभाऊ फाटक—'स्वदेशी की मीमांसा' पृष्ठ १००-१०१

२ 'यंग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ५४९-५५०

अनीति-मूलक अथवा 'आसुरी' अर्थ-शास्त्र के तीन सिद्धान्तों का उल्लेख हुआ है। ये तीन सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(१) श्रम-विभाजन के सिद्धान्त के अनुसार एक देश को दूसरे देश के कच्चे माल की आवश्यकता-पूर्ति करना और दूसरे को उसका पक्का माल तैयार करना;

(२) राष्ट्र-राष्ट्र के बीच अबाधित अथवा खुला व्यापार होना, और

(३) बाज़ार में जो सस्ता और सुन्दर अथवा मुलायम माल हो वही लेना।

आइये, क्रमशः प्रत्येक पर संक्षेप में कुछ विचार करें।

पहला सिद्धान्त देश की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात करनेवाला है। यह सिद्धान्त एक देश को दूसरे देश का भोज्य पदार्थ बनानेवाला है।[1] एक देश के यावच्चन्द्र दिवाकरौ दूसरे देश के कच्चे माल की आवश्यकता पूरी करता रहने। और पक्के माल के लिए उस पर अवलम्बित बने रहने का अर्थ है खुद के हाथ-पांव होते हुए दूसरे की चुल्लू से पानी पीना अथवा घर में आटा-दाल आदि सब सामग्री मौजूद हुए भी होटल में भोजन करना। प्रत्येक देश को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने का पूरा मौक़ा मिलना चाहिए। प्रत्येक देश को सब बातों में स्वावलम्बी होने का प्रयत्न करना चाहिए। यह अत्यन्त सीधी-सादी-सी बात है कि कम-से-कम अन्न-वस्त्र के मामलों में तो उसे स्वावलम्बी होना ही चाहिए। इधर पश्चिमीय देश 'श्रम-विभाजन' के भुलावने नाम के आधार पर कमज़ोर देशों को राजनैतिक और आर्थिक गुलामी में जकड़े रहते हैं। किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति को यह बात सह्य नहीं होगी कि हिन्दुस्तान सिर्फ कच्चा माल पैदा करता रहे और इंग्लैण्ड उसका पक्का माल तैयार कर फिर उसी को हिन्दुस्तान के गले बांधता रहे। विजित और दुर्बल राष्ट्र होने के कारण ही भारत को यह अपमान और यह परावलम्बन सहन करना पड़ रहा है; किन्तु वास्तव में यह सिद्धान्त बहुत ही घातक होने के कारण अत्यन्त निन्दनीय और त्याज्य है।

१. ग्रेग "Economics of Khaddar" पृष्ठ १०१

दूसरा सिद्धान्त 'अवाधित अथवा खुले व्यापार' का है। इंग्लैण्ड ने खुले व्यापार का बहुत शोर मचाया था; लेकिन उसके पिछले इतिहास पर नजर डालने पर यह स्पष्ट दिखाई देगा कि उसने कितनी बार संरक्षक ज़कात का सहारा लिया था। वास्तव में इंग्लैण्ड का संरक्षक ज़कात का अवलम्बन कर खुद मोटा-ताजा हो जाने के बाद खुले व्यापार की हिमायत करना ऐसा ही है जैसा कि सीढ़ी से शिखर पर पहुँच कर सीढ़ी को लात मार कर नीचे गिरा देना। इंग्लैण्ड ही क्या, संसार के प्रत्येक देश ने अपने छोटी अवस्था के धन्धों की वृद्धि अथवा मरणासन्न स्थिति को पहुँचते हुए धन्धों के पुनरुज्जीवन के लिए संरक्षण पद्धति का अवलम्बन किया था, और आज उनके उद्योग-धन्धों की वृद्धि हो जाने पर भी इंग्लैण्ड और दूसरे राष्ट्रों ने खुले व्यापार के सिद्धांत को उठा कर एक तरफ रख दिया है और अपने चारों ओर आर्थिक संरक्षण की दीवारें खड़ी करदी हैं। संसार भर मे आज खुले व्यापार का समर्थन करनेवाला एक भी देश बाकी नहीं रहा है।

"इंग्लैण्ड जिस समय खुले व्यापार का समर्थन करता था उस समय वास्तव में सच्चे अर्थों में वह खुला व्यापार नहीं था, क्योंकि अपने उद्योग-धन्धे चलाने और दूसरे देशों के उद्योग-धन्धों को नष्ट करने के लिए वह सिर्फ ज़कात का ही नहीं, बल्कि अपने सैनिक बल, राजकीय सत्ता और कुटिल राजनीति इन सब का उपयोग करता था।"[१]

यह खुला व्यापार हिन्दुस्तान के लिए शापरूप सिद्ध हुआ है और इसी ने उसे गुलामी में जकड़ दिया है !!

समान स्थिति के राष्ट्रों मे खुले व्यापार की हिमायत करना कदाचित ठीक हो; परन्तु एक सम्पन्न और दूसरे दरिद्री,—एक विजेता और दूसरे गुलाम देश मे खुले व्यापार की बात करना राष्ट्रनीति के विरुद्ध होगा। किसी समय के दरिद्री किन्तु आज सम्पन्न बने हुए राष्ट्र का दूसरे दरिद्री राष्ट्र पर खुले व्यापार का सिद्धान्त लादने का अर्थ ऐसा ही है जैसा कि

१ किशोरलाल मश्रुवाला 'गाधी विचार दोहन' द्वितीय सस्करण पृष्ठ १२४

बचपन में गड्डलने का सहारा लेकर चलना सीखने वाले किसी तरुण का अपने छोटे भाई के हाथ से उसका गड्डलना छीनकर उससे 'मेरी तरह बिना सहारे के चलना सीख' यह कहना ।[१]

ऊपर हम देख ही चुके है कि सब देशों ने अपने उद्योग-धन्धों की रक्षा के लिए 'संरक्षक ज़कात की दीवारे' खडी की है । ऐसी स्थिति मे पाश्चात्य अर्थशास्त्र का 'बाज़ार में सस्ते-से-सस्ता हो वही लो' का यह अनीतिमूलक तीसरा सिद्धान्त टिक ही नही सकता ।

अर्थशास्त्र का धातु अर्थ है । वह शास्त्र तो व्यक्ति के अर्थ—स्वार्थ—की ओर न देखकर राष्ट्र की सम्पत्ति बढाता है । इसका आशय यह है कि व्यक्तिगत दृष्टि से एकाध वस्तु महंगी भी पडती हो, तो भी राष्ट्र के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से उस व्यक्ति के लिए उस वस्तु का ख़रीदना एक पवित्र कर्तव्य होता है ।

इसलिए, एक बारगी देखने से खादी व्यक्तिगत दृष्टि से महँगी प्रतीत होने पर भी वास्तविक अर्थात् नीतिमूलक अर्थशास्त्र की दृष्टि से उसमे राष्ट्र का कल्याण ही है । महात्माजी कहते है—

"खादी के सिवा, अपने उद्धार का और कोई उपाय नहीं है । यह कहा जाता है कि खादी महंगी पडती है, लेकिन अपने बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना खर्चीला होने पर भी हम इसीलिए उन्हे मार नहीं डालते । यह बात ठीक है कि अगर हम अपने बच्चों को मार डालें तो हम कम खर्च मे अपना काम चला सकेंगे; लेकिन ऐसा करना हम अधर्म मानते है और इसलिए ऐसा करते नहीं हैं । इसी तरह करोडों लोगों को अन्न-जल देनेवाली खादी छोड़कर कदाचित हम कम खर्च में काम चला सके, लेकिन ऐसा करना ठीक नही है ।"[२]

प्रत्येक सुसंगठित राष्ट्र का यह अलिखित नियम होता है कि वहां की सरकार या तो अपने देश के सब लोगों को काम दे नहो तो उनके पोषण के लिए धर्मादाय—दान—की व्यवस्था करे । अवश्य ही यह दान जनता

१ 'महाराष्ट्र खादी पत्रिका' १९३४ अक १२

२ 'यग इण्डिया,' भाग १ पृ० ५४९

के पास से कर के रूप में वसूल किये जानेवाले पैसे में से ही निकाला जाता है। इसका अर्थ यही हुआ कि बेकार लोगों के पोषण का बोझ देश के कमाई करनेवाले दूसरे लोगों पर किसी-न-किसी रूप में पडता ही है। यह भी एक प्रकार का अप्रत्यक्ष कर ही है।

यह ठीक है कि खादी महंगी होने के कारण व्यक्ति को उसके लिए अधिक पैसे देने पडते हैं। लेकिन इसके लिए हमें यह समझ लेना चाहिए कि इस खादी के ज़रिये हम ग़रीबों के पेट मे दो दाने डालते हैं, उन्हें एक तरह का 'दान' देते हैं, और इस प्रकार इस राष्ट्रीय कल्याण की दृष्टि से यह एक प्रकार से जनता का स्वयंस्फूर्ति से राष्ट्र को दिया हुआ एक प्रत्यक्ष कर ही है।

नीचे दी हुई तुलना से यह विचारसरणी और अधिक स्पष्ट होगी—

खादी द्वारा दिया हुआ दान	बेकारी का दान
(१) प्रत्यक्ष कर	(१) अप्रत्यक्ष कर
(२) काम देकर जनता को सहायता देना	(२) बेकार जनता को बिना काम दिये मदद देना
(३) कार्य-शक्ति और कौशल के विकास को सहायता	(३) कार्य-शक्ति और कौशल का अभाव
(४) नैतिक दृष्टि से श्रेयस्कर	(४) नैतिक दृष्टि से हानिकारक

विलायती कपडा आज इतना सस्ता और सुन्दर है इसका कारण यही है कि क़रीब १५० वर्ष हुए विलायत के पूंजीपतियों ने हमारे धंधों को चौपट कर अपनी तोंद फुलाली है। उन्होंने इस समय तक इतना नफा कमाया है कि सस्ता ही क्या वे चाहें तो आज अपना कपडा मुफ़्त में भी दे सकते हैं। हम यह कपडा लेते हैं, इससे हमारा पैसा सात समुद्र पार चला जाता है, उसके फिर दर्शन होना सम्भव नहीं होता। इससे हमारे लोग बेकार होते हैं।[1] लेकिन विदेशी पूंजीवालों और मज़दूरों का अच्छा पोषण होता है। जितना ही हम विलायती माल अधिक लेते है, उतनी

१ विदेशी कपडे के कारण किसानो का एक-चौथाई हिस्सा बेकार हो गया है। ग्रेग कृत Economics of Khaddar पृ० ९८

ही अधिक हमारी बेकारी बढती है और हमारे लोग अधिकाधिक आलसी और दरिद्री बनते हैं। बेकारी और दरिद्रता बढने से देश में पैसे का अभाव हो जाता है। इससे दूसरे उद्योग-धन्धे भी चौपट हो जाते हैं। इस प्रकार अन्त में देश की हानि होती है। केवल सामाजिक दृष्टि से ही हानि होती हो सो बात नहीं, राजनैतिक दृष्टि से भी भयङ्कर अधःपतन होता है। विलायती पूंजीवालों मे कुछ लोग पार्लमेण्ट के सदस्य होते हैं, वे दूसरे सदस्यो से सांठ-गॉठ जोडकर भारत की पराधीनता की शृंखला को और अधिक मज़बूत करते रहते हैं, क्योंकि इस पराधीनता पर ही उनका सारा व्यापार निर्भर है।

तुलनात्मक दृष्टि से उक्त विवेचन का सार संक्षेप मे नीचे लिखेनुसार होगा—

खादी	विलायती वस्त्र
(१) व्यक्तिगत रूप से महंगी (कारण—पूंजी की न्यूनता)	(१) व्यक्तिगत रूप से सस्ता (कारण—पिछले १५० वर्ष से विलायती पूंजीवाले हिन्दुस्तान के प्राणों पर मोटे हो गये हैं)
(२) पैसा देश-का-देश मे रहता है।	(२) पैसा सात समुद्र पार चला जाता है।
(३) देश के लोगो को काम मिलता है।	(३) विलायती पूंजीवाले और मज़दूरो का पोषण होता है। देश के लोग बेकार होते हैं।
(४) खादी की खपत मे अधिकाधिक वृद्धि होने पर—	(४) विलायती कपडे की खपत अधिक होने पर—
(अ) पूंजी की लौटापलटी अधिक होती है।	(अ) देश का द्रव्य-शोषण अधिक होता है।
(आ) अधिक लोगों को काम	(आ) अधिकाधिक लोग

मिलता है।	बेकार होते है और इस कारण दरिद्री बनते हैं।
(इ) दूसरे धंधे बढते है।	(इ) दरिद्रता के कारण दूसरे धन्धे भी बन्द होने लगते है।
(४) अन्त मे राष्ट्र सुखी और सम्पन्न बनता है।	(४) अन्त में देश दरिद्री और दुःखी बनता है। विलायती पूँजी-वाले पराधीनता की शृंखला को अधिक मज़बूत करते है।

एक यह प्रश्न हमेशा पूछा जाता है कि विलायती माल की जगह हम देशी माल काम मे लेते है। ये मिले तो स्वदेशी ही है न? ऐसी दशा में खादी के बजाय इन देशी मिलों का माल काम मे ले तो इसमें क्या हर्ज है? अतः स्वभावतः ही अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना चाहिए।

विलायती मिलों के बजाय हिन्दुस्तानी मिलों का माल ख़रीदने पर देश की आर्थिक स्थिति में कितना सुधार होगा उस पर नज़र डालिए—

विलायती और हिन्दुस्तानी दोनों ही तरह की मिलों के लिए जिन यन्त्रों अथवा मशीनों की ज़रूरत होगी वे निश्चय ही एक-सी ही होंगी। उनके लिए खर्च किया जानेवाला पैसा एक बार देश से बाहर गया कि हमेशा के लिए गया। उसमें से एक कौड़ी भी वापस आना सम्भव नहीं होता। पिछले अध्याय मे यह हम देख ही चुके हैं कि एक मिल खडी करने मे करीब १५ से २० लाख तक रुपये लगते हैं, इनमें से ६-१० लाख रुपये तो उक्त मशीनों के भारतीय बन्दरगाह पर पहुँचने तक ही लग जाते है। बाक़ी के नौ-दस लाख रुपयों मे से एक-दो लाख रुपये रस्ती मे लग जाते हैं। दुरुस्ती के लिए आवश्यक सामान

भी विलायती ही होता है। इसलिए यह पैसा भी बाहर ही चला जाता है। अब जो आठ-नौ लाख रुपये बचे, इनमे से एक-दो लाख रुपये मिल के लिए ज़मीन और उस पर खड़ी की जाने वाली इमारतो पर ख़र्च हो जाता है। यह ठीक है कि ये रुपये अपने देश-भाइयो के ही पल्ले पड़ेंगे। बाकी बचे हुए छः सात लाख रुपये इस तरह ख़र्च होते हैं—

"मिलों में आज ४,१७,००० मज़दूर काम करते हैं। माल की क़ीमत का सिर्फ़ बीस फीसदी इन्हे मिलता है। बाक़ी का ८० फीसदी एजेण्ट, डाइरेक्टर्स, शेअर-होल्डर्स तथा मिल-ओनर्स के कमीशन व मुनाफ़े आदि में और कच्चे माल की ख़रीद में जाता है।"

ये एजेण्ट, डाइरेक्टर्स आदि लोग शाही बंगलों, मोटरों, बहुमूल्य विलायती कपड़ों, बिल्लोरी सामान और आमोद-प्रमोद की विदेशी वस्तुओं मे अपना पैसा फंसाकर इस रूप मे विदेशवालो की ही सहायता करते हैं।

इन सब दृष्टियों से विचार करने पर देशी मिलों का माल लेना भी कोई श्रेष्ठ मार्ग नहीं है। विलायती माल की अपेक्षा देशी मिलो का माल लेने का मतलब सिर्फ़ 'पत्थर के बजाय ईंट' लेना है।

सब मिलाकर खादी, देशी मिलो का कपड़ा और विलायती अथवा विदेशी वस्त्र में तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर—

(१) खादी ख़रीदना ही सर्वोत्कृष्ट मार्ग ठहरता है; क्योंकि इस पर ख़र्च होने वाली एक-एक पाई, सौ-का-सौ फीसदी रुपया देश-का-देश मे ही रहता है। आर्थिक दृष्टि से खादी ही आज देश का अधिक कल्याण करने वाली है। इसलिए खादी हो "स्वदेशी का शुद्ध और परिणत स्वरूप" मानी जाती है।

(२) देशी मिलो पर लगने वाली पूंजी मे से आधी से अधिक पूंजी सिर्फ़ विदेशी मशीनरी पर ही ख़र्च हो जाती है। देशी मिलो का माल लेने से मज़दूरों को माल की क़ीमत का सिर्फ़ २० फ़ीसदी ही हिस्सा मज़दूरी मिलती है। मिल-मालिक आदि अपनी आमदनी का काफी हिस्सा विलासिता के विलायती माल पर ही खर्च कर देते हैं। इन और ऐसी ही दूसरी सब बातों को ध्यान मे रख कर देखा जाय तो

देशी मिलों का माल खरीदने पर फ़ी सैकडा ३० रु० भी देश मे बचता है या नहीं, यह सन्देहास्पद है।

इस पर से यह स्पष्ट दिखाई दे जाता है कि देश की आर्थिक स्थिति सुधारने मे खादी और देशी मिलों का माल इन दोनों में से कौन कितनी मदद करता है।

(३) विलायती अथवा विदेशी माल लेने में तो सब-का-सब—सौ फीसदी पैसा देश को जाता है। ऐसी दशा में वह माल लेना सर्वथा निन्दनीय एवं त्याज्य है, इस सम्बन्ध मे अलग विवेचन करने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

जिस प्रकार देश को आज राजनैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है, उसी तरह आर्थिक दृष्टि से भी वह स्वतन्त्र नहीं है। इसलिए भारतीय बन्दरगाह पर विदेशी वस्त्र की आयात पर प्रतिबन्ध लगाया नहीं जा सकता—हम देशी वस्त्र पर ज़कात लगा नहीं सकते।[१] ऐसी दशा में स्वयं जनता को ही मंहगी खादी खरीद कर उसका—खादी का—'संरक्षण' करना चाहिए। दूसरे किसी भी उन्नत राष्ट्र के इतिहास का अध्ययन करने पर हम देखेंगे कि अर्थशास्त्र की दृष्टि से राष्ट्र का संरक्षण करने के लिए लोगों ने स्वयं अपनी राज़ी-खुशी से अथवा कानून के बल पर खराब और महंगी वस्तुयें काम मे ली है। इसी तरह हिन्दुस्तान में भी जो लोग अर्थशास्त्र को समझते है, अथवा जिनमे सहृदयता और स्वदेशाभिमान है, उन्हें आर्थिक दृष्टि से अपने हिन्दुस्तान का संरक्षण करने के लिए महंगी, मोटी-झोटी अथवा अन्य दोषयुक्त खादी का व्यवहार प्रिय हुआ है, और प्रिय हुए बिना रह नहीं सकता।

महात्माजी से यह प्रश्न किया गया था कि 'अर्थ-शास्त्र का जो यह सिद्धान्त है कि बाज़ार मे जो सस्ता और सुन्दर माल हो वही लिया जाय,

१ यह ठीक है कि भारत सरकार ने इस समय विदेशी वस्त्र पर जकात लगादी है, लेकिन वह लगाई गई है सरकारी आमदनी बढाने की दृष्टि से। उससे हिन्दुस्तानी मिलो के कपडे को थोडा-सा सरक्षण मिल जाता है, लेकिन खादी का उससे कुछ खास भला नही होता।

क्या वह ग़लत है ?' महात्माजी ने इसका जो उत्तर दिया था वह इस प्रकार है—

"आधुनिक अर्थ-शास्त्रकारों ने जो अमानुषिक सिद्धान्त प्रस्थापित किये हैं उन्ही में का एक यह सिद्धान्त है। समाज मे व्यवहार करते समय हम अपने मन मे इस प्रकार के क्षुद्र विचार कभी नही लाते। कोयले की खान मे काम करने के लिए अंग्रेज और इटालियन दो भिन्न-भिन्न देशो के दो मज़दूर आये। इनमें इटालियन मज़दूर की मज़दूरी की दर थोड़ी सस्ती थी, फिर भी अंग्रेजी खानवालों ने अंग्रेज़ मज़दूर को ही पसन्द कर उसे अधिक मजदूरी देकर रक्खा। यही करना उचित था। इंग्लैण्ड में अगर मजदूरी सस्ती करने का प्रयत्न किया गया तो राज्यक्रान्ति उठ खड़ी होगी। दूसरा अधिक क्रियाशील और उतना ही विश्वस्त नौकर मिलता है, इसलिए मैं इस समय मेरे पास जो अधिक वेतन पानेवाला विश्वस्त नौकर है, उसे अलग करदूँ तो वह पाप होगा। जो अर्थशास्त्र 'नीति और भावना' की अवहेलना करता है वह मोम की पुतली-सा है। वह बिल्कुल जीवित मनुष्य की तरह प्रतीत होती है, किन्तु उसमे चैतन्य नहीं होता। ठीक आनबान के प्रत्येक प्रसंग पर अर्थशास्त्र के ये नूतन सिद्धान्त तोड़े जाते हैं। जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र इन सिद्धान्तो पर चलता है उसका नाश अवश्यम्भावी है। जब से हम इंग्लैण्ड और जापान का सस्ता माल लेने लगे तभी से हमारा नाश हुआ।"[1]

संक्षेप में कहा जाय तो मनुष्य को संसार में हमेशा रुपये, आने, पाई के हिसाब की वृत्ति रख कर व्यवहार नहीं करना चाहिए। उसे रुपये, आने, पाई की अपेक्षा अपना धर्म और देश अधिक प्रिय होना चाहिए। ऊपर यह कहा ही जा चुका है कि राज्याश्रय के अभाव मे जनता का महँगी खादी लेना एक प्रकार से उसका 'संरक्षण' करना है। अगर करोड़ों की पूँजीवाले ताता के लोहे के कारखाने का संरक्षण के बिना जीवित रह सकना सम्भव नहीं है—उसे जीवित रखने के लिए दिल्ली की असेम्बली में प्रस्ताव पास करने पड़ते हैं—तब क्या मूक ग़रीबों का पोषण करने

१ 'यंग इण्डिया' भाग १ पृष्ठ ६५७

वाली, थोड़ी पूँजी से चलनेवाली खादी के लिए जनता को इतना स्वार्थ-त्याग नहीं करना चाहिए ?

"केवल राजनैतिक शस्त्र के ही रूप मे नही, बल्कि धार्मिक और कला की दृष्टि से भी 'स्वदेशी' हमारा ध्येय होना चाहिए।"[१]

"हमारा कपडा महंगा होगा, किन्तु यह बात ध्यान मे रखिए कि इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान के सफ़ाईदार और सस्ते माल का अपने देश मे आना रोकर, उसकी बिक्री बन्द की और अपना खुद का महंगा माल बिक्री के लिए बाज़ार मे रख कर अपने कपडे के धन्धे का संरक्षण किया। तब क्या हम अपने बुभुक्षित देश के लिए आना-दो आना अधिक खर्च नहीं कर सकेंगे ? जिसमे ज़रा भी बुद्धि है—फिर चाहे वह हिन्दू हो अथवा मुसलमान,—उसे अपने देश बन्धुओं के मरणोन्मुख स्थिति में पडे हुए धन्धों के संरक्षण के लिए विदेशी माल का लेना बन्द करके स्वदेशी माल ही बरतना चाहिए।"[२]

"तुलनात्मक दृष्टि से खादी मोटी-झोटी एवं खुरदरी होगी, लेकिन वह अगर सचमुच इतने परिमाण मे और इस तरह बुभुक्षितों को अन्न देने मे सहायक होती है, जितना कि और कोई दूसरा गृह-उद्योग नहीं हो रहा है, और साथ ही अगर वह ब्रिटिश माल के बहिष्कार को सफल बनाने मे सहायक होती है तो उस खादी के लिए कितनी ही क़ीमत देनी पडने पर भी वह महंगी नहीं पडेगी और उसके मोटे-झोटे अथवा खुरदरेपन पर किसी को शिकायत नहीं करनी चाहिए।"[३]

विदेशी राष्ट्र हमारे उद्योग-धन्धों को चौपट करने के लिए हमें अपना माल सस्ता ही क्या मुफ़्त तक दे तो क्या हम उस मोह के शिकार होकर अपने बाल्यावस्था के उद्योग-धन्धों को जहां-का-तहों मार देंगे ?

"एक देश का दूसरे देश की जनता के जीवन का—जीविका का—

१. डा० कुमारस्वामी कृत 'Art and Swadeshi' पृष्ठ ७ (खादी स्वदेशी का शुद्ध और परिणत स्वरूप है—लेखक)

२ श्री एम ए चौधरी 'Swadeshi Movement' पृ० १०७-१०८

३ 'बम्बई क्रानिकल' ६ दिसम्बर १९२८ का मुख्य लेख

भाग परोपकार बुद्धि तक से अपनाना प्रतिष्ठायुक्त, वाञ्छनीय और हितकारक नहीं होगा। जिस प्रकार जिस समय हमने जन्म लिया उस समय के समाज की सेवा करना हमारे लिए अनिवार्य है, उसी तरह जिस देश में हमारा जन्म हुआ उसी देश की सेवा करना और उसी देश से अपनी सेवा लेना, यही विश्वनियन्ता—परमेश्वर—की इच्छा है।"

"प्रत्येक विषय मे इस स्वदेशी धर्म के पालन करने की आवश्यकता है। धर्म, संस्कृति, सामाजिक रीति-रिवाज, पारिवारिक व्यवस्था, व्यापार, उद्यम, भाषा, अर्थशास्त्र, राजनीति, पोशाक और कला-कौशल आदि सब बातों में इस स्वदेशी-धर्म का पालन होना चाहिए।"

"भिन्न-भिन्न समय मे और जनता के जीवन के भिन्न-भिन्न विषयों मे इस स्वदेशी-धर्म का पालन करते हुए उस पर आक्रमण होने की सम्भावना रहती है, अतः उस-उस समय मे, उस-उस स्वदेशी धर्म की रक्षा करने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना युगधर्म है।"[१]

१ द० वा० कालेलकर 'स्वदेशी धर्म' (गुजराती) पृष्ठ ११

: ११ :

खादी और समाजवाद

"मैं मानता हूँ कि कुछ समय के लिए खादी ने बहुत फ़ायदा पहुंचाया और भविष्य में भी कुछ समय के लिए और लाभदायक हो सकती है, उस वक्त तक के लिए जबतक कि सरकार व्यापक रूप से देश-भर के लिए कृषि और उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों को ठीक तरह से हल करने के काम को खुद अपने हाथ मे नहीं ले लेती। हिन्दुस्तान मे इतनी ज्यादा बेकारी है कि जिसका कहीं कोई हिसाब ही नहीं है, और देहाती क्षेत्रों में तो आंशिक बेकारी इससे भी कहीं ज्यादा है। सरकार की तरफ़ से इस बेकारी का मुकाबिला करने के लिए कोई कोशिश नहीं की गई है, न उनके बेकारों को किसी तरह की मदद देने की ही कोशिश की है। आर्थिक दृष्टि से खादी ने उन लोगों को थोडी सी मदद ज़रूर दी है, जो बिल्कुल या कुछ हद तक बेकार थे, और क्योंकि उनको जो कुछ मदद मिली वह उनको अपनी-अपनी कोशिश से मिली, इसलिए उसने उनके आत्म-विश्वास का भाव बढाया है और उनमे स्वाभिमान का भाव जाग्रत कर दिया है। सच बात यह है कि खादी का सबसे अच्छा परिणाम मानसिक हुआ है। खादी ने शहरवालों और गांव वालों के बीच की खाई को पाटने की कोशिश मे कुछ कामयाबी हासिल की है। उसने मध्यमवर्ग के पढे-लिखे लोगों और किसानों को एक-दूसरे के नज़दीक पहुंचाया है, दोनों के ही मन पर बहुत असर पडता है। इसलिए जब मध्यमवर्ग के लोगों ने सफेद खादी की पोशाक पहनना शुरू किया तो उसका नतीजा यह हुआ कि सादगी बढी, पोशाक की दिखावट और उसका गंवारूपन कम होगया, और अब लोगों के साथ एकता का भाव बढा। इसके बाद जो लोग मध्यम वर्ग में ही नीची श्रेणी

के थे, उन्होंने कपडो के मामले मे अमीर लोगों की नकल करना छोड दिया और खुद सादी पोशाक पहनने में किसी तरह बेइज़्ज़ती समझना भी छोड दिया। सच बात तो यह है कि जो लोग अब भी रेशम और मलमल दिखाते फिरते थे, खादी पहननेवाले उनसे अपने को ज़्यादा प्रतिष्ठित और ऊँचा समझने लगे। ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी खादी पहनकर आत्म प्रधान और प्रतिष्ठा अनुभव करने लगा। जहाँ बहुत से खादी-धारी जमा हो जाते थे, वहां यह पहचानना मुश्किल हो जाता था कि इनमें कौन अमीर है और कौन ग़रीब और इन लोगो में साथीपन का भाव पैदा हो जाता था। इसमें कोई शक नहीं कि खादी ने जनता को कांग्रेस के पास पहुँचने मे मदद की। वह कौमी आज़ादी की वर्दी होगई।

"इसके अलावा, हिन्दुस्तान की कपडे की मिलों के मालिकों में अपनी मिलों के कपडे की क़ीमतें बढाते जाने की जो प्रवृत्ति हमेशा पाई जाती थी उसको भी खादी ने रोका। पुराने ज़माने में तो हिन्दुस्तान की इन मिलों के मालिकों को सिर्फ एक ही डर क़ीमतें बढाने से रोकता था, और वह था विलायती—ख़ास तौर पर लंकाशायर के कपड़ों की क़ीमतों का मुक़ाबिला। जब कभी यह मुक़ाबिला बन्द होगया, जैसा कि विश्वव्यापी महायुद्ध के ज़माने मे हुआ था, तभी हिन्दुस्तान में कपडों की क़ीमत बेहद बढ गईं और हिन्दुस्तान की मिलों ने मुनाफ़े मे भारी रक़में कमाईं। इसके बाद स्वदेशी की हलचल और विलायती कपडे के बहिष्कार के पक्ष में जो आन्दोलन हुआ उसने भी इन मिलो को बहुत बड़ी मदद पहुँचाई लेकिन जब से खादी मुक़ाबिले पर आ डटी तब से बिल्कुल दूसरी बात होगई और मिलों के कपडे की क़ीमतें उतनी न बढ सकीं, जितनी वह खादी के न होने पर बढतीं। बल्कि सच बात तो यह है कि इन मिलों ने (साथ ही जापान ने भी) लोगों की खादी की भावना से नाजायज़ फायदा उठाया—उन्होंने ऐसा मोटा कपड़ा तैयार किया, जिसका हाथ के कते और हाथ से बुने कपडे से भेद करना मुश्किल होगया। युद्ध की सी कोई दूसरी ऐसी ग़ैर मामूली हालत पैदा हो जाने पर, जिसमें विलायत के कपडे का हिन्दुस्तान में आना बन्द होजाय, हिन्दुस्तानी मिलों के

मालिकों के लिए कपडों की खरीददार पब्लिक से अब उतना फ़ायदा उठा सकना मुमकिन नहीं है, जितना कि १९१४ के बाद तक उठाया गया। खादी का आन्दोलन उन्हें ऐसा करने से रोकेगा और खादी के संगठन मे इतनी ताक़त है कि वह थोडे ही दिनों में अपना काम बढा सकता है।"[१]

समाजवादियों के दो भेद हैं, हम उनमे से एक को 'प्रबुद्ध' समाजवादी और दूसरे को 'एकान्तिक' समाजवादी के नाम से सम्बोधित करेंगे। यह मानने मे कोई हर्ज नही है कि इनमें से प्रबुद्ध समाजवादियों की विचारसरणी पं० जवाहरलाल नेहरू के उक्त विचारों मे व्यक्त होती है।

भारतीय जनता के जीवन मे खादी ने किस प्रकार आर्थिक, सामाजिक और मानसिक परिवर्त्तन पैदा कर दिया है, इसका जो सूक्ष्म विवेचन पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के समाजवादी नेता ने किया है वह सबके मनन करने योग्य है। खादी की यह नाना-विध कारगुज़ारी उन्हें स्वीकार है, किन्तु उन्होंने अपनी इस स्वीकारोक्ति पर मर्यादा लगादी है। उनका कहना है कि "(१) हमारे स्वराज्य प्राप्त करने और (२) समाजवादी पद्धति से सब उद्योग-धन्धों की सुसंगठित योजना—Planned economy—तैयार कर (३) उसपर अमल करने तक ही हम खादी की उपयोगिता स्वीकार करते हैं।"

ऐसी दशा मे अब यह एक स्वतन्त्र प्रश्न उपस्थित होता है कि स्वराज्य मिलने के बाद खादी का क्या होगा? तात्कालिक प्रश्न यह है कि (१) स्वराज्य कब मिलेगा? (२) उसके मिलने के बाद सब उद्योग-धन्धो की सुसंगठित योजना तैयार करने में और (३) उस योजना पर अमल शुरू होने में कितना समय लगेगा?—इन सब प्रश्नों का उत्तर समाजवादियों की परिभाषा में देना हो तो वह इन शब्दों में दिया जा सकता है कि "वह समय अन्तर्राष्ट्रीय और सांसारिक परिस्थिति (International and world forces) पर निर्भर है। इसका

१ पं० जवाहरलाल नेहरू—'मेरी कहानी, अध्याय ६२ पृष्ठ ६३२ से ६३६।

मतलब यह हुआ कि वह समय वे निश्चित कर नहीं सकते ।[१]

अभी खादी भारतीय जनता को पराधीनतारूपी खाई से निकाल कर स्वराज्य-रूपी घाट पर ले जाने वाली डोंगी के समान है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे समाजवादी नेता तक को यह विचारसरणी स्वीकार है। ऐसी दशा में सब समाजवादियों का यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि स्वराज्य मिलने के अनिश्चित काल तक ही क्यों न हो उन्हें पूरे उत्साह के साथ खादी के आन्दोलन को प्रोत्साहन देना चाहिए।

अनेक लोगों ने अनेक कारणों से समाजवाद में (१) काम्यवाद, (२) अनीश्वरवाद, (३) हिंसावाद और (४) यन्त्रवाद की अनेक कारणों से घालमेल कर दी है, किन्तु वास्तव में समाजवाद के लिए इन चारों में से एक भी अनिवार्य नहीं है। बहुत-से समाजवादी ऐसे हैं जो इनमें से पहले दो—काम्यवाद और अनीश्वरवाद—में विश्वास नहीं करते,

१. समय की यह अनिश्चितता और इन सारी परिस्थितियो को ध्यान मे रखकर ही महात्माजी ने नीचे लिखेनुसार जो निष्कर्ष निकाला हैं उसकी ओर हम पाठको का ध्यान आकर्षित करना चाहते है। वह कहते हैं —

"जवतक हिन्दुस्तान के गावो के १८ वर्ष से ऊपर के प्रत्येक सशक्त स्त्री-पुरुष के घर पर, खेत पर या कारखाने तक मे मजदूरी देने वाली कोई एकाध अच्छी योजना तैयार नहीं हो जाती, अथवा जवतक हिन्दुस्तान के गाँवो के वजाय काफी तादाद मे नये शहर खडे किये जाकर उनमे ग्रामीण जनता के नियमित जीवन की पूर्त्ति के लिए आवश्यक सब वस्तुओ के मिलने की व्यवस्था हो नही जाती—यह योजना जिस समय अमल मे आनी हो तभी आवे—तवतक हिन्दुस्तान के करोडो ग्रामवासियो के हित को ध्यान मे रखने पर केवल एक शुद्ध अर्थ-शास्त्रीय कसौटी पर कसे जाने पर खादी का ही सिद्धान्त ठीक उतरेगा।"

(इन विचारो को इतने विस्तार से देने का मतलव यही है कि हम जान सके कि हम जितने दीर्घ-कालीन भविष्य की कल्पना कर सके तबतक भी खादी का स्थान अटल रहने वाला है।—)हरिजन २० जून १९३६

लेकिन सब समाजवादी बाकी के दो—हिंसावाद और यन्त्रवाद—को समाजवाद में गृहीत मानकर ही चलते हैं। लेकिन ऐसा होने पर भी समाजवाद के मूल अर्थ में इन दोनों का समावेश करना ही चाहिए, वास्तव में यह बात नहीं है।

असल मे देखने पर—

(१) सम्पत्ति का जो मुख्य और सार्वकालीन साधन भूमि है उस पर समाज का स्वामित्व होना चाहिए—सब भूमि गोपाल की होनी चाहिए।

(२) खान, रेलवे, जहाज़ आदि के जो मुख्य उद्योग व्यक्तिगत रूप से करने योग्य न होने के कारण सामूहिक रूप से करने पडते हैं उन सब पर सरकार का अधिकार होना चाहिए।

(३) जीवन की प्राथमिक आवश्यकता की चीज़ें—अन्न, वस्त्र, घर और औजार—इन्हें तैयार करने और खेती मे पूर्तिकर सहायता दे सकने वाले उद्योग, ग्रामोद्योग की पद्धति से, सम्पत्ति का केन्द्रीकरण न कर सकने वाले चरखे आदि औज़ारों के ज़रिये चलाये जायं। जिसने ऐसी योजना तैयार की है समझना चाहिए कि उसने समाजवाद की ही स्थापना की है।

'एकान्तिक' समाजवादी 'प्रबुद्ध' समाजवादियों से जुदे होकर खादी पर अनेक तरह के आक्षेप करते है। उपरोक्त विवेचन के बाद वस्तुतः इन आक्षेपों पर ध्यान देने का कोई कारण नहीं रह जाता, फिर भी अजानकार समाज के कानों पर बार-बार ये आक्षेप आते रहने के कारण उसकी दिशा भूल होना सम्भव है, इसलिए थोडे में उन पर विचार कर लेना ठीक होगा।

ये आक्षेप नीचे लिखेनुसार हैं—

(१) खादी जनता में बढ़ती हुई दरिद्रता के कारण उत्पन्न होने वाले असन्तोष को रोक रखती है और क्रान्ति की लहर के उभरने मे कुछ अंशों मे रुकावट डालती है।

(२) खादी के कारण सादे रहन-सहन का अवलम्बन करना पडता

है और इस प्रकार आवश्यकता बढ़ाकर उच्च रहन-सहन का प्रचार नहीं हो पाता।

(३) 'खादी' कोई अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त नहीं है, और

(४) देश में सर्वत्र यन्त्रों—मशीनों—का जाल बिछाने से ही उसकी दरिद्रता का प्रश्न हल होने वाला है। लेकिन खादी और चरखे ने आधुनिक प्रगति में रुकावट पैदा करदी है, नहीं उसे पीछे हटा दिया है।

आइये, अब हम इन पर एक-एक पर क्रमशः विचार करें।

पहला आक्षेप—खादी के कारण लोगों के पेट में दो ग्रास जाते हैं, इससे क्रान्ति की लहर उभरने नहीं पाती। अगर लोग अधिक बुभुक्षित हों तो वे क्रांति के लिए जल्दी ही तैयार हो जाते हैं। यही इस आक्षेप का मतलब है।

हमारे मत से यह विचारसरणी ही ग़लत है। हमें इंग्लैण्ड-जैसे बलवान और सुसंगठित राष्ट्र से लड़ना है, अतः उससे लड़ने के लिए हमें उसके समान ही सुसंगठित शक्ति का निर्माण करना चाहिए। देश में इस प्रकार की—क्रान्ति करने की—शक्ति किस स्थिति में पैदा हो सकती है? उसीमें, जबकि जनता में कुछ जीवन होगा और उसका मन शुद्ध होगा।

अन्न के बिना मनुष्य की प्राण-शक्ति का लोप होता है। अन्न बिना प्राण निर्बल हो जाता है, जिससे जनता सुव्यवस्थित संगठन होने तक टिक नहीं पाती। अन्न के अभाव में अगर किसी ने जनता को चिढ़ाया तो कुछ व्यक्ति इक्की-दुक्की हत्या आदि कर बैठेंगे और अपनी बची-खुची सारी शक्ति खर्च कर डालेंगे। इस कारण क्रान्ति के लिए आवश्यक संगठन होना असम्भव हो जायगा। स्वयं अन्न का अभाव कोई क्रान्ति-उत्पादक शक्ति हो नहीं सकता। उसके अभाव का अर्थ सब प्रकार की शक्ति का अभाव है।

जो बात प्राण के सम्बन्ध में है, वही मन के सम्बन्ध में है। मन दुहरा है—विकारमय और विचारमय। क्रान्ति के लिए सुव्यवस्थित

पारदर्शी मन की आवश्यकता होती है। उसके लिए विचारमय मन चाहिए। अन्न के अभाव में काम करने वाला मन विकारपूर्ण होता है। इस प्रकार के विकारमय मन के कारण ऊपर कहे अनुसार कुछ इक्की-दुक्की हत्याये हो जायंगी; लेकिन संगठन नहीं सकेगा। अन्न का अभाव विचारमय मन के जागृत होने का साधन नहीं हो सकता।

खादी ग़रीब जनता के पेट मे दो ग्रास डालती है, इससे जनता का प्राण और मन दोनों ही कायम रहते हैं, इसलिए किसी भी तरह का संगठन करना सुगम होता है। अंग्रेज़ी सरकार जैसे बलवान शत्रु से अहिंसात्मक रीति से लडने के लिए जिस संगठन की आवश्यकता है वह अन्न के अभाव मे निर्माण हो नहीं सकता।

मद्रास प्रान्त के प्रधानमंत्री श्री राजगोपालाचार्य ने अपने एक भाषण मे जो यह कहा था कि 'ख़ाली पेट कान बहरे करते है' वह बहुत भावपूर्ण है। इस सम्बन्ध मे ग्रामसेवकों का अनुभव ध्यान दिये जाने योग्य है। ग्रामसेवक किसानों के हित के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी अथवा बौद्धिक जागृति के कितने ही प्रयत्न करे, लेकिन वह किसानों की नज़रों मे नहीं चढते। लेकिन जब हम चरखे द्वारा मजदूरी के रूप मे उनकी सहायता करते हैं, तब वे हमारी ओर अपनपो के भाव से देखते हैं, और उसके बाद हम उनसे जो कुछ भी बात करने को कहते है, वे उसे बडे उत्साह से, आनन्द से और आत्म-विश्वास के साथ करते हैं।

इससे खादी क्रान्ति के लिए विरोध-स्वरूप नहीं, बल्कि उसे पोषण देने वाली ही ठहरती है।

दूसरा आक्षेप—इस समय हिन्दुस्तान में करोड़ों लोग ऐसे है जिनके पास पेट भर खाने के लिए भोजन नहीं, तन ढकने के लिए कपडे नहीं और गरमी, सरदी और बरसात से बचने के लिए छोटी-मोटी झोंपडी तक नही है। क्या ऐसी स्थिति होते हुए भी उनकी आवश्यकता बढाने का उपदेश करना लगी हुई आग पर और तैल छिड़कने के समान अनिष्ट नही होगा? क्या इससे उनकी दरिद्रता और अधिक नहीं बढेगी?

जनता को अपनी आवश्यकता बढाने का उपदेश करने से पहले यह देख लेना ज़रूरी है कि उसकी प्राथमिक आवश्यकताये पूर्णतया पूरी हो पाती हैं या नहीं। इसके सिवा आवश्यकताये लगातार बढाते जाना सुसंस्कृति का लक्षण नही है, उचित आवश्यकताये बढाना और अनुचित आवश्यकताओं को छोडते जाना उच्च रहन-सहन का सूचक है। उदाहरणार्थ, किसान और मज़दूर, अपनी ग़रीबी का कारण बनाकर ताज़ी हरी शाक-भाजी न खाते हों तो वह खानी चाहिए और उनमे अगर बीडी-तम्बाकू का व्यसन हो तो छोड देना चाहिए। इसी तरह अगर उन्हे जुआ खेलने की आदत हो तो उनसे यह लत छुडवानी चाहिए और ऐसी पुस्तके लेने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे उनके विचार सुसंस्कृत हो। अगर वे शराब के व्यसन के शिकार हो गये हों तो उससे उन्हे छुडाकर ऐसी योजना की जाय जिससे वे छाछ, दूध अथवा शहद का सेवन करने लगे।

इसके सिवा जो आवश्यकताये उचित प्रतीत हों उनतक मे तारतम्य देख लेना चाहिए। उदाहरणार्थ अगर हम यह मानकर चले कि देश को अच्छे बोधप्रद और मनोरंजक सिनेमा की आवश्यकता तो है, लेकिन उसको पूरी करने के लिए हमे एकाधी एकादशी अथवा सोमवार का उपवास करना पडता है, तो हम तारतम्य का विचार कर उस आवश्यकता को तुरन्त छोड दे। उसी तरह अगर हमे ऐसा प्रतीत हो कि रेडियो द्वारा अपना मन-बहलाव करना चाहिए, लेकिन अगर मच्छरों के दुःख से घर मे लोग बीमार पडते हों तो हमारा कर्त्तव्य रेडियो के बजाय मसहरी लेना ही होगा।

ख़ैर, अगर हम क्षणभर के लिए यह मानकर भी चले कि आवश्यकतायें बढाना उच्च रहन-सहन का लक्षण है, तब प्रश्न यह होता है कि उन्हे कहांतक बढाया जाय? उनपर पाबन्दी कब लगाई जाय? वास्तव में देखने पर आवश्यकताये बढाना उच्च रहन-सहन का लक्षण नही है, प्रत्युत विवेकपूर्ण और संयमशील जीवन बिताना ही उच्च संस्कृति का परिचायक है। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्रज्ञ श्री राधाकमल मुकर्जी कहते हैं—"भारतीय जनता अपने नैतिक आध्यात्मिक जीवन को अधिक शक्ति और

गम्भीरता के साथ चला सकने के लिए अपनी स्वाभाविक आवश्यकताओं तक को बहुत कम करते जाने का प्रयत्न करती है।"[१]

तीसरा आक्षेप—खादी कोई अर्थशास्त्रीय सिद्धान्त नहीं है, इसका मतलब यह है कि आर्थिक दृष्टि से खादी पुसानेवाली नहीं है, उसके ज़रिये राष्ट्रीय सम्पत्ति मे कोई ख़ास वृद्धि नही होती। लेकिन ऐसा कहना वस्तुस्थिति के विपरीत है। किसानों के पास वर्ष भर में तीन-चार महीने काम नहीं रहता; ऐसी दशा में उन्होंने फ़ुरसत के समय का दुरुपयोग कर चार पैसे की कमाई की तो उससे राष्ट्रीय सम्पत्ति मे वृद्धि ही होगी, उसके कारण, थोडी-सी ही सही, बेकारी दूर होगी और राष्ट्र की दृष्टि से बेकारी का दूर होना अर्थशास्त्र का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है।

खादी के कारण समूचे राष्ट्र की सम्पत्ति का माप करने के लिए यह शक्ति एक अधिकृत साधन है।

जितनी तादाद में खादी पैदा होती है, उतने ही परिमाण मे विदेशी माल की खपत में कमी होती है, इस तरह भी राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि होकर फिर उसका उपयोग राष्ट्र की उत्पादक-शक्ति बढाने में होता है। इसलिए खादी ख़रीदनेवाले की जेब मे से दो पैसे अधिक जाने पर भी प्रकारान्तर से राष्ट्र की उत्पत्ति मे वृद्धि होने से उसकी सम्पति की वृद्धि ही होती है। यह बात ध्यान मे रखना चाहिए कि अर्थशास्त्र व्यक्ति की सम्पत्ति का शास्त्र नहीं, राष्ट्र की सम्पत्ति का शास्त्र है। जो शास्त्र व्यक्ति के संकुचित नफे-नुक़सान को न देखकर राष्ट्र की सम्पत्ति में वृद्धि होती है या नहीं, इस बात पर नज़र रखता है वही अर्थशास्त्र है। अपने को समाजवादी कहनेवाले लोग केवल व्यक्ति को ध्यान में रखकर इस प्रकार का आक्षेप कर नहीं सकते।

इसके सिवा खादी के उद्योग में किसी का भी रक्त-शोषण नहीं होता।

१ राधाकमल मुकर्जी कृत "Foundations of Indian Economics" पृष्ठ ४५८

लेखक ने इस पुस्तक मे इस विषय पर विस्तारपूर्व विवेचन किया है। जिज्ञासु उसे मूल पुस्तक मे देख सकते हैं।

उसमें अतिरिक्त मूल्य (Surplus Value) का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। सारा 'मुनाफ़ा, बोनस अथवा ब्याज' अधिकतर और अधिकांश में समान-रूप मे श्रमजीवियों में ही बँट जाता है। दलाल की दलाली के लिए उसमें मौका ही नहीं होता। लोढना, धुनकी, चरखा आदि खादी के सब औज़ार कम कीमत के होने के कारण साधारण ग्रामवासी तक उन्हें ख़रीद सकता है। इसलिए इन साधनो को सामाजिक बनाने की कुछ आवश्यकता ही नहीं रहती, और इस प्रकार इसमे रक्तशोषण के लिए मौक़ा ही नहीं रहता।

इन सब दृष्टियों से विचार करने पर यह बात निर्विवाद ठहरती है कि खादी का आन्दोलन सर्वव्यापी होने के कारण वह—खादी—राष्ट्र की सम्पत्ति में वृद्धि करती है।[१]

चौथा आक्षेप—यन्त्रवाद को माननेवाला प्रबुद्ध समाजवाद भी आज की खादी की उपयुक्तता को स्वीकार करता है। अगर वह आज समाज के लिए उपयुक्त है तो वह उसे पीछे किस तरह ले जाती है? अगर वह समाज को पीछे ले जाती है तो यह कहना चाहिए कि आज भी वह उपयुक्त नहीं है। लेकिन एकान्तिक यंत्रवादी समाजवाद का वेश धारण करके जो यह कहता है कि आज की घडी खादी निरुपयोगी है वह बाह्यतः—ऊपर से—समाजवादी है, किन्तु भीतर से उसे देखा जाय तो वह यन्त्रवादी सिद्ध होगा। उसके लिए उत्तर यह है—

यह बात अक्षरशः सत्य है कि औद्योगिक क्रान्ति के बाद मनुष्य को प्रकृति के गुप्त रहस्यों का बोध हुआ है और उसमे छिपे पडे रत्न-भंडार का उपयोग करने की उसकी शक्ति भी बढी है; लेकिन उस शक्ति का जितना विकास हुआ है उस परिमाण में इस ज्ञान और शक्ति का मानव-जाति की सेवा के लिए उपयोग और नियन्त्रण करने के लिए जिस नैतिक साहस की आवश्यकता होती है, उसका विकास नहीं हुआ है।" संसार के युद्धमान राष्ट्रों में विषैली गैस और हवाई जहाज़ों पर से

१ आचार्य कृपलानी "Gandhian way"

वरसाये जानेवाले बमगोलों से मानवजाति का जो संहार होता है वह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है।

यूरोपवासियों को यन्त्रों—मशीनों—के कारण ही 'समाजवाद' सूझा है। औद्योगीकरण के दोष जानकर भी वे यन्त्रों—मशीनों का—व्यवहार करके ही उनका दोष दूर करने को कहते हैं। वे 'मशीन और उद्योग का केन्द्रीकरण' चाहते हैं, केवल रक्त-शोषण नहीं चाहते। वास्तव मे देखने पर हमें भारत की विशेष परिस्थिति को ध्यान मे रखकर ही विचार करना चाहिए।

पश्चिमीय देशों में जिस तादाद में औद्योगीकरण हुआ है उतना हिन्दुस्तान मे नहीं हुआ है। श्री जयप्रकाश नारायण अपनी 'समाजवाद ही क्यों ?' नामक पुस्तक में लिखते है—"यान्त्रिक दृष्टि से पिछड़े हुए हिन्दुस्तान में औद्योगीकरण करने के लिए स्वभावतः ही कुछ समय लगेगा, इसलिए उसका समाजवादी राष्ट्रों में तुरन्त ही रूपान्तर किया जा सकना सम्भव नहो है।[1] जब वस्तुस्थिति यह है तब हिन्दुस्तान में पहले तो यन्त्र-युग शुरू किया जाय और फिर उसके दोष दूर करने बैठा जाय, क्या इस प्रकार अव्यापारेषुव्यापार करना उचित होगा ? क्या इसकी अपेक्षा औद्योगीकरण के दोप दूर कर अपनी संस्कृति के अनुकूल समाज के पुनर्संगठन का प्रयत्न करना हितकर नहीं होगा ?

हिन्दुस्तान के सारे उद्योग-धन्धों को अंग्रेज़ सरकार ने चौपट किया है। अकेली खेती पर पेट भरनेवाले लोगों की संख्या ७३ फ़ीसदी हो गई है। इनके पास वर्ष मे ३-४ महीने काम नहीं रहता। इसके सिवा हिन्दुस्तान के ५ करोड लोग और वेकार हैं। फिर हिन्दुस्तान के बैलों को भी कुछ काम मिलना चाहिए। (पश्चिमी देशों की तरह हिन्दुस्तान के लोग बैलों का उपयोग खाने में नहीं करते।) इस समय हिन्दुस्तान की सब मिलों मे चार लाख से अधिक मज़दूर नहीं हैं। ऐसी दशा में अगर हिन्दुस्तान मे औद्योगीकरण किया गया तो ये लोग इतना माल तैयार करने लगेंगे कि उसको खपाने के लिए दूसरा देश जीतना पड़ेगा। दूसरा

१. पृष्ठ ७८

देश जीतने का मतलब दुर्बल राष्ट्र का रक्त-शोषण करना ही होगा।

ऐसा एक भी यन्त्र-परायण राष्ट्र नहीं है, जो बेकारी का शिकार न हुआ हो। इसके लिए अमेरिका और जापान को चीन पर आक्रमण करने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। उत्पत्ति के केन्द्रीकरण के मूल में मनुष्य के काम में कमी करने की कल्पना है। यह केन्द्रीकरण ही जब बेकारी का निर्माण करता है, तब वह बेकारी के प्रश्न को किस तरह हल कर सकेगा? केन्द्रीकरण मनुष्य को पशु बनाता है। ये यन्त्र—मशीनें—हमारे ग़ुलाम होने चाहिए। मनुष्य को उन औजारों और उपकरणों को अपने अधीन रखना चाहिए। उद्योग-धन्धों का विभक्तीकरण होने पर ही यह सम्भव हो सकता है। लंकाशायर की मिलों का केन्द्रीकरण होने के कारण हिन्दुस्तान मे बेकारी बढी है और विलायत में कुछ करोडपतियों का निर्माण किया है। उसी के कारण हमारा राजनैतिक अधःपतन हुआ है। इस समय हम अनेक हस्त व्यवसायों—हाथ के धन्धों—की मृत्यु-शैया के निकट बैठे हुए हैं। अगर हम उनका पुनरुद्धार कर सके तो करोड़ों बेकारों को काम, सुख और सम्पत्ति देने का यश हमें मिलेगा।[1]

ऊपर के विवेचन पर से यह प्रश्न पैदा होगा कि मशीनें हमारी दरिद्रता के प्रश्न को हल करने वाली हैं या खादी और ग्रामोद्योग बेकारों को काम देकर उन्हें जीवित रखनेवाले हैं? इस पर हमारा यह स्पष्ट उत्तर है कि हिन्दुस्तान की आबादी, हिन्दुस्तान की बेकारी, हिन्दुस्तान की खेती की परिस्थिति, हिन्दुस्तान में अबतक हुआ औद्योगीकरण और हिन्दुस्तान की परम्परा एवं संस्कृति इन सब का सामूहिक रूप से विचार करने पर यह निश्चय है कि मनुष्यों को पशु बनाने वाली ये अजस्त्र मशीनें और उत्पत्ति का अनावश्यक केन्द्रीकरण हिन्दुस्तान के लिए विघातक ही सिद्ध होगा। इसके विपरीत चरखे और ग्रामोद्योग द्वारा (उत्पत्ति) का केन्द्रीकरण न होकर (२) पैसे का समान बँटवारा होगा; (३) रक्त-शोषण नहीं होगा, (४) हस्तकौशल और बुद्धि के विकास होने का मौका मिलेगा और (५) जनता से प्रत्यक्ष सम्पर्क बढा कर राष्ट्र का संगठन करने में सहायता मिलेगी।

१ कुमार अप्पा—'हरिजन', १६ फरवरी १९३८

: १२ :

खादी पर होने वाले दूसरे आक्षेप

खादी पर किये जाने-वाले प्रमुख आक्षेपों का विवेचन पिछले दो अध्यायों मे किया जा चुका है। इस अध्याय में दूसरे आक्षेपों पर विचार करेंगे।

पहला आक्षेप—कुछ लोगों का यह कहना है कि हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है, ऐसी दशा मे खेती मे सुधार करने के बजाय चरखे और खादी के पीछे व्यर्थ ही क्यों पडा जाता है ?

इसका उत्तर यही है कि हिन्दुस्तान की खेती मे यह मुख्य दोष है कि यहाँ के खेतिहरों—किसानों—को बारहों महीने काम पूरा नहीं पडता। अतः उसमे जो सुधार करने हों वह ऐसे होने चाहिएं जिससे कि किसानों को बारहों महीने काम मिलता रहे—उनकी जबरदस्ती की बेकारी और आलस्य दूर होना चाहिए। 'बेकारी और आलस्य' शीर्षक अध्याय में संयुक्त प्रान्त के मर्दुमशुमारी के अफ़सर मि० एडी का यह कथन हम देख ही चुके हैं कि हिन्दुस्तान की प्राकृतिक स्थिति ही ऐसी है कि इंग्लैण्ड की, किसानों को बारहों महीने काम देनेवाली मिश्र खेती यहाँ हो ही नहीं सकती।' हिन्दुस्तान की अधिकतर ज़मीन बंजर है, अतः खेती मे कुछ सुधार किये भी गये तो भी उनसे खेतिहरों—किसानों—की बेकारी दूर होगी, ऐसा प्रतीत नहीं होता। बहुत हुआ तो उनके काम के दिनों मे कुछ काम अधिक बढ जायगा, लेकिन वर्ष में कम-से-कम तीन-चार महीने तो बिना काम के बीतेंहींगे। ऐसी स्थिति में उस अवधि मे उन्हे कोई सा भी दूसरा सहायक धन्धा करना ही होगा

१ इग्लैण्ड की हवा ठडी होने के कारण वहाँ के खेतो में बारहों महीने सील रहती है।

और जब उन्हें सहायक धन्धा करना ही है तो यह सिद्ध किया जा चुका है कि किसानों के लिए चरखे से उत्तम दूसरा और कोई धन्धा नहीं है।

सरकार ने खेती में सुधार करने के लिए अपना कृषि-विभाग खोल रक्खा है। आज तक उस विभाग की ओर से खेती में कितना सुधार हुआ? भारतीय ग्रामीण जनता की आर्थिक स्थिति में कितनी उन्नति हुई? पूना और अहमदाबाद की प्रदर्शिनियाँ करने में सरकार का क्या उद्देश्य था, यह प्रकट हो ही चुका है। मि० सेम्युल 'मिनिस्टर फ़ार ओवर सीज़ ट्रेड' ने लिंकन चेम्बर आव कामर्स के सामने भाषण देते हुए कहा था—

"भारतीय किसानो की सहायता के लिए भारत सरकार मदद देती है, और उसका सबसे अच्छा तरीक़ा है उनके हाथों में उन्नत खेती के औजार पकड़ा देना। नयी पद्धति के औज़ार किस तरह काम मे लाये जायँ, उन्हें किस तरह दुरुस्त किया जाय यह बताने के लिए ही सरकार ने कृषि और सहकारी विभागों का निर्माण किया है।

भारत सरकार, भारतीय जनता से विलायती औजार काम में लिवाने का यह प्रयत्न अभी ही करती हो सो बात नहीं है; सन् १८३२ के भी पहले से वह ऐसा प्रयत्न करती आई है। सन् १८३२ में कामन्स कमेटी के सामने ईस्टइण्डिया कम्पनी के बोटेनिकल गार्डन के सुपरिण्टेण्डेण्ट डा० वालिक की गवाही हुई थी। उनसे यह प्रश्न किये जाने पर कि 'हिन्दुस्तान में विलायती औजार काम में लाये गये हैं, उस सम्बन्ध मे आपका क्या मत है?' उसका उन्होंने जो जवाब दिया था वह इस प्रकार है—

"यद्यपि अनेक दृष्टियो से बंगाल के किसान अत्यन्त सीधे-सादे हैं और उनका रहन-सहन पुरानी पद्धति का है, तो भी लोग जितना समझते है उतने नीचे दर्जे के वे नही है। बार-बार यह बात मेरे देखने मे आई है कि अगर उनमें एकदम कोई सुधार करने का प्रयत्न किया गया तो उसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं हुआ। उदाहरणार्थ मुझे मालूम है कि ऊपर-ऊपर से ज़मीन कुरेदनेवाले और अत्यन्त उकता देनेवाले बंगाली हलों की बजाय विलायती हल शुरू किये गये थे, लेकिन उसका

नतीजा क्या हुआ ? ज़मीन के अत्यन्त पोरस होने के कारण विलायती हल जमीन को खूब नीचे से कुरेद कर मिट्टी को ऊपर ले आये, और इससे खेती को बहुत हानि हुई ।[१]

पाठक स्वयं विचार करें कि इसमें दोष किसका है ? बंगाली किसानों का, वहाँ की ज़मीन का, अथवा विलायती हलों का !

यह तो हुई सन् १८३२ की बात । इसी तरह की गवाही मि० मर्सर की हुई थी । मि० मर्सर अमेरिकन खेतिहर थे और उन्होंने हिन्दुस्तान में आकर यहाँ की खेती का अनुभव किया था । उन्होंने अपनी गवाही में कहा था—"अमेरिकन पद्धति हिन्दुस्तान के अनुकूल नहीं है । हिन्दुस्तान के लोग अपने खेतो की शक्ति और जलवायु से परिचित हैं, इसलिए किसी भी यूरोपियन की अपेक्षा वे अधिक कम ख़र्च में और मितव्ययिता या किफायत के ढंग से खेती करते हैं ।"[२]

हिन्दुस्तान की ज़मीन के छोटे-छोटे टुकड़े होने और किसान के दरिद्री होने के कारण भारी-भरकम विलायती औज़ारों का बरतना उनके वश की बात हो ही नहीं सकती । "जो लोग यह कहते हैं कि भारतीय लोगों को कृषि-शिक्षा दी जानी चाहिए, उनकी नज़रों के सामने हमेशा ट्रैक्टर (भाप से चलने वाला लोहे का हल), बनावटी खाद, और भारी-भारी खेत ही रहते हैं । भारतीय किसान इतने ग़रीब है कि ये भाप से चलनेवाले हल ख़रीदने की उनकी हैसियत ही नही है, उनकी ज़मीन के इतने छोटे-छोटे टुकड़े हो गये हैं कि उनका पाश्चात्य अनेक पद्धतियों का प्रयोग करना आर्थिक दृष्टि से पुसायगा नहीं ।"[३]

भारतीय किसानों की स्थिति सुधारने के लिए सरकार को पहले तो ज़मीन के लगान की अपनी नीति और पद्धति इस तरह बदलनी चाहिए

१ रमेशचन्द्र दत्त, भाग २ पृष्ठ ५७

२ खादी प्रतिष्ठान का 'ख़ादी मेन्युअल' भाग २ पृष्ठ ११०

३ ग्रेग 'Economics of khaddar' पृष्ठ १५० और म रा बोड्स 'ग्राम सस्था' प्रस्तावना पृष्ठ ४९, हरिभाऊ फाटक 'स्वदेशी की मीमासा' पृष्ठ ८८

इसी तरह पिछले अध्याय में प्रो० काले की कही हुई यह बात पाठकों को याद ही होगी कि फ़सल, खाद और बीज आदि का कितना ही सुधार करने पर भी उससे किसानों की स्थिति सुधरनेवाली नहीं है जिससे कि वह किसानों के अनुकूल हो और साथ ही रेलवे की जगह नहरों की वृद्धि करनी चाहिए। किसान को हमेशा इस बात का डर बना रहता है कि पता नहीं उसका लगान कब और कितना बढ़ जायगा। इसलिए वे खेती में ऐसे सुधार नहीं कर पाते जो अधिक काल तक टिक सकें। एकाध वर्ष फ़सल की पैदावार न होने की हालत में उन्हें लगान की सर्वथा छूट नहीं मिलती। ज्यादा-से-ज्यादा उस वर्ष उसकी वसूली स्थगित कर दी जाती है। खेत में फसल के तैयार होते-होते ही सरकार और साहूकार के दूत उनके पीछे पड़ जाते हैं। उनके कारण जियो या मर की-सी स्थिति होजाती है। उन्हें जिस किसी भी भाव अपना माल बेचने की जल्दी करनी पड़ती है। इससे उनका बहुत नुकसान होता है, फसल का होना-न-होना एकसा होजाता है। यह स्थिति बदली जानी चाहिए। इसके लिए ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि खेती का माल स्थिर चित्त और शान्ति के साथ और अच्छा भाव आवे ऐसे समय बेचा जा सके। इसके सिवा उन्हें सहायक धन्धे के रूप में चरखे का आश्रय लेना चाहिए।

किसी एक सज्जन ने महात्माजी से यह प्रश्न किया था कि 'आप किसानों के सम्बन्ध में अधिक क्यों नहीं लिखते ?' उसपर उन्होंने इस प्रकार उत्तर दिया था—"मैं किसानों के सम्बन्ध में इसलिए जानबूझकर अधिक नहीं लिखता, क्योंकि मुझे ऐसा लगता है कि वर्तमान परिस्थिति में हम उनके लिए अधिक कुछ कर-धर नहीं सकते—हमारे लिए वह सम्भव नहीं है। किसानों की स्थिति सुधारने के लिए हजारों बातें की जानी चाहिए। लेकिन जबतक शासन के सूत्र किसानों के प्रतिनिधियों के हाथ में नहीं जा पाते, जबतक हमें स्वराज्य—धर्मराज्य—मिल नहीं जाता तबतक उनका सुधार कर सकना असम्भव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। मैं जानता हूँ कि अत्यन्त कष्टमय जीवन बिताते हुए भी किसान

उसे रोज़ थोड़ा-सा भोजन भी शायद ही मिल पाता है। इसीलिए मैंने चरखे का पुनरुद्धार बताया है।"[1]

दूसरा आक्षेप—चरखे और खादी पर एक आक्षेप हमेशा यह किया जाता है कि क्या वर्तमान मशीन-युग में चरखा और खादी का प्रचार करने के लिए कहना घड़ी की सुइयों को पीछे हटा देने के समान नहीं है? रेलगाड़ी के ज़माने में बैलगाड़ी की हिमायत करने के समान नहीं है?

ये आक्षेप करनेवाले यह समझ बैठे हैं कि एक तरह की सब मशीनें समस्त मानव-समाज के लिए हितकारक ही सिद्ध हुई हैं, किन्तु असल में देखने पर पता चलेगा कि मशीनों ने हमारी कुछ सुख-सुविधायें बढ़ा दी हैं, लेकिन साथ ही उन्होंने मानव-समाज पर कुछ दूसरी मुसीबतें भी ढहाई हैं। ऐसी दशा में कोई भी विवेकशील पुरुष छाती ठोककर यह नहीं कह सकेगा कि मशीनों ने मानव-जाति की एकसमान प्रगति ही की है।

इस सम्बन्ध में महात्माजी की विचारसरणी भी विवेकपूर्ण ही है। वह यह नहीं कहते कि मशीन नामधारी सभी चीज़ें त्याज्य हैं। उनका कहना सिर्फ़ इतना ही है कि जो मशीनें मनुष्यों को गुलाम बनाती हैं, उनके हाथ-पैर, आँखें आदि इन्द्रियों का विकास न होने देकर उनकी प्रगति को रोकती हैं, अर्थात् जो मशीनें मनुष्यों को मशीन के समान बना देती हैं वे त्याज्य मानी जानी चाहिए। इसके विपरीत जिन मशीनों में मनुष्य के हस्तकौशल और बुद्धि के विकास का मौका रहता है, जिन यंत्रों का मनुष्य अपनी इच्छानुसार नियन्त्रण कर सकता है अर्थात् मनुष्य स्वयं इनका गुलाम न बनकर स्वयं उन्हें ही अपना गुलाम बनाता है, उन्हें वह त्याज्य नहीं मानते।

"भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से यान्त्रिक साधन और उनमें किये जानेवाले सुधारों की दो विधियाँ हो सकती हैं—

(१) पहली विधि—श्रम करनेवाले मनुष्य या पशु के स्नायु को कम श्रम करना पड़े और उनका समय बचे, इस दृष्टि से बनाये हुये

१ 'यंग इण्डिया' भाग २, पृष्ठ १०२३

यंत्र। उदाहरणार्थ: चकरी अथवा फिरकी, चक्की, चरखा, साइकल, सीने की मशीन, झटकासाल, इत्यादि

(२) दूसरी विधि—श्रम करनेवाले मनुष्य अथवा पशु की कमी-पूर्ति करनेवाली अथवा पशुओं की संख्या कम करनेवाली—

अथवा

मज़दूरों के बुद्धिचातुर्य या शरीर-बल का उपयोग करने के बदले उन्हें जीवितयत्र समझकर उनका उपयोग करनेवाले यंत्र। उदाहरणार्थ: आटे की चक्की, चावल तैयार करने का कारखाना, तेल निकालने की मिल. सूत और कपड़े की मिलें, भाप सहायता से चलनेवाले हल (ट्रैक्टर), भाप अथवा बिजली की सहायता से चलनेवाले पानी के पंप आदि।

इसमें पहले प्रकार के यंत्र और उनमे होनेवाले सुधार आमतौर पर इष्ट है।

दूसरे प्रकार के यान्त्रिक साधन अथवा उनमे होनेवाले सुधारों का उपयोग करने मे विवेक और चतुराई से काम लेना चाहिए।

(१) व्यक्तिगति साहस से न होनेवाले मगर सरकार की ओर से या सरकारी मदद से चलाये जानेवाले उद्योग। उदाहरणार्थ: रेलगाड़ी जहाज़, महत्व की खानें, मिट्टी के तेल के कुएं और उनके लिए—

(२) अत्यन्त सूक्ष्म काम देनेवाले साधन। उदाहरणार्थ: घड़ी. टाइपराइटर, प्रयोगशाला के सूक्ष्म औज़ार, उनके लिए काम मे लाये जाने-वाले औजार। इनके लिए यदि मशीन का उपयोग किया जाय तो इसमें दोष नहीं है।"[१]

इस विषय मे महात्माजी की विचारसरणी इस प्रकार है—"सीने की मशीनें जारी हुई तो भी सुई ने अपना स्थान अथवा उपयुक्तता अभीतक गंवाई नहीं है; 'टाइपराइटर' के जारी होने पर अभीतक हस्तलेखन का कौशल नष्ट नहीं हुआ है। जिस तरह होटलों के जारी होने पर भी घर-गृहस्थी मे चूल्हे जारी ही हैं, उसी तरह मिलों के होते हुये भी चरखे

१ किशोरलाल मश्रुवाला 'गाधी-विचार-दोहन', द्वितीय संस्करण पृष्ठ १२५-२६-२७

क्यों न चलाये जायें, इस सम्बन्ध में शंका करने का कुछ भी कारण रह नहीं जाता। सचमुच टाइपराइटर और सिलाई की मशीनें कभी नष्ट भी हो जाये तो भी सुई और बरू की कलम हमेशा कायम रहेगी ही। सम्भव है मिलों की दशा कभी पलटा खा जाय, लेकिन चरखा राष्ट्र की एक आवश्यक वस्तु है।"[१]

बीसवीं सदी के इस यान्त्रिकयुग मे महात्माजी खादी और चरखे का प्रतिपादन क्यों करते है, यह बात उपरोक्त सारे विवेचन पर से स्वच्छ शीशे की तरह स्पष्ट दिखाई दे जाती है। महात्माजी मशीनों के विरुद्ध नहीं हैं। अगर विरुद्ध होते तो क्या वह गांवों में दुरुस्त हो सकने और प्रति घण्टा २,००० गज़ सूत कात सकनेवाले चरखे की खोज करनेवाले को एक लाख रुपये पुरस्कार देने की तजवीज़ कर सकते थे?[२]

तीसरा आक्षेप--यह है कि अगर खादी बेकारों को काम देती है, ग़रीबों के पेट में अन्न के दो ग्रास डालती है,—वह अँधे की लकड़ी, विधवा का सहारा और भूखे की रोटी है,—और लोगों का वास्तविक कल्याण करनेवाली है तो उसकी प्रगति इतनी मन्द क्यो है? खादी से अगर लोगों का वास्तविक कल्याण हुआ होता, तो अभीतक उसका सपाटे से प्रसार होना चाहिए था। अगर वैसा प्रसार नहीं होता तो उसी तरह वह हितकारक भी नहीं है।

इसके उत्तर में चरखा-संघ को ओर से प्रकाशित अंकों[३] का अध्ययन करने पर कोई भी यह बात जान सकता है कि लाखों लोगों की दृष्टि से विचार करने पर खादी की प्रगति मन्द होते हुए भी किसी दूसरे एकाध धन्धे की तुलना मे वह काफी अधिक है। उसकी—खादी की—मार्फ़त प्रतिवर्ष गॉव में अधिक-से-अधिक मजदूरों को अधिक-से-अधिक मजदूरी

१ 'यग इण्डिया' भाग १, पृष्ठ ५०३

२ यन्त्रो-मशीनो-सम्बन्धी अधिक विवेचन 'खादी और समाजवादी' अध्याय में देखिए।

३ 'अखिल भारतीय खादी कार्य' शीर्षक अध्याय।

बाँटी जाती है। व्यवस्था खर्च कम-से-कम पड़ता है, और एक-एक पैसा मुख्यतः वहीं के लोगों में घूमता रहता है।

"खादी को (१) ग्रामीण लोगों के सुदृढ पूर्व संस्कार, (२) राजाश्रय का अभाव, (३) भयंकर प्रतिस्पर्धा, (४) अर्थशास्त्र विशेषज्ञ कहे जाने वालों के प्रचलित मत और (५) स्वयं खादीधारी लोगों की ओर से सस्ती खादी के लिए उत्तरोत्तर होने वाली मांग, इन सब के बीच में से अपना मार्ग निकालना पड़ता है। इसलिए इस शोक-भूमि के लिए सच्चा अर्थशास्त्र क्या है, ग्रामीण और शहरी लोगों को इस विषय की शिक्षा देना असली महत्त्व का काम है। यह अर्थशास्त्र धर्म-भेद से परे है। गांवों में रहने वाले हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी दरिद्रता और भूख से ओतपोत ग्रस्त हैं। यदि कुछ अन्तर हुआ भी तो वह कम-अधिक तीव्रता का होगा।

"इसलिए मेरा कहना यह है कि एक-एक गज़ का मुकाबिला करने से मिलों के कपडे की अपेक्षा खादी महंगी होगी, लेकिन सब ओर से और ग्रामवासियों की दृष्टि से देखने पर उच्चतम अर्थशास्त्र के आधार पर खादी ही व्यवहारतः अद्वितीय वस्तु है। इस कथन का गहरा परीक्षण करते समय यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि "दूसरे ग्रामोद्योग का भी खादी में ही समावेश होता है।"[१]

चौथा आक्षेप—खादी न पहननेवाले सरकारी नौकर हमेशा यह प्रश्न करते रहते हैं कि हम तो सरकारी नौकर ठहरे, ऐसी दशा में हम खादी कैसे बरत सकते हैं?

वास्तव में देखने पर कांग्रेस के मन्त्रिपद ग्रहण करने के बाद यह प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। बम्बई प्रान्त की कांग्रेस सरकार ने तो इस विषय में सब विभागों के उच्चाधिकारियों और दफ्तरों को लक्ष्य करके एक परिपत्र (सरक्युलर) जारी किया है और उसमें कहा है—

"क्योंकि सरकार देशी उद्योग-धन्धों को—विशेषतः ग्रामोद्योगों को—

१. महात्मा गांधी—हरिजन २० जून १९३६ (महाराष्ट्र खादी पत्रिका, जून १९३६ पृ० २३)

उत्तेजन देने और उनका विकास करने के लिए उत्सुक है, इसलिए सरकारी नौकरों को, उनकी इच्छा होने पर, खादी के कपडे—खादी की टोपी—तक इस्तेमाल करने में न अभी तक कोई रुकावट थी, न अब है।"[1]

इस परिपत्र के कारण सरकारी नौकरों के मार्ग मे खादी पहिनने के सम्बन्ध में किसी तरह की अडचन बाक़ी नहीं रह जाती। सरकारी नौकर अब 'सरकार की ओर से मनाई है' यह कारण बताकर खादी का व्यवहार करना टाल नहीं सकते। यह ठीक है कि इस परिपत्र के कारण सरकारी नौकरों के लिए खादी के इस्तेमाल के सब मार्ग खुल गये है, लेकिन मान लीजिए अगर उसने ऐसा परिपत्र न भी निकाला होता, तो भी इस सम्बन्ध मे हमारे विचार यह है—

सरकारी नौकरों से हमारा नम्रतापूर्वक यह निवेदन है कि आपने सरकार को अपना शरीर, मन और समय बेचा होगा, लेकिन इन सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु आत्मा आपने उसे नहीं बेची है। इस पृथ्वी पर किसी भी व्यक्ति के डर से अपने भाई-बहनों का बनाया हुआ कपडा बरतने से नहीं हिचकिचाना चाहिए। सरकार ने अगर हमारे भाई-बहनों के हाथों तैयार हुआ कपडा पहनने की मनाई की हो तो कहना होगा कि हमारी ग़ुलामी की हद ही हो गई। आज सरकार ने हमारी बहनों का तैयार किया हुआ कपडा पहनने की मनाई की और अगर स्वाभिमान-शून्य होकर उसे स्वीकार कर लिया, तो कल सरकार कदाचित यह भी

१ इस सम्बन्ध मे बम्बई सरकार ने ९ अप्रैल १९३८ को एक विज्ञप्ति—प्रेस नोट—प्रकाशित की थी, वह शब्दश इस प्रकार है—

"The Government of Bombay have issued a circular to all Heads of Departments and offices informing them that, as the Government are anxious to develop and encourage indigenous and particularly cottage industries, there is not, nor there has been, any prohibition against Government servants using khadi cloth for personal apparel, including caps, if they so desire"

कहेगी कि तुम अपनी बहन की बनाई हुई रोटी मत खाओ। तब क्य तुम उस भोजन का तिरस्कार करोगे? ऐसा हुआ तो स्वाभिमान-शून्य पशु का सा जीवन बिताने की अपेक्षा सरकार के इस अन्यायपूर्ण कार्य का विरोध करते हुए प्रत्यक्ष मृत्यु का आलिंगन करने का अवसर आये तो उसमें क्या बुराई है?

हमारा विश्वास है कि कोई भी सच्चा अंग्रेज़ अधिकारी खादी का व्यवहार करने में आपत्ति कर नहीं सकेगा; और अगर आपत्ति की भी तो उससे छाती ठोककर अत्यन्त सरल और स्पष्ट यह प्रश्न किया जाय कि 'आपने अपने शरीर पर कौन से वस्त्र पहन रक्खे हैं? क्या आपके शरीर पर फ्रेञ्च अथवा जर्मन वस्त्र हैं? अगर फ्रेञ्च और जर्मन वस्त्रों के बजाय अंग्रेज़ी वस्त्र ही हों तो उनसे यह स्पष्ट कहा जाय कि अगर आपको इंग्लैण्ड के वस्त्र व्यवहार में लाने में शोभा और अभिमान अनुभव होता है, तो हम अपनी मां-बहनों के कते सूत का कपड़े का इस्तेमाल करते हैं उसमें आपको आपत्ति क्यों होनी चाहिए? सच्चे अंग्रेज अधिकारी को यह मुँहतोड, स्वाभिमानपूर्ण और सजीव वाणी सुनकर सच्चा आनन्द होगा और प्रश्नकर्ता के प्रति तिरस्कार व्यक्त करने के बजाय उलटा वह उसकी सराहना और अभिनन्दन करेगा।

सारांश यह कि क्योंकि सरकारी नौकरों ने सरकार को अपनी आत्मा बेच नहीं दी है, इसलिए उन्हें अपने भाई-बहनों के तैयार किये हुए वस्त्र पहनकर अपनी सजीवता का परिचय देना चाहिए।

पांचवां आक्षेप—खादी के विरुद्ध एक मनोरञ्जक आक्षेप यह भी किया जाता है कि तुम लोग खादी का इतना तूमार बांधते हो, लेकिन यह तो बताओ कि जब इस देश में खादी ही खादी थी, तब उसके होते हुए स्वराज्य क्यों चला गया?

'खादी के होते हुए स्वराज्य क्यों गया?'—इस प्रश्न के पूछने का मतलब 'स्वराज्य होते हुए स्वराज्य क्यों गया?'—यह पूछना है।

स्वराज्य में खादी थी, अर्थात् स्वराज्य के होते हुए स्वराज्य खो बैठने के जो कारण पैदा हो गये थे, वही कारण खादी के होते हुए

स्वराज्य गंवाने मे निमित्त रूप हुए। जिस समय खादी के होते हुए स्वराज्य गया, उस समय खादी के पीछे जो संगठन और अनुशासन था वह नहीं के समान हो गया था। किसी का पापोश किसी के पैर में रह नहीं गया था, राष्ट्र-हित नष्ट हो चुका था और प्रत्येक व्यक्ति अपने नीच स्वार्थ-साधन के पीछे पडा हुआ था। जब हमारे ही लोग ईस्टइण्डिया कम्पनी के नौकर बनकर हमारे जुलाहों को सताने के लिए आगे बढ़े, तभी हमारे कारीगरों का संगठन नष्ट हुआ, विदेशी कपडा हमारे सिर पर सवार हुआ और हम स्वराज्य गंवा बैठे। जिस समय हम स्वाभिमान से प्रेरित होकर सस्ता विदेशी कपडा वापरने का मोह छोड़ देंगे, विदेशी कपडे का पूर्णतः बहिष्कार कर खादी का व्यापक संगठन करेंगे और देश में ६५ करोड रुपये खनखनाने लगेंगे तब स्वराज्य मिलने में देर नहीं लगेगी। खादी मोटी-झोटी होती है, जल्दी फट जाती है आदि आक्षेप आन्दोलन के आरम्भ-समय के है। अब तो खादी में सब दृष्टियों से काफ़ी उन्नति हो गई है।[1] अब तो वह इतनी सुन्दर, मुलायम, सफ़ाईदार और टिकाऊ पैदा होने लगी है कि ऐश्वर्यवान लखपती तक को वह शोभा दे सकती है। ऐसी दशा में उस सम्बन्ध में विचार करने जैसी कोई बात बाकी नहीं रह जाती। क्षण भर के लिए अगर हम यह मान कर भी चले कि खादी मोटी-झोटी अवश्य है, लेकिन गुलामी उसकी अपेक्षा भी अधिक खुरदरी और कंटीली है। ऐसी दशा में अगर उस गुलामी को नष्ट करना हो तो कुछ दिनों आपको यह मोटी-झोटी खादी बापरनी ही चाहिए। इसके सिवा और कोई गति नहीं है। स्वराज्य-रूपी गुलाब का फूल हस्तगत करना हो तो खादी-रूपी कांटे शरीर में चुभने ही चाहिएं।

१ 'अखिल भारतीय खादी कार्य' शीर्षक अध्याय देखिए।

: १३ :

खादी-उद्योग तथा उसके द्वारा मिलनेवाली शिक्षा

हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों का राज्य स्थापित हुए करीब १५० वर्ष होगए। यह सरकार स्वयं अपने को प्रजा का 'मा-बाप' कहलवाती है, लेकिन उसके १५० वर्ष के शासन-कार्य पर नज़र डालने पर किसी भी निष्पक्ष मनुष्य को यह कहना ही पड़ेगा कि उसकी ऐसी कोई कारगुज़ारी नहीं है, जिससे वह अपने को ऐसा कह सके। गत १५० वर्षों मे हिन्दुस्तान की आर्थिक, औद्योगिक, सामाजिक, राजनैतिक और अधिक क्या शैक्षणिक दृष्टि तक से अत्यन्त अवनति हुई है !

गत १५० वर्षों मे अंग्रेज़ सरकार ने हिन्दुस्तान के सिर्फ़ दस फ़ीसदी लोगों को ही शिक्षा दी है—बाक़ी के ६० फ़ीसदी लोग अशिक्षित ही रहे है। फिर, इन १० फ़ीसदी को जो शिक्षा दी गई है, क्या वह भी टिकाऊ है ? इन १० मे से ७ आदमी ज्यों-त्यों करके शुरू की चार कक्षाओं तक ही पढे-लिखे होते है, जिससे कुछ वर्षों बाद वे लोग जो कुछ भी पढा लिखा होता है वह सब भूल जाते है। उनकी शिक्षा पर किया गया खर्च इस प्रकार व्यर्थ ही ठहरता है।

बाक़ी के दो-तीन फ़ीसदी लोगों के उच्चशिक्षा लेने की जो बात हम कहते हैं उनका भी इस शिक्षा से क्या ख़ास लाभ हुआ है ? उसके द्वारा उनकी बुद्धि के दो अंगो—तर्क और स्मरण-शक्ति—का विकास हुआ होगा, लेकिन बुद्धि के इन दो अंगो के विकास का ही अर्थ वास्तविक शिक्षा नहो है। महात्माजी की व्याख्या के अनुसार हाथ, पांव, कान, नेत्र आदि शरीर के अवयवों और बुद्धि और हृदय का सर्वांगीण विकास करने वाली शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है।

हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों द्वारा प्रचलित शिक्षा-पद्धति, (१) व्यक्ति,

(२) समाज (३) राष्ट्र, (४) संस्कृति और (५) हृदय के विकास आदि सब दृष्टियों से निकम्मी सिद्ध हुई है। इस शिक्षा के कारण जिस तरह मनुष्य में 'मैं जहाँ लात मारूंगा वहीं पानी निकल आयगा' ऐसा आत्म-विश्वास पैदा नही हुआ, उसी तरह उसमे यह बोध उत्पन्न नहीं होता कि मैं समस्त समाज की एक इकाई हूँ, उसमें पडोस की गली में आग लगने पर बालटी लेकर उसे बुझाने जाने की बुद्धि पैदा नहीं होती। गुलामी के कारण चारों ओर से देश की प्रगति रुकी हुई है, गुलामी की जञ्जीर तोडकर स्वतन्त्र हुए बिना अपनी सर्वांगीण प्रगति और अपने सद्गुणों का परमोच्च विकास हो सकना सम्भव नही, वर्तमान शिक्षा-पद्धति से हृदय मे इन बातों के लिए लगातार तलमली पैदा होकर देश के लिए मुझे अपने-आपको खपा देना चाहिए, कष्ट सहन करना चाहिए और प्रसंग उपस्थित होने पर मुझे मर तक जाना चाहिए, यह भावना पैदा नहीं होती।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु । सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु। मा कश्चिद् दुखमाप्नुयात्॥

अपनी इस संस्कृति के प्रति आदर न रख कर 'विदेशी जो कुछ है वह सब अच्छा है' यही सिखाने वाली शिक्षा हमे मिली है। इसके सिवा मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे जाना कहाँ है और इस जन्म मे मेरा कर्तव्य क्या है, इन बातों के ज्ञान से हृदय का विकास होता है; लेकिन वह शिक्षा मुझे मिलती ही नहीं है।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति की आलोचना करनेवालों पर यह आक्षेप किया जाता है कि अंग्रेजों की प्रचलित की हुई शिक्षण-पद्धति इतनी दूषित है तो उससे लो० तिलक, विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बोस, आदि महान् पुरुषों का निर्माण किस तरह हुआ? संक्षेप में उसका उत्तर यही है कि

(१) इन महान् पुरुषों के निर्माण का श्रेय इस शिक्षा-पद्धति को नहीं, उनके प्राकृतिक गुणों और आनुवांशिक संस्कारो को ही देना चाहिए। वे जिस किसी भी परिस्थिति में रहते अपनी विशेषता की छाप बिठाकर चमके विना न रहते।

(२) इसके सिवा, (१) डेढ सौ वर्ष, (२) हिन्दुस्तान की आबादी

और (३) शिक्षा-पद्धति पर हुआ सारा खर्च इन सब बातों को ध्यान मे रखने पर लो० तिलक अथवा श्री जगदीशचन्द्र बोस जैसे अंगुली पर गिने जाने जितने ही लोगो का निर्माण होना वर्तमान शिक्षा-पद्धति के लिए उत्तमता का प्रमाण-पत्र न होकर उसके विरुद्ध निन्दा-व्यञ्जक प्रस्ताव ही ठहरता है। अगर यह शिक्षा-पद्धति हितकर होती तो डेढ़-सौ वर्ष की इस अवधि मे अनेक तिलक अथवा बोस पैदा हुए होते। लेकिन ऐसा हुआ नहीं,—अतः यह दोष शिक्षा-पद्धति का ही है. इस बात को कोई भी तटस्थ व्यक्ति स्वीकार किये बिना न रहेगा।

अंग्रेजों की जारी की हुई शिक्षा-पद्धति को सदोष जानकर राष्ट्रीय नेताओं ने समय-समय पर उसके सुधार का प्रयत्न किया है। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के जो प्रयत्न किये उनसे राष्ट्र का क़दम आगे ही बढा है। उनके इन प्रयत्नों के तीन विभाग किये जा सकते हैं—

पहला प्रयत्न सन् १९०५ मे प्रो० बीजापुरकर और लो० तिलक ने किया। इन लोगों ने तत्कालीन शिक्षा-पद्धति में की हानिकारक बातों को छांट कर उन्हें दूर करने का निश्चय किया और तदनुसार केवल उतना ही सुधार किया। इसका अर्थ यह हुआ कि उन्होंने पुरानी पद्धति को ठीक कर नवीन शिक्षण-पद्धति जारी की।

उसके बाद सन् १९२० मे असहयोग का आन्दोलन हुआ। उस समय कुछ राष्ट्रीय संस्थायें स्थापित हुईं। इन संस्थाओ मे हमे अपने देश और अपनी संस्कृति के प्रति आदर प्रदर्शित करना सिखाया गया। गत् १८ वर्षों मे हम इतना ही काम कर सके हैं।

परन्तु सन् १९३७ मे कांग्रेस ने ७ प्रान्तों में शासन सूत्र अपने हाथ में लिया, अतः हमने इससे भी आगे बढ कर शिक्षा के सम्बन्ध में तीसरा महत्वपूर्ण क़दम आगे बढाने का निश्चय किया। यह क़दम था उद्योग के साथ ज्ञान को गूँथ कर लोगों को स्वावलम्बी और सुसंगठित बनाना।

राष्ट्रीय शिक्षण का यह तीसरा और सब से अधिक महत्व का क़दम है। अंग्रेज़ सरकार की शिक्षण-पद्धति केवल 'तर्क और विचार शक्ति' का ही विकास करती है। इसलिए उसे 'केवल पद्धति' नाम देना ठीक होगा।

इस पद्धति से विद्यार्थियों को अव्यक्त शिक्षा मिलने के कारण वे वास्तविक ज्ञान ग्रहण कर नहीं सकते। जो कुछ भी अक्षरीय ज्ञान मिलेगा वह निर्वीर्य ही रहेगा। इस ज्ञान से उनके हाथ से कभी भी कोई पराक्रम हो नहीं सकेगा। इस ज्ञान का देनेवाला शिक्षक पश्चिमवासियों के विचार केवल उधार ले लेता है और वही विद्यार्थियों को देता है। इस शिक्षक का काम निरे 'पोस्टमेन' अथवा 'मुकादम' के समान है। इस शिक्षा से स्वयं शिक्षकों के जीवन में कुछ चैतन्य—कुछ तेज—उत्पन्न ही नहीं हुआ। ऐसी दशा में वह विद्यार्थियों मे कहाँ से पैदा होगा। जिस तरह अनाज नापने की पायली एक तरफ़ से अनाज भर कर दूसरी ओर खाली करती है और स्वयं निर्लिप्त ही रहती है, वही हाल इस 'केवल पद्धति' का हुआ है।

अब हम यह देखेंगे कि अगर कुछ घण्टे बौद्धिक शिक्षा और उसी के साथ जोड़ कर कुछ घण्टे औद्योगिक शिक्षा दी जाय तो क्या परिणाम होगा। इस तरह बौद्धिक शिक्षा का समर्थन करने वाले और औद्योगिक शिक्षा की महत्ता का बखान करनेवाले दोनों ही तरह के लोगों को सन्तुष्ट करने के प्रयत्न मे दोनों ही असन्तुष्ट रहेंगे! उदाहरणार्थ, बौद्धिक शिक्षा के साथ केवल बढ़ईगिरी के, रंदा किस तरह चलाया जाय, बसूला किस तरह काम में लाया जाय, करवत किस तरह चलाई जाय, आदि की शिक्षा दी गई तो उससे विद्यार्थी स्वाश्रयी, स्वावलम्बी और सतेज नहीं निकलता। जिस समय देश मे 'औद्योगिक शिक्षा' का वावेला मचा था, उस समय औद्योगिक शिक्षा की ओर झुकाव रखने वाले कुछ स्कूल (Industrial bias Schools) खुले थे। लेकिन उनके कारण विद्यार्थियों की 'त्रिशंकु' की-सी स्थिति हो गई। उन्हें बौद्धिक शिक्षा तो पूरी मिली ही नहीं और औद्योगिक शिक्षा जो कुछ भी मिली वह भी मामूली। गडूलना लेकर चलने वाले बालकों की-सी विद्यार्थियों की स्थिति होगई। उसके कारण उनमे ज़ोर से भागने की शक्ति पैदा नहीं हुई। हम इस पद्धति को 'समुच्चय पद्धति' के नाम से सम्बोधित करेंगे।

अब उद्योग द्वारा शिक्षा देने वाली वास्तविक महत्व की तीसरी पद्धति

की ओर नज़र डालना आवश्यक है। इस पद्धति मे उद्योग और शिक्षा में अद्वैत भाव रहेगा—उद्योग के द्वारा ज्ञान सम्वर्धन की व्यवस्था रहेगी। इस पद्धति को 'समवाय पद्धति' नाम देना उपयुक्त होगा। अब यह प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि इस 'समुच्चय' और 'समवाय' पद्धति में अन्तर क्या है ?

समुच्चय पद्धति के कारण विद्यार्थियों की स्थिति एक चक्की पर दूसरी चक्की अथवा एक पीपे पर दूसरा पीपा रखने जैसी हो जाती है। जिस तरह एक पीपा दूसरे पीपे से जुड नहीं जाता, उसी तरह बौद्धिक ज्ञान औद्योगिक ज्ञान के साथ समरस नहीं होता। लेकिन 'समवाय' पद्धति के कारण बौद्धिक और औद्योगिक ज्ञान अनजाने ही एक दूसरे-से समरस होते हैं, एकजीव होते हैं, उन दोनों का अद्वैत होता है। इस पद्धति द्वारा व्यक्त और अप्रत्यक्ष ज्ञान होता है, इसलिए जीवन पर उसकी स्थायी छाप पडती है। इस पद्धति द्वारा दी जानेवाली शिक्षा व्यक्त और प्रत्यक्ष स्वरूप की होती है, इसलिए आधिभौतिक शास्त्र के अध्ययन से बुद्धि मे जो विश्लेपणात्मक शक्ति पैदा होती है वह ऐसे ज्ञान से उत्पन्न होगी। इससे विद्यार्थियो की जिज्ञासा के विकास के लिए काफ़ी मौका मिलेगा। जो ज्ञान प्राप्त होगा वह बुद्धि पर अधिक दबाव न पडते हुए अनजान में ही मिलेगा।

यह शिक्षा-पद्धति अबतक के शिक्षण-विषयक अनुभव का अन्तिम फल है। देश, काल और परिस्थति को ध्यान मे रखकर इस शिक्षण-पद्धति की योजना की गई है। यह पद्धति जीवन की और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली है। इसलिए इस शिक्षण के द्वारा ही हमारा जीवन विकसित होगा। यह शिक्षण-पद्धति जीवन-निष्ठ होगी। इस शिक्षण-पद्धति मे कौन-कौन से विषय होने चाहिएं और कौन-कौन-सी भाषा सिखाई जानी चाहिए, इसका निर्णय जीवन-शास्त्री करेंगे। 'हमें सम्पूर्ण और प्रामाणिक जीवन बिताना है,' इस बात का विचार करके यह शिक्षण-पद्धति निश्चित की गई है। हमें जीवित रहना है, इसलिए जीवित रहने के मार्ग मे जितने विषय आते हैं पहले हमें उनका अध्ययन करना है।

जिस शिक्षण द्वारा मेरा जीवन पुष्ट नहीं होता, वह शिक्षा ही नही है, साथ ही वह जीवन भी व्यर्थ है। इस शिक्षण-पद्धति द्वारा 'जीवन और शिक्षण' और 'धर्म और जीवन' एक-दूसरे मे बेमालूम तौर पर ग्रथित होनेवाले है। इस शिक्षण-पद्धति से विद्यार्थी पहले हाथ और अन्य इन्द्रियों का उपयोग करना सीखेंगे और बाद को उनके मन और हृदय का विकास होगा। इसी तरह उसकी दृष्टि पहले स्कूल की ओर, फिर समाज की ओर और बाद को ईश्वर की ओर प्रेरित होगी। संक्षेप मे, यह योजना इस प्रकार की है कि इसमे (१) उद्योग, (२) अपने आस-पास की कुदरती हालत और (३) सामाजिक स्थिति इन तीनों के द्वारा उसे शिक्षा मिलेगी।

(१) खेती, (२) बढ़ईगिरी और (३) खादी मुख्यतः ये तीन धन्धे ऐसे है जो उपरोक्त सब प्रकार की कसौटियों पर खरे उतर सकते हैं।

शिक्षण की व्यापकता खेती मे अधिक है, क्योंकि इस धन्धे की स्थिति ऐसी है कि विद्यार्थी को ऋतु, और मौसम आदि की जानकारी कराते समय सर्वसामान्य विज्ञान का भी परिचय हो जायगा; लेकिन खेती की शिक्षा मे पहले पॉच वर्ष मे विद्यार्थी खेती से कोई कही जा सकने जैसी आमदनी निकाल नहीं सकेगा; वह सिर्फ थोडा शाक-पात पैदा कर सकेगा और ज़मीन की पैराई और पौधों की बाढ आदि से सम्बन्धित कुछ प्राथमिक तत्त्व समझ लेगा। उत्पादक खेती की शिक्षा छठे वर्ष से ही शुरू करनी होगी।[१]

बढ़ईगिरी—सुतारी—के सम्बन्ध मे भी शुरू के कुछ वर्षों मे विद्यार्थी जो माल तैयार करेंगे वह उतना ऊबड-खाबड़ होगा कि उसकी बिक्री होना कठिन होगा।

छोटे बच्चों के हाथों ऐसा माल, जिसकी बिक्री अच्छी हो सके, तैयार कराने की दृष्टि से खादी का उद्योग जितना सुरक्षित और सुलभ ठहरेगा उतना सुरक्षित, सुलभ और उतने व्यापक परिमाण मे किया जा सके ऐसा और कोई दूसरा उद्योग बता सकना कठिन है, क्योंकि उसमे

१ 'वर्धा शिक्षण-पद्धति का पाठ्यक्रम' पृष्ठ ८५

सात वर्ष का बालक अगर मोटे-से-मोटा सूत भी कातेगा तो उसकी भी निवार आदि बुनवाकर उसे बेचना मुश्किल नहीं होगा। इसके विपरीत विद्यार्थियों की अंगुलियों का कौशल अधिकाधिक बढ़ता दिखाई देगा। इस मुद्दे को ध्यान में रख कर देखा जाय तो कृषि के बाद खादी का उद्योग ही अधिक-से-अधिक व्यापक ठहरेगा।

हिन्दुस्तान आज कपड़े के सम्बन्ध में परावलम्बी है, इसलिए इस उद्योग के द्वारा शिक्षा देने में आर्थिक प्रतिस्पर्धा का भी प्रश्न खड़ा नहीं होता।

अवश्य ही खेती और बढ़ईगिरी—सुतारी—के ज़रिये भी शिक्षा देना ज़रूरी है और इसलिए उनके लिए भी कुछ स्कूलों की ज़रूरत होगी ही; लेकिन हमारी दृष्टि में अगर कोई उद्योग ऐसा है जो अधिकांश गाँवों के स्कूलों में बेखटके शुरू किया जा सके, तो वह खादी का उद्योग ही है। इस उद्योग में व्यापकता और विविधिता होने के कारण उसमें से ज्ञान की भिन्न-भिन्न शाखाओं में प्रवेश करने के लिए अनेक मार्ग मिल जाते हैं।

अब यह बताने के पहले कि उद्योग के साथ ज्ञान का गुम्फन किस प्रकार किया गया है, यह बता देना चाहिए कि—

(१) इस विषय की व्यापकता के मान से यह विवेचन संक्षिप्त ही रहेगा, क्योंकि विद्यार्थी सात वर्ष में जो शिक्षा प्राप्त करेगा उसका पूरा-पूरा रूप इस पुस्तक के दो-तीन पृष्ठों में किस तरह दिया जा सकेगा।

(२) नीचे जिन विषयों का दिग्दर्शन कराया गया है वह केवल उदाहरण स्वरूप ही है। उसपर से केवल विषय की व्यापकता की कल्पना और शिक्षा की दिशा मालूम हो सकेगी।

(३) इस शिक्षा-पद्धति के द्वारा समय-पत्रक (टाइमटेबल) के निश्चित ढांचे के मुताबिक अर्थात् 'भूगोल' का विषय समाप्त होते ही 'गणित' और 'गणित' के समाप्त होते ही 'व्याकरण' इस प्रकार मशीन की तरह शिक्षा नहीं मिलेगी। इस पद्धति के द्वारा तो प्रवाह, क्रम के अनुसार जैसे-जैसे विषय आते जायँगे और विद्यार्थी जैसे-जैसे प्रश्न पूछता जायगा उसी के अनुसार उद्योग के साथ-साथ ज्ञान की गूथन गूथी जायगी।

(४) देश में यह शिक्षा पद्धति नई-नई ही प्रचलित होने जा रही है। अभी वह प्रयोगावस्था में होगी, आगे चलकर उसके सम्बन्ध में जैसा-जैसा अनुभव होता जायगा, उसके अनुसार उसमें परिवर्तन किया जाता रहेगा। जिस तरह महात्माजी की अभी तक चलाई हुई प्रत्येक प्रवृत्ति को उपहास, तिरस्कार, उदासीनता, पसन्दगी और स्वीकृति आदि स्थितियों के बीच होकर गुज़रना पड़ा है, वही हाल इस शिक्षा-पद्धति का भी होने वाला है।

(५) इसके सिवा विद्यार्थियों में जिज्ञासा शोधक-बुद्धि, कष्ट-सहन करने का साहस, स्वावलम्बन की वृत्ति तथा स्वदेशाभिमान आदि सद्‌गुणों का विकास किस प्रकार होगा, नीचे के संक्षिप्त विवेचन से इन बातों की सम्यक कल्पना बहुत अधिक नहीं हो सकी। उसके लिए विद्यार्थियों को उस शिक्षा-क्रम में होकर गुज़रना चाहिए। शिक्षकों के चरित्र-बल पर इस शिक्षा की सफलता निर्भर रहेगी। शिक्षकों का चरित्र उज्ज्वल होने पर ही जीवन के इतिकर्तव्य आदि विषयों का ज्ञान हो सकता है।

इतनी भूमिका के बाद अब शिक्षण-पद्धति पर आइए।

आरम्भ में यह कहना होगा कि अंग्रेज़ों ने जो शिक्षा-पद्धति प्रचलित की उसका उपयोग केवल शहरों के भद्र लोगों में ही हुआ। इसका मतलब यह हुआ कि यह पद्धति शहरी ठाठ-बाट की है। उद्योग द्वारा शिक्षा देने की यह पद्धति देश के ९० फ़ीसदी अपठित और गाँव में रहनेवाले लोगों के ही लिए है। देश, काल और परिस्थिति को ध्यान में रखकर सर्वसाधारण जनता के कल्याण की दृष्टि से इस पद्धति की योजना की गई है।

इसके सिवा एक और महत्वपूर्ण मुद्दे का उल्लेख करना आवश्यक है। यह बात निर्विवाद है कि विद्यार्थी को पूरे सात वर्ष खादी के उद्योग द्वारा शिक्षा दी जाने से उसे खेत से कपास की सुन्दर बोंडी से लेकर उसका वस्त्र तैयार होने तक की विविध प्रकार की क्रिया-उपक्रियाओं की सांगोपांग शिक्षा मिलेगी और वह स्वयं अपने पैरों पर खड़ा होकर अपना निर्वाह चलाने में समर्थ होगा। इस प्रकार पेट का सवाल होने के

भिन्न-भिन्न विषयों का विविध ज्ञान उसे मिलेगा। उनमे के कुछ विषयों का साधारण दिग्दर्शन नीचे किया जाता है। यहाँ पर खादी की विभिन्न क्रिया-उपक्रियाओ की सविस्तर जानकारी देना अप्रासंगिक होने के कारण उसकी चर्चा नही की गई।

खादी के उद्योग द्वारा शिक्षा देते हुए (१) खेती, (२) यन्त्र-शास्त्र, (३) इतिहास, (४) भूगोल, (५) समाज-शास्त्र, (६) अर्थ-शास्त्र, (७) गणित, (८) भाषा, (९) चित्र-कला. और (१०) विज्ञान-शास्त्र आदि विषयो का विवेचन करना आवश्यक है।

(१) खेती—खेत से कपास चुनते समय उसमे कीटी, पत्ती, कचरा आदि बिल्कुल न रहने पावे इस बात की पूरी सावधानी रक्खी जाने पर ही लोढने, पिंजाई और कताई आदि सब क्रियायें सुगम होती है, कपास की जडिया, रोजिया, एन, आर, वनिला, कम्बोडिया, धारवाडी, भडौच अथवा नवसारी आदि अनेक जातियाँ होती है। कौनसी कपास के लिए किस तरह की ज़मीन की आवश्यकता है, वह कौन सी ऋतु में होती है; उसकी बुवाई किस तरह की जाती है; निंदाई-कटाई किस समय होती है; एक एकड जमीन मे औसत कितने बीज की ज़रूरत होती है; कितने दिनों दिनों मे वह पककर तैयार होती है; उसी तरह धागे की दृष्टि से रुई के दो प्रकार होते हैः एक छोटे और दूसरे लम्बे धागे की। इसके सिवा देव-कपास के पेड होते हैं। उसके भिन्न-भिन्न प्रकार कौन से होते हैं; उसकी खेती किस तरह की जाती है, किस ऋतु मे की जाती है; देव-कपास के एक पेड पर से वर्ष के अन्त मे कितनी कपास मिलती है, कपास में कौनसा कीड़ा लगता है, कब लगता है और उसको निर्मूल किस तरह किया जाय आदि खेती-सम्बन्धी विविध प्रकार की जानकारी बताई जायगी।

(२) यन्त्रशास्त्र (Mechanics)—कच्ची कपास या रुई से पूरा कपडा बुने जाने तक लोढना, धुनकी, बारडोली चर्खा, यरवदा चक्र, तकली, तनसाल, खड्डी, आदि छोटे-मोटे औज़ारो का उपयोग करना पडता है। इन सब औजारों के तैयार करने मे उनमे उनके छोटे-मोटे अंगो-उपांगों

की अत्यन्त कौशलपूर्वक योजना की गई होती है। 'मगन' चरखे और करघे में पावदी होती है, पुराने लोढने में पच्चर लगाने की योजना होती है। मोठिया मे गिर्री ठीक बीच मे घूमनी चाहिए; लोढने और चर्खे मे घर्षण नहीं, इसलिए बॉल-बे-अरिंग की योजना की जाती है। लोढने और सावली-चक्र मे 'गतिचक्र' लगा देने से कातने की गति मे काफ़ी अन्तर पड जाता है। यरवदा चक्र के दो चक्रों मे विशेष प्रकार का अन्तर रखना आवश्यक है। धुनकी का मध्यबिन्दु साधने के लिए पंखे की योजना की हुई रहती है। तकली का तकुआ भारी अथवा हलका हुआ तो कातने पर उसके जुदे-जुदे परिणाम होंगे। तकली की चकई गोल और बीच की डण्डी ठीक मध्य पर ही होनी चाहिए आदि यन्त्र-शास्त्र की जानकारी इस खूबी के साथ दी जा सकेगी कि जिससे विद्यार्थी की जिज्ञासा और शोधक—आविष्कारक—बुद्धि¹ जाग्रत होगी।

(२ से ६) इतिहास, भूगोल, समाज-शास्त्र और अर्थ-शास्त्र—ये सब विषय परस्पर एक-दूसरे से अत्यन्त सलग्न है, इसलिए उनका विचार भी सामूहिक रूप से ही करना ज़रूरी है।

१ सुप्रसिद्ध लेखक प्रिन्स क्रोपाटकिन का मत है कि "बडे-बडे विज्ञान-शास्त्री तक जो आविष्कार नही कर सके वह आविष्कार हस्त-व्यवसाय करनेवालो ने किये है।" उन्होने अपना यह मत 'Fields, Factories and Workshops" (इसका अनुवाद शीघ्र ही मण्डल से प्रकाशित होगा।) नामक अपनी पुस्तक मे व्यक्त किया है। तत्सम्बन्धी उद्धरण का यहाँ देना उचित प्रतीत होने के कारण वह नीचे दिया जाता है—

"विशेषत गत शताब्दी के अन्त और इस शताब्दी के आरम्भ में पृथ्वी का प्रत्यक्ष रूप बदल डालने जैसे जो बडे-बडे आविष्कार किये गये है, वह हस्तव्यवसाय—दस्तकारी—करनेवाले मजदूरो ने ही किये हैं। इसके विपरीत विज्ञान-शास्त्रज्ञो की आविष्कार करने की शक्ति घटती जा रही है। इस अवधि मे विज्ञान-शास्त्रज्ञो ने कोई भी नवीन आविष्कार नही किये अथवा बहुत ही कम किये। भाप के अजन अथवा रेलवे-अजन के मुख्य तत्व, आग-बोट, टेलीफोन, फोटोग्राफ बुनाई के

अत्यन्त प्राचीन काल में, जिस समय खादी नही थी, उस समय लोग वृक्षों के पत्ते और छाल से अपने शरीर ढकते थे। उसके बाद क्रमशः ऊनी, सूती और रेशमी कपडे बरतने की प्रथा पडी। बौद्ध और रामायण कालीन और मुहम्मद पैगम्बर की पोशाक तथा इजिप्शियन 'ममियो' के शरीर पर की हिन्दुस्तानी बारीक खादी आदि जुदा-जुदा समयों की पोशाकों की जानकारी देने के साथ-ही-साथ तत्कालीन समाज की भी जानकारी दी जा सकेगी।

यत्र, किनारी बुनने की मशीने, दीपगृह, सीमेन्ट की सडके और सादी और रगीन फोटोग्राफी, एव इनसे थोडे महत्व की हजारो वस्तुओ का आविष्कार विज्ञान-शास्त्रज्ञो ने नही किया।... अगर स्माइल्स के शब्दो मे कहा जाय तो जिन लोगो को स्कूली शिक्षा कदाचित ही मिली है, जिन्होने धनवानो के चरणो मे रह कर बहुत ही कम ज्ञान प्राप्त किया है, और जिन्होने अत्यन्त प्राचीन औजारो से अपने प्रयोग किये है। उदाहरणार्थ, वकील के एक क्लर्क स्मिटन, औजार बनानेवाले वॉट, ब्रेक्स-मेनी का काम करनेवाले स्टीफन्सन, मिल चलाने वाले रेनी, पत्थर फोडने का काम करनेवाले टेलफर्ड और सैकडो अप्रसिद्ध आविष्कर्ताओ ने वास्तविक आधुनिक सस्कृति का निर्माण किया है। यह ठीक है कि रसायन शास्त्र जितने को अपवादरूप छोड़ देने पर ज्ञान और प्रयोग के सब साधन विज्ञान-शास्त्रज्ञो ने ही जुटाये है। लेकिन आज प्रकृति की शक्ति का उपयोग और नियन्त्रण करने वाले बहुत से औजार, यन्त्र और अपने आप चलनेवाली मशीने दिखाई देती है, उनमे एक का भी आविष्कार विज्ञानशास्त्रज्ञो ने नही किया है। आंखो मेंच ढने जैसी यह वस्तु-स्थिति है, लेकिन इसका स्पष्टीकरण सरल है। जिन बातो का विज्ञानशास्त्रज्ञो को पता तक नही था ऐसी विशेष बातें अनेक वॉट और स्टीफन्सनो को मालूम थी। उन्हे अपने हाथ का उपयोग मालूम था, उन्हे आसपास की स्थिति ने उत्तेजन दिया। उन्हे यन्त्र, यन्त्रो के मुख्यतत्त्व और उनके प्रयोग की जानकारी थी। उनके आसपास कारखाने और विशाल इमारतो के निर्माण का वातावरण था।

हिन्दुस्तान मे मलमल और रेशमी वस्त्र तथा ऊनी तथा ज़री के शाल आदि उत्कृष्ट माल और कालीमिरच, दालचीन, जावित्री, इलायची आदि मसाले की चीज़ें भारी तादाद में मिलती थीं, इसलिए डच, फ्रेंच और अंग्रेज़ लोग इनके व्यापार के लिए हिन्दुस्तान आये। हिन्दुस्तान की खोज करने के लिए निकले हुए कोलम्बस ने अमेरिका खण्ड की खोज की। हिन्दुस्तान का माल खुश्की और समुद्री दोनों ही मार्गों से जाता था। यहाँ का कपडा एशिया खण्ड के पश्चिम भाग, सीरिया, बेबीलोन, ईरान, चीन, जावा, पेगू, मलाया, ग्रीस, रोम और मिस्र आदि देशों को जाता था। हिन्दुस्तान के जिन बन्दरगाहों के ज़रिये यह माल बाहर जाता था, वह थे सिन्धु नदी के मुहाने पर स्थित बारबरिकान खम्भायत की खाडी, उज्जैन, पठैन, देवगिरी, सूरत, नवसारी, मछली-पट्टम, कावेरीपट्टम, और कन्याकुमारी। इस प्रकार विद्यार्थियों को भूगोल की जानकारी दी जा सकेगी।

इस जानकारी के देते समय ही विद्यार्थियों को यह ऐतिहासिक जानकारी भी दी जायगी कि उपरोक्त सारा व्यापार हिन्दुस्तान मे बने हुए जहाज़ों के जरिये ही होता था। जहाज़ो का यह धन्धा सन् १८१८ तक अच्छी तरह चलता था, लेकिन कपडे के धन्धे की तरह अंग्रेज़ों ने इसे भी चौपट कर दिया।

इसी तरह इस पुस्तक के तीसरे अध्याय मे वर्णित यह ऐतिहासिक जानकारी भी कराई जा सकेगी कि सत्रहवीं सदी मे ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ने हिन्दुस्तान में अपना अड्डा जमाया। उस समय हिन्दुस्तान का कपडा इतना उत्कृष्ट तैयार होता था कि इंग्लैंड के राजा-रानी और अमीर-उमराव वडे चाव से उसे व्यवहार में लाते थे। यह देखकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी हिन्दुस्तान से करोड़ों रुपयों का माल विलायत भेज कर करोडों रुपये का मुनाफा कमाने लगी। इंग्लैण्ड मे हिन्दुस्तान के माल की खपत होने के कारण वहां के व्यापार पर उसका बुरा असर पडा! जब यह बात वहां के राजनीतिज्ञों के ध्यान मे आई तो उन्होने पार्लमेण्ट से कानून पास करवाकर हिन्दुस्तान के माल पर ज़बरदस्त ज़कात लगवाई!

(अपने यहाँ स्वराज्य होने की हालत में राष्ट्र अपने व्यापार की रक्षा के लिए क्या कर सकता है, इसका यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है ।) कम्पनी के लार्ड क्लाइव आदि अधिकारियों ने बड़े-बड़े नवाबो को एक-दूसरे से लड़ने में मदद देकर उनसे खूब पैसा ऐंठा और इस तरह यहाँ की सम्पत्ति खींच कर विलायत ले गये । उसी पैसे के बल पर विलायत में मिलें खड़ी की गई ! कम्पनी ने हिन्दुस्तानी कारीगरो से कपड़ों के उत्कृष्ट नमूने लेकर उनके आधार पर विलायती मिलों में वैसा ही कपड़ा तैयार करवाने का सपाटा चलाया । कम्पनी के नौकरो ने हिन्दुस्तानी कारीगरो पर, उनसे उक्त प्रकार का उत्कृष्ट माल तैयार करवाने के लिए तरह-तरह के जुल्म और अत्याचार किए, जिससे तंग आकर कारीगरो ने अपने अंगूठे तक काट लिए ! आगे चल कर इसका नतीजा यह हुआ कि जिस हिन्दुस्तान से करोड़ो रुपयो का माल विलायत को जाता था, उसी हिन्दुस्तान में उलटे विलायत से करोडो रुपयों का कपड़ा आने लगा और इस तरह हिन्दुस्तान का कपड़े का व्यापार सर्वथा चौपट होगया ।

कपड़े के धन्धे के डूबने के कारण दूसरे छोटे-मोटे धन्धे भी मौत के मुँह में जाने लगे । कपड़े के व्यवसाय के चौपट होने से लोढ़ने वाले, पिंजारे, कतवैये, जुलाहे, रगरेज, छपाई का काम करने वाले, छीपे, धोबी, बढ़ई, लुहार आदि सब की जीविका का आधार नष्ट होगया । ये सब लोग भूखों मरते देश छोड़ने लगे और अब उन्होंने खेती का आश्रय लिया है ! इस तरह बेकार हुए सभी लोगों के खेती पर टूट पड़ने के कारण हरेक व्यक्ति के हिस्से में करीब एक एकड़ ज़मीन आई । हिन्दुस्तान की ऐसी दीन-हीन परिस्थिति में महात्माजी ने इन सब लोगों को काम में लगा कर उनके पेट भरने की सुविधा करने की दृष्टि से 'खादी' और 'ग्रामोद्योग' की प्रवृत्ति 'अखिल भारतीय चरखा संघ' और 'ग्रामोद्योग संघ' नाम की दो जबरदस्त संस्थायें स्थापित की है । इन संस्थाओं के स्थापित होने से बेकारों को काम मिलकर उनकी बेकार जाती हुई प्रचण्ड शक्ति का उपयोग होने लगा है । ऐसी स्थिति में 'स्वदेशी धर्म' का रहस्य जान कर 'खादी' और ग्रामोद्योग की वस्तुओं का व्यवहार करना अपना

कर्त्तव्य है। इस अवस्था में खादी और 'ग्रामोद्योग' की वस्तुयें अगर महंगी पड़ती हों तो भी देश के आत्यन्तिक कल्याण की दृष्टि से वही खरीदना इष्ट है।[१] ऐसे समय मे पश्चिमीय अर्थ-शास्त्र का यह सिद्धांत कि 'बाज़ार मे जो सस्ते-से-सस्ता और सुघड माल हो वही लिया जाय' भारतवासियों के लिए विनाशक सिद्ध होगा, आदि बातें विद्यार्थियों को समझा कर कही जाने से उनका 'स्वदेशाभिमान' जाग्रत किया जा सकेगा और देश, काल और परिस्थिति के अनुसार आचरण करना किस तरह आवश्यक है, इसकी छाप उनके मन पर अच्छी तरह बिठाई जा सकेगी।

(७) गणित—अब हम यह देखेंगे कि खादी के उद्योग द्वारा गणित की शिक्षा किस तरह दी जा सकेगी। चरखे अथवा तकली पर सूत कातने के बाद उसे फालके या अटेरन पर उतारते समय उसके तार गिनने के लिए कहना। पूनी का वजन करते समय माशा, तोला, छटांक आदि भिन्न-भिन्न तोल या माप का नाम बताना। कपास को लोढने, रुई के पींजने और कातने आदि हरेक बात मे छीज कितनी बैठी यह नोट करना। हर रोज रुई कितनी ली गई, उसका सूत कितना निकला, खादी कितनी बुनी गई और कितनी बिकी आदि बातों का हिसाब रखना। सूत का नम्बर निकालना और उस नम्बर के हिसाब से कतवैयों को मज़दूरी चुकाना। सेर भर सूत की खादी तैयार करने के लिए कितने नम्बर के सूत की कितनी लच्छियों की ज़रूरत होगी, यह निश्चित करने के लिए त्रैराशिक सिखाना। सूत का व्यास वर्गमूल के प्रमाण मे बढता है, यह समझाते समय वृत, परिधि, त्रिज्या, व्यास आदि भूमिति के सामान्य सिद्धान्त समझाना। व्यास निकालते समय वर्गमूल निकालने का तरीका बताना। खादी बुनना सिखाते समय कर्घा के पुंजे, तार, नम्बर, सूत का पोत आदि संबंधी गणित सिखाना, सूत का कस निकालते समय कितने नम्बर का सूत कितना वजन सह सकता है यह बताना—इस तरह अंकगणित का बहुतेरा ज्ञान विद्यार्थियों को दिया जा सकता है।

(८) भाषा—खादी की जुदा-जुदा क्रिया करते समय उन क्रियाओं

१ 'खादी और अर्थशास्त्र' शीर्षक अध्याय देखिए।

की परिभाषा समझाते जाना चाहिए। अपने घर, स्कूल और गांव-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख करने को कहना। अपने स्कूल के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में अपने भाई-बहनों को पत्र लिखना, अखिल भारतीय चरखा संघ और 'ग्रामोद्योग संघ' के मन्त्रियों को पत्र लिखकर खादी के उद्योग-धन्धे के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना, अपने उद्योग-धन्धे की प्रतिदिन की प्रगति का हिसाब रखना, अपने स्कूल के सम्बन्ध में जानकारी देने-वाला दैनिक, साप्ताहिक अथवा मासिक पत्र निकालना और उसके लिए लेख लिखना और सार्वजनिक महत्व के विषय पर कुछ निश्चित समय तक बोलने का अभ्यास करना। अपनी भाषा के सिवा अपने पडोसी प्रान्त की भाषा कभी थोडी-थोडी बोलने और लिखने की आदत डालना। इस तरह अपनी भाषा के सिवा पडोसी प्रान्त की भाषा का भी अनुभव हो सकेगा।

(९) चित्रकला—कपास के पौधे, फूल, बौंडी, लोढन, धुनकी, भिन्न-भिन्न तरह के चरखे, तकली, करघे आदि का इसी तरह किसी का लोढते हुए, किसी का पींजते हुए, किसी का कातते हुए, किसी का तकली चलाते हुए, किसी का करघे पर काम करते हुए चित्र बनाना सिखाना। प्राचीन काल से लेकर अबतक पोशाक में कैसा-कैसा परिवर्तन हुआ, यह दिखाने वाले भिन्न-भिन्न तरह के चित्र बनाना। स्कूल में तैयार हुई चीज़ों की प्रदर्शिनी सजाना। इस तरह विविध प्रकार से चित्रकला और सौन्दर्य-शास्त्र की शिक्षा दी जासकेगी।

(१०) विज्ञान—खादी का कपडा तैयार होने के बाद उसकी धुलाई, रंगाई, छपाई आदि क्रियाओं की जानकारी। अपने प्रतिदिन के कपड़े वैज्ञानिक ढंग से किस तरह धोये जायं, देश में प्रचलित धुलाई की भिन्न-भिन्न पद्धतियां और पश्चिमीय रासायनिक पद्धतियों से उनकी तुलना रसायन विज्ञान के सिद्धान्त; वनस्पतिजन्य रंगों और पश्चिमीय रंगों की तुलना; साधारण रासायनिक द्रव्यों की जानकारी, छपाई के भिन्न-भिन्न प्रकार, छपाई के ठप्पे तैयार करते समय तरह-तरह के फूल-पत्ते और बेलबूटे आदि बनाने के लिए आवश्यक चित्रकला की विशेष जानकारी,

भिन्न-भिन्न रंगों का तुषार उड़ाकर चित्र बनाने की पद्धति; वायुचित्रण (Airograph); कौन से रंग में कौन-सा रंग मिलाना उचित है, और वह किस तरह मिलाया जाय, कौन से रंग के साथ कौन-सा रंग अच्छा मिलता है आदि हर तरह की विज्ञान-सम्बन्धी जानकारी इन क्रियाओं द्वारा मनोरंजक ढंग से दी जासकेगी।

हम समझते हैं खादी के उद्योग द्वारा ज्ञान का गुम्फन किस तरह किया जाय इस बात का संक्षिप्त परिचय करा देने के लिए इतना विवेचन काफ़ी होगा।

: १४ :

खादी और ग्रामोद्योग

राष्ट्र के द्रष्टाओं की दृष्टि अत्यन्त सूक्ष्म होती है। साधारण मनुष्य को जो दूर की, भविष्य की बात दिखाई नहीं देती, वह सहज ही उनके ध्यान मे आजाती है; और इसी मे उनकी विशेषता है। महात्मा गांधी सन् १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान आये। हिन्दुस्तान आने के बाद उन्होने एक ओर काश्मीर से कन्याकुमारी तक और दूसरी ओर कराची से कलकत्ता तक का दौरा किया। इस दौरे मे उन्हे हिन्दुस्तान के गांवों में रहने वाली जनता की परिस्थिति का अच्छा परिचय हुआ, उन्हे यह निश्चय हो गया कि देश के लगभग पांच करोड़ आदमियों को दोनों समय पेट भरकर भोजन नहीं मिलता। ऐसी स्थिति मे उन्होंने उन लोगों को काम देकर उनके पेट मे अन्न के दो कौर डालने के लिए चरखे और खादी के धन्धे का पुनरुद्धार करने का निश्चय किया।

बाद को कई वर्ष बाद सन् १९३३-३४ मे महात्माजी ने हरिजन-उद्धार के सिलसिले मे फिर सारे हिन्दुस्तान का दौरा किया। उडीसा प्रान्त के सिवा यह दौरा रेलवे और मोटर से हुआ। उडीसा प्रान्त मे उन्होंने पैदल ही यात्रा की। यह दौरा 'हरिजनोद्धार' के लिए था, अतः हरेक जगह की हरिजन-बस्ती देखने के लिए खुद चलकर जाते थे। इससे उन्हें सारे हिन्दुस्तान के दलित वर्ग की परिस्थिति का, रहन-सहन और खान-पान का सूक्ष्म निरीक्षण करने का अच्छा मौका मिला और वह इस नतीजे पर पहुंचे कि बिचारे इन गरीबो को पेट भर तो खाने को मिलता ही नहीं, लेकिन जो अन्न मिलता भी है वह अत्यन्त निकम्मा और सत्वहीन होता है। उन्होंने देखा कि वे जो चावल, आटा और तेल खाते हैं वह सब मिलो में तैयार हुआ निकम्मा होता है, 'उनमे से

जीवनदायक सब पोषक तत्व निकल जाते हैं और इससे उनकी 'दुबले को दो असाढ़' वाली स्थिति हो गई है। एक तो पहले ही पेट मे अन्न कम पहुँचता है और जो पहुंचता है वह भी इस प्रकार सत्वहीन हुआ हुआ। इसके सिवा उन्हें यह भी निश्चय हुआ कि इस स्थिति के कारण साल या धान कूटने, आटा पीसने और तेल पेरने का धन्धा डूबता जाता है और देश दिन-प्रति-दिन अधिकाधिक दरिद्री, आलसी और परावलम्बी बनता जाता है। इस पर से उन्हें ग्रामोद्योगों के पुनरुज्जीवन की कल्पना हुई और उन्होंने स्वदेशी की व्याख्या को अधिक शुद्ध करने की बात देश के गले उतार दी। तदनुसार सन् १९३४ मे 'अखिल भारतीय ग्रामोद्योग-संघ' की स्थापना हुई और तब से वह संघ लोगों का ध्यान इस प्रवृत्ति की ओर आकर्षित कर रहा है।

जिस समय हिन्दुस्तान मे स्वराज्य क़ायम था, उस समय यहाँ का प्रत्येक गॉव स्वयं पूर्ण था। किसान अपने खेत में अनाज और कपास बोता था। इसीमें से अपने अन्न-वस्त्र की सुविधा कर लेता था। घर पर बीसियों ढोर या पशु होते थे, जिनमें बहुत-सी गायें और एकाध सांड भी होता था। इन गायों से घर-के-घर दूध हो जाता था और खेती के लिए आवश्यक बैलों की पूर्त्ति भी हो जाती थी। घर की खेती में ही तिल-सरसों आदि बोकर गॉव के तेली की घानी मे उसका तेल निकलवा लिया जाता था, जिससे तेल की आवश्यकता पूरी हो जाती थी। जहाँ पानी की सुविधा होती उस भाग के किसान गन्ने या ईख की खेती कर गुड भी बनाते थे। खेती के लिए आवश्यक रस्सी आदि के लिए सन आदि बोकर उस ज़रूरत को पूरा कर लेते थे। आग पैदा करने के लिए प्रत्येक घर मे चकमक पत्थर रहता था। अपने गॉव के आसपास कहीं कोई खाली ज़मीन हुई तो उससे नमक तैयार कर लेते थे। इस प्रकार अपनी गृहस्थी के लिए आवश्यक वस्तुयें घर-के-घर अथवा गॉव-के-गॉव में ही तैयार करते रहने के कारण उन्हें निरन्तर उद्योग मे लगे रहना पडता था। किसी दूसरे पर निर्भर रहना नहीं पडता था और गॉव का पैसा गॉव में ही रहता था। इसलिए प्रत्येक गॉव उद्यमशील, सुखी और समृद्ध रहता था।

लेकिन आज की स्थिति इससे बिलकुल उलटी है। ग्राम-पंचायतें टूट गई है, सारे उद्योग-धन्धे डूब गये हैं, और लोग आलसी, बेकार, दरिद्री और परावलम्बी बन गये हैं। ऐसी दशा मे अगर गाँवो की बिखरी हुई स्थिति को फिर सम्भालना हो, और वहाँ फिर से जीवन पैदा करना हो तो ग्रामोद्योगों के पुनरुज्जीवन का कसकर प्रयत्न करना चाहिए।

ग्रामोद्योगों मे खादी सूर्य की तरह केन्द्र-स्थानीय है और बाकी के सब उद्योग सूर्य के आसपास चक्कर काटनेवाली ग्रह-मालिका की तरह है। जिस समय खादी का धन्धा पूरे वैभव पर पहुँचा हुआ था, उस समय ये सब ग्रामोद्योग भी अच्छे चलते थे। जबसे अंग्रेज़ो ने खादी के उद्योग को चौपट किया, तबसे दूसरे सब धन्धों को भी डूबती-कला लग गई! इसलिए प्रत्येक गाँव मे घर-घर वैज्ञानिक पद्धति से चरखा और खादी का काम शुरू करना चाहिए। इससे उसके साथ-ही-साथ दूसरे धन्धों का भी पुनरुज्जीवन होने लगेगा। खादी के सम्बन्ध मे दूसरे अध्यायो मे काफी विवेचन किया जा चुका है, अतः यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं।

लेकिन खादी मे जो तत्त्व भरा हुआ है उसे समझ लेना चाहिए। इसके बिना 'खादी और ग्रामोद्योग' का सम्बन्ध मालूम नहीं हो सकेगा। खादी का मतलब है पूर्ण स्वदेशी। "यह स्वदेशी खादी पर केन्द्रीभूत होने के कारण इतनी व्यापक है कि देश मे तैयार होनेवाली और हो सकनेवाली प्रत्येक वस्तु तक उसका विस्तार हो सकता है।"[१]

'स्वदेशी' और 'विदेशी' वस्तुओं की ग्राह्याग्राह्यता के सम्बन्ध में महात्माजी लिखते है—"सिर्फ़ विदेशी होने ही की वजह से कोई वस्तु त्याज्य है यह बात मेरे किसी धर्मग्रंथ मे कहीं भी नहीं लिखी है। मेरे धर्मग्रंथ में तो इस प्रकार लिखा है —जो बात स्वदेश के लिए हानिकारक है वह सब विदेशी त्याज्य है। जो वस्तु हम अपने देश मे काफ़ी तादाद में तैयार कर सकते हैं वह हमें कभी भी विदेश से नहीं मँगानी चाहिए। उदाहरणार्थ गेहूँ लीजिए। आस्ट्रेलिया के गेहूँ अधिक अच्छे होते हैं, इसलिए वे मंगवाये जायँ और अपने यहाँ के गेहूँ का

१ 'यग इण्डिया' भाग २ पृष्ठ ६६५

त्याग कर दिया जाय, इसे मैं पाप समझता हूँ। अपने देश में चमड़ा काफ़ी तादाद में तैयार होता है, यद्यपि वह हल्के प्रकार का होता है फिर भी मैं उसे त्याज्य नही समझता हूँ। हिन्दुस्तान मे शक्कर अथवा गुड काफ़ी तादाद में होते हुए भी विदेशी शक्कर मंगाने को मैं बुराई समझता हूँ।"[१]

खादी के व्यवहार का अर्थ है करोड़ों बुभुक्षित लोगों के साथ समरस होना। इस दृष्टि से विचार करते हुए अगर हमें प्रत्येक गाँव को सम्पूर्ण स्वदेशी और स्वावलम्बी बनाना हो तो हमें इस बात की सावधानी रखनी होगी कि गाँव का एक भी आदमी बेकार न रहने पावे। इसका मतलब यह है कि गाँव के प्रत्येक आदमी को भरपूर काम मिलना चाहिए; गाँव में जुदे-जुदे धन्धे अच्छी तरह चलने चाहिए। ये धन्धे खूब तेज़ी से चलें, ऐसी परिस्थिति पैदा करने के लिए गाँव के अगुआ लोगों को यह दृढ संकल्प करना चाहिए और संकल्प को अमल मे लाने की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि जहाँतक सम्भव हो सके गाँव में एक भी विदेशी वस्तु न आने पावे, हरेक व्यक्ति अपने गाँव में बनी हुई वस्तु काम मे लावे।

इस विचारसरणी को ध्यान में रखते हुए अगर हिन्दुस्तान के करीब सात लाख गाँव पूर्णतया खादीमय और ग्रामोद्योग के सम्बन्ध में भी परिपूर्ण हो जायँ तो स्वराज्य दूर ही कितना रह जायगा ?

यह बात ध्यान में रखकर ग्रामोद्योग के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विवेचन किया गया है।

खादी के बाद 'गोरक्षा' की ओर मुड़ना आवश्यक है। इधर किसानों ने गायों की बड़ी अवहेलना की है। गायों की अपेक्षा भैंस पालने की ओर उनका ध्यान अधिक रहता है। गायों को घर से बाहर जंगल की चराई पर ही सन्तुष्ट रहना पड़ता है—किसान लोग अक्सर उन्हें घास या चारा नहीं डालते। हाँ, भैंसों को ज़रूर कुट्टी, चारा-बाँटा दिये विना नहीं रहते। गायों को इस तरह लापरवाही से छोड़ देना और भैंसों को दिल से पालना 'स्वदेशी धर्म' के विरुद्ध है। जिन बैलों से हम सेवा लेते हैं, जिनके बल पर अपनी खेती चलाते है उनकी जननी गाय की

१. 'नवजीवन' २८ अक्तूबर १९२८

रक्षा करना हमारा अत्यन्त निकट का और पवित्र कर्तव्य है। इस उपयुक्तता की दृष्टि से ही हिन्दू-धर्म मे गाय को पवित्र माना गया है।

किसानो ने अपनी जो यह धारणा बनाली है कि 'गायों का पालना उन्हे पूरा नहीं पड़ता' यह सवाल ग़लत है। वे भैंस पर जितना पैसा खर्च करते है और उसपर जितना परिश्रम करते हैं, उतना पैसा और परिश्रम अगर गाय के प्रति किया जाय तो गाय का पालना उन्हें भारी नहीं पड़ेगा। इस देश और विलायतवालों का भी यह अनुभव है कि अगर गायों को अच्छी खुराक दी जाय और उनकी अच्छी साध-सम्भाल की जाय तो वे भी भरपूर और चौकस दूध देती हैं। अमेरिका मे तो एक-एक गाय एक-एक दिन में ४५ पौण्ड अर्थात् लगभग साढे बाईस सेर दूध देती है। किसान लोग अगर दूर दृष्टि से काम लेकर गायो का पोषण करेंगे तो उनपर किया गया खर्च उन्हे व्याज समेत वसूल हो जायगा। उनका अच्छी तरह पोषण होने पर वे खूब दूध देंगी, इसके सिवा हर साल उनके जो बछड़े-बछड़ी होगे उनसे घर में लक्ष्मी की वृद्धि ही होगी। उन्हें नये बैल ख़रीदने के लिए पैसे खर्च नहीं करने पड़ेंगे, घर की गायों से पैदा हुए बैलो से ही उनकी खेती का काम चल जायगा। आज घर से कुछ पैसे खर्च होने के कारण अगर किसान सङ्कुचित दृष्टि रखकर गाय का अच्छी तरह पोषण नहीं करेगा तो ऐन खेती के समय उसके पुराने बैलो के थककर अड़ जाने पर उसे साहूकार से कर्ज़ लेकर सवाई-ड्योढी कीमत मे बैल खरीद कर खेती के रुके हुए काम को आगे ढकेलना होगा।

किसानों की यह शिकायत सही है कि इस समय गायों के चरने के लिए गोचर-भूमि की कोई सुविधा नहीं। इस सम्बन्ध मे उन्हे हमारी यही सूचना है कि उन्हें अधिक कपास अथवा अधिक अन्न के मोह अथवा लोभ मे न पड़ कर अपनी खेती का एक खास हिस्सा ढोरों के घास-चारे के लिए ही सुरक्षित रखना और उससे गोरक्षण करना चाहिए। भैंस के दूध-घी की ही तरह उन्हें गाय के दूध-घी से आर्थिक लाभ हुए बिना नहीं रहेगा।

जिस समय हम यह कहते हैं कि आर्थिक दृष्टि से गाय पालना पुसा जायगा, उस समय हमारी नज़रो मे पीढी-दर-पीढी अवहेलित अथवा दीन-दुबली बनी हुई गाय नहीं होतीं। हमारे कहने का आशय यही है कि आरम्भ से ही गाय को पौष्टिक खुराक देने के बाद उसकी जो सन्तान तैयार होगी वही सुधरते-सुधरते १०-१२ वर्षों मे आज की भैंस जितना दूध देने लगेगी और इस प्रकार किसान को आर्थिक दृष्टि से पुसायगी।

पाँच-सात गाँवों के एक केन्द्र मे उन्नत पद्धति पर एक चर्मालय चल सकता है, और इसमें किसानों और चमारों दोनों ही का हित है। अभी ढोर के मरने पर किसान उसकी क़ीमत लिए बिना ही चमार से उसे उठा ले जाने को कह देता है। मरे हुए पशु का चमड़ा, हड्डी, सींग, खुर, आंत, पीठ के पुट्ठे और चरबी आदि वस्तुये फैंक देने के योग्य नहीं होती; ये चीज़ें एक तरह की सम्पत्ति होती हैं, अतः किसानों को उनकी क़ीमत वसूल करनी चाहिए। पशुओं की चीर-फाड के लिए चमारों को जो मज़दूरी लेनी हो, लें, लेकिन उनका चमडा और हड्डी पशुओं के मालिकों की ही मिल्कियत होनी चाहिए। अगर चमारों को चमडा कमाने की उन्नत पद्धति सिखाने की व्यवस्था कर दी जाय तो आज वे जो चमड़ा, जिस कीमत मे बेचते हैं उसकी अपेक्षा आठ-नौ गुनी कीमत वे ज़रूर पा सकते है। पशुओं की हड्डी का खाद बहुत क़ीमती होता है, ख़ासकर फलों के बाग़-बग़ीचों के लिए वह बहुत गुणकारी होता है। अतः किसानों को उस दृष्टि से उसका उपयोग करके अथवा बेचकर अपनी शक्ति मे वृद्धि करनी चाहिए।

किसान 'सोन' खाद के नाम पर से ही 'खाद' की दृष्टि से उसका महत्व समझते हैं। लेकिन उसमे बदबू अथवा गन्दगी मानकर उसके उपयोग की ओर लापरवाही कर जाते हैं। असल मे देखने पर पाख़ाने पर मिट्टी डाल दी जाय तो उसमें से बदबू आना बन्द हो जाता है और साधारणतया दो-तीन महीने के अन्दर-अन्दर उसका खाद तैयार होकर उसका सारा रूप बदल जाता है, और तब वह साधारण मिट्टी की तरह हो जाता है। तब उसका खाद के लिए उपयोग किया जाने पर फ़सल

अच्छी पैदा होकर किसान की सम्पत्ति में वृद्धि हुए बिना नहीं रहेगी। इसलिए किसानों को अपने कुटुम्ब का मल—पाखाना—व्यर्थ जाने न देने के लिए 'किसानी चलते फिरते संडास' का प्रयोग करना चाहिए और उस मल का उपयोग खाद के लिए करना चाहिए। रूढ़ि-प्रिय किसान आरम्भ में ऐसे संडास पसन्द नहीं करेगा। उनके लिए समझदार किसानों को चाहिए कि वे खुद ऐसे संडास बनवाकर लोगों को किराये पर दें, अथवा उन्हें उनका प्रयोग करने के लिए प्रेरित करके उस 'सोन' खाद का स्वयं उपयोग करलें अथवा उसे बेच कर पैसे कमा लें। जहां नहर, तालाब आदि हों वहाँ किसानों को गन्ना या ईख बोकर गुड़ तैयार करना और बेचना चाहिए।

इसी तरह किसानों को अपने खेतों में तैलीय-पदार्थ—तिल, सरसों आदि—बोना चाहिए और तेली की मज़दूरी देकर घानी से तेल निलकवा लेना चाहिए। इस व्यवस्था से एक ओर किसानों को शुद्ध, स्वच्छ और पुष्टिकारक तेल खाने को मिलेगा और तेलियों की भी घानियाँ अच्छी तरह चलकर उनका भी पेट भरेगा।

इसी तरह उन्हें हाथ के कुटे चावल और हाथ की चक्की पर पिसा हुआ आटा खाने का निश्चय करना चाहिए। इस व्यवस्था से उन्हें खाने को सत्वयुक्त चावल और आटा तो मिलेगा ही, साथ ही चावल कूटने और आटा पीसने का काम घर-का-घर में ही करने से उतने मज़दूरी के पैसे बच जायँगे। जो लोग कुछ घर-गृहस्थी-सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण खुद ऐसा न कर सकें उन्हें मज़दूरी देकर अपने घर पर ही यह काम करवा लेना चाहिए। इससे वे मज़दूर को एक काम दे सकेंगे।

किसान अगर अपनी खेती के लिए आवश्यक रस्सी आदि अपने खेत में ही बोये हुए सन, अम्बाड़ी अथवा केतकी से तैयार कर लें तो इससे भी उनके दो पैसे बच जायँगे और जो रस्सी तैयार होगी वह टिकाऊ होगी।

इसी तरह किसान घर-के-घर कुछ शहद की मक्खियाँ पालकर शहद तैयार कर सकेंगे।

यह हुए हरेक किसान के कर सकने योग्य धन्धे।

इसके सिवा हरेक गॉव मे स्त्रियों के लिए आवश्यक कुंकुम अथवा रोली बनाने का धन्धा भी चल सकता है। इसी तरह अगर कोई साबुन और कागज़ बनाना चाहे तो वह भी थोडी ही पूंजी में हो सकता है।

इसी तरह हमे यह भी सावधानी रखनी चाहिए कि हरेक गाँव में कुम्हार, सुनार, लुहार और पासी वग़ैरा के धन्धे जीवित रहें। इसका मतलब यह हुआ कि अपने घरों के छप्परों के लिए विदेशी टीन के पत्तर काम में न लाकर अपने गॉव के कुम्हार द्वारा बनाये हुए खपरैल, अथवा कवेलूटी काम में लाने चाहिए। इसी तरह गाडियों में रबरदार पहिए न लगाकर अपने गॉव मे सुनार और लुहार के बनाए हुए पहिए और लोहे के पाटे ही लगाने चाहिएँ। अपने गॉव के पासी की बनाई हुई टोकरियॉ, झाडू और चटाइयॉ आदि लेनी चाहिएँ और स्त्रियों की प्रसूति के लिए दाइयॉ बुलानी चाहिएँ।

इस वर्णन मे सारे ग्रामोद्योगों का सर्वनाश नही हुआ है, फिर भी उनके सम्बन्ध मे क्या किया जाना चाहिए इसकी कल्पना के लिए इतना विवेचन काफ़ी होगा।

अन्त में यह कहना ज़रूरी है कि आज सारे संसार में एकमात्र 'औद्योगीकरण' को ही उन्नति का मार्ग समझा जाता है; किन्तु वह सर्वोपरि ठीक नहीं है। वह एक वहम बन गया है। औद्योगीकरण के शिखर पर पहुंचे हुए जापान जैसे देश में ६० फीसदी लोग ग्रामोद्योग मे लगे हुए है। चीन को औद्योगीकरण की हविस नही। वहॉ ग्रामोद्योग का आदर्श संगठन देखने को मिलता है और रूमानिया आदि देशों मे भी ग्रामोद्योगों का स्थान बना हुआ है।

: १५ :

खादी-संगठन और स्वराज्य

प्रकृति के नियम के अनुसार मृत्यु के बाद जन्म, अस्त के बाद उदय और प्रलय के बाद सृष्टि होती ही रहती है।

अंग्रेज़ सरकार ने हमारे कपड़े के धन्धे का गला घोंटा, इससे वह और उससे सम्बन्धित धन्धे तो डूबे ही, उसके साथ ही दूसरे धन्धे भी डूब गये![1] लोगों के पास खेती के सिवा और कोई दूसरा आधार नहीं रहा! राष्ट्र की सम्पत्ति का स्रोत रुक गया, समाज का संगठन बिखर गया। पहले जो गाँव सम्पन्न थे वे निस्तेज और चैतन्यविहीन हो गये और इस प्रकार राष्ट्र पर विनाश की घड़ी सवार हो गई! ऐसी स्थिति में महात्माजी चरखा और खादी द्वारा हिन्दुस्तान का रक्त-शोषण रोकने का, समाज के संगठन को और गांवों को फिर से सुधारने और गांवों को फिर से सजीव करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

जिस तरह सूर्य के साथ किरणें हैं, उसी तरह वस्तु के साथ उसका सहचारी भाव है। हम जो यह कहते हैं कि चरखे का सार्वत्रिक प्रसार

१ कातने-बुनने के धन्धे की जो गति हुई वही दूसरे धन्धो की भी हुई। रगाई, रग बनाना, चमड़ा कमाना और रगना, लोहा और दूसरी धातुओ के काम, शाल-दुशाले और गलीचे और इसी तरह मलमल और विभिन्न बेल-बूटो से सज्जित रेशमी वस्त्र बुनना, और कागज तथा स्टेशनरी से सम्बन्धित अन्य सामान के कारखाने आदि सब डूब गये। ये उद्योग करके जो करोड़ो लोग अपनी उपजीविका चलाते थे, उन्हे अपने निर्वाह के लिए खेती का आश्रय लेने पर मजबूर होना पड़ा।"

डा० बालकृष्ण कृत "Industrial Decline in India" नामक पुस्तक के पृष्ठ ९०-९१ पर श्री रमेशचन्द्रदत्त का उद्धरण

होते ही स्वराज्य मिल जायगा, बहुत से उसका अर्थ नहीं समझते। इसका कारण यही है कि चरखे का साहचर्य भाव उनके ध्यान में नहीं आता। घर में एक चरखे का प्रवेश होते ही अपने साथ वह कितनी भावनायें लाता है, इसकी हमें कल्पना नहीं है। बिजली की बत्ती जलने के समान एक क्षण में सारा वातावरण बदल जाता है। राजा के बाहर निकलने पर पर हम कहते हैं 'राजा की सवारी बाहर निकली।' उसी तरह समझना चाहिए कि चरखे के घर में आने का अर्थ है उसकी सवारी घर में आना। उस सवारी में कौन-कौन सरदार शामिल है इसका विचार करते ही 'चरखे से स्वराज्य' का मतलब समझ में आ जायगा।"[1]

'जन-सेवा मे ही ईश्वर-सेवा है' की वृत्ति से काम करनेवाला कार्यकर्त्ता गांव में जाकर काम करने का विचार करे तो महात्माजी ने आज तक लोकहित की जो प्रवृत्तियां चलाई है उन पर नज़र डालते ही वह सहज ही यह समझ सकेगा कि उसे किस तरह ग्राम-संगठन करना चाहिए। इस पर से यह स्पष्ट ही कल्पना हो जाती है कि इन प्रवृत्तियों के चलाने में महात्माजी की दृष्टि कितनी गहरी और दूरदर्शितापूर्ण है। कार्यकर्त्ता को गांव मे जाकर यह अष्टविध कार्यक्रम अपनाना चाहिए— (१) खादी, (२) ग्रामोद्योग, (३) गोरक्षण (४) वर्धा-पद्धति के स्कूल, (५) 'शान्ति-दल' की स्थापना, (६) हरिजन सेवा, (७) ग्राम पञ्चायत और (८) कांग्रेस कमेटी की स्थापना।

इनमें से पहले चार विषयों पर पिछले अध्याय में और दूसरे भाग के 'खादी कार्यकर्त्ताओं को अनुभवपूर्ण सूचनायें' शीर्षक अध्याय मे विस्तृत विवेचन किया जा चुका है, अतः यहां अधिक न लिखकर सिर्फ़ यह बताना ही काफी होगा कि इन विषयों में संगठन का रूप क्या होना चाहिए।

खादी का काम करते हुए कार्यकर्त्ता का गांव के चरखे बनानेवाले बढ़ई, लुहार, कतवैये, जुलाहे, खादी धोनेवाले धोबी, छपाई और रंगाई का काम करने वाले छीपे और रंगरेज़ों से ग्रामोद्योग का प्रचार करते हुए

१. विनोबाजी—'मधुकर' पृष्ठ ५४-५५

तेली, कुम्हार, चमार, महार, पासी, कोली, भोई आदि से और उसी प्रकार हाथ से साल या धान कूटनेवाले और हाथ की चक्की पर आटा पीसने वालों से, गोरक्षा का महत्व समझाते हुए गाय पालनेवाले प्रत्येक कुटुम्ब से और वर्धा-पद्धति पर स्कूल शुरू करने से गांव के बालकों और उनके अभिभावकों से सम्बन्ध आयगा।

गांव मे किसी तरह का झगडा न होने देने, खासकर हिन्दू-मुसलमानों मे तनातनी पैदा न होने देने के लिए 'शान्ति-दल' स्थापित करना ज़रूरी है। 'शांति-दल स्थापित करते हुए गांव की सब जातियों के नवयुवकों से अच्छा परिचय होगा। इन नवयुवकों को यह बातें अच्छी तरह समझानी चाहिए कि उन्हे गांवों मे एकता स्थापित करने की कितनी ज़रूरत है, गांव मे झगडे हुए तो किस तरह आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक हर तरह से उनकी हानि है। उक्त एकता स्थापित करने का सर्वोत्तम मार्ग 'अहिंसा' है। इस 'अहिंसा' को हृदयंगम करने के लिए ईश्वर पर श्रद्धा होने का अर्थ है मनुष्य का 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की स्थिति पर पहुँचना और मनुष्य जब इस स्थिति को पहुँच जाता है तब अत्याचार की ओर उसकी प्रवृत्ति होना सम्भव ही नहीं रहता। मनुष्य के हृदय पर एक बार इन तत्त्वों की छाप बैठ जाने पर फिर वह उनसे पीछे नहीं हटता। अगर हरेक गांव में इन तत्त्वों को अच्छी तरह समझे हुए उदार हृदय के २०-२५ नवयुवक तैयार हो जायं तो साम्प्रदायिक दंगे होना संभव ही न रहे। यह स्पष्ट ही है कि इस शान्ति-दल मे गांव की सब जातियों के नवयुवक होने के कारण उसके प्रति सब की अपनेपन की भावना रहेगी।

हरिजनों मे महार, ढेड, चमार, पासी, भंगी आदि सभी का समावेश होता है। उनके व्यवसाय की गन्दगी के कारण सवर्ण हिन्दुओं ने उन्हें अस्पृश्य अथवा अछूत ठहराया; किन्तु (१) ये सब लोग समाज की अत्यन्त महत्वपूर्ण सेवा करते हैं, अगर ये अपना काम छोड़ बैठें तो समाज की अत्यन्त विषम स्थिति हो जाय। इसके सिवा (२) ईश्वर के दरबार मे उच्च-नीच का कोई भेद-भाव नहीं है। उसने उन्हें भी

के अहिंसक मार्ग से इस संगठन के किये जा सकने का काफी मौका है। ऐसा संगठन हो जाने पर यह समझ लेना चाहिए कि स्वराज्य प्राप्त करने तक की अपनी तैयारी हो चुकी है।

महात्माजी ने दिसम्बर सन् १९३६ मे फैजपुर कांग्रेस के समय 'खादी और ग्रामोद्योग प्रदर्शिनी' के पण्डाल मे 'खादी के संगठन द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना किस प्रकार सम्भव है' इस विषय पर जो अत्यन्त महत्वपूर्ण भाषण दिया था, उसे यहाँ देना प्रसंग के अनुकूल और सर्वथा उचित होगा। अतः वह नीचे उद्धृत किया जाता है। उन्होंने कहा था—

"आज मैं आप लोगों को कोई नई बात सुनाने नहीं आया हूँ। पहले जो कहता था, उसका पुनरावर्त्तन ही करूँगा। चर्खा-संघ को, या यों कहिए कि खादी को १८ वर्ष होगये हैं। ग्राम-उद्योग-संघ का जन्म इसकी छाया में हुआ, और उसे दो वर्ष हुए हैं। जब खादी का आरम्भ हुआ, तब लोगों के आगे मैंने अपना यह विश्वास प्रकट किया था कि चरखे से स्वराज्य मिलेगा, सूत के धागे से हम स्वराज्य लेंगे। उस समय यह कितने ही लोगों को पागलपन की बात मालूम हुई होगी। स्वराज्य, पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मिल आज़ादी के मानी ये हैं कि हमारे ऊपर कोई भी विदेशी सल्तनत राज्य न करे। यह आजादी चार बाजू की होनी चाहिए। इसमें अर्थ-सिद्धि होनी चाहिए। अर्थ-सिद्धि का मतलब यह है कि लोग उसमे भूखों न मरें। इसका अर्थ यह नही कि रूखी-सूखी रोटी सब को मिलती जाय। इसका अर्थ तो यह है कि हम सुखसे रहे और रोटी के साथ हमें घी भी मिले, और दूध और साग-भाजी भी मिले। जो गोश्त खाना न छोड सकते हों उन्हें गोश्त भी मिले। इसके बाद पहनने के लिए भी मेरे जैसा कच्छ या लंगोटी नहीं, किन्तु गृहस्थों के जैसे वस्त्र मिलें—पुरुषों को अंगरखा, कुर्त्ता, साफा वग़ैरा और स्त्रियों को पूरी साडी और दूसरे कपडे। (आज जिस फेशन की पोशाक की चलन है वेसी तो नही; पर हां, पुराने ज़माने मे गृहस्थ जैसे कपडे पहनते थे, और जिसके नमूने आप इस प्रदर्शिनी में देखेंगे, वैसे सुन्दर कपडे ज़रूर मिलने चाहिएँ।)

'सभी भूमि गोपाल की'

दूसरी है राजनैतिक आज़ादी। यह भी भारतीय होनी चाहिए। यह यूरोपीय नमूने की न हो, ब्रिटिश पार्लमेण्ट या सोवियट रूस या इटली का नमूना मैं कैसे लूँ? मैं किसका अनुकरण करूँ? मेरी राजनैतिक आज़ादी इस प्रकार की नहीं होगी, वह तो भारत-भूमि की रुचि की होगी? हमारे यहाँ स्टेट तो होगी, पर कारबार किस प्रकार का होगा, यह मैं आज नहीं बता सकता। गोलमेज़ कान्फ्रेंस में मैंने यह कहने की धृष्टता की थी कि अगर आपको हिन्दुस्तान के लिए राजकीय विधान का नमूना चाहिए तो कॉंग्रेस का विधान ले लीजिए। इसे मेरी धृष्टता भले ही कहें। पर मेरी कल्पना के अनुसार तो ग़रीब और अमीर दोनों एक झंडे की सलामी करते हैं। पंच कहे सो परमेश्वर! इसलिए हमारे यहाँ के भलेमानस हिन्दुस्तान को जानने वाले करोड़ों मनुष्य जैसा तन्त्र चाहते हों वैसे की हमें जरूरत है। यह राजनैतिक आज़ादी है। इसमें एक आदमी का नहीं, बल्कि सब का राज्य होगा। मैं समाजवादी भाइयों से कहूँगा कि हमारे यहाँ तो—

सभी भूमि गोपाल की, वा में अटक कहाँ?
जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा।

इस सूत्र को युगों से मानते आरहे हैं। इसलिए यह भूमि ज़मींदार की नहीं, मिल-मालिक की नहीं, या ग़रीब की नहीं, यह तो गोपाल की है—जो गायों का पालन करता है उसकी है। गोपाल तो ईश्वर का नाम है, इसलिए यह भूमि तो उसकी है। हमारी तो कही ही नहीं जा सकती। यह न ज़मींदार की है और न मेरे जैसे लंगोटिये की। यह शरीर भी हमारा नहीं, ऐसा साधु-सन्तों ने कहा है। यह शरीर नाशवान् है, केवल एक आत्मा ही रहनेवाली है। यह सच्चा समाजवाद है। इसपर हम अमल करने लग जायँ, तो हमें सब-कुछ मिल गया। इस सिद्धान्त का अनुकरण करनेवाला आज कोई दीख नहीं रहा है, तो इसमें सिद्धान्त का दोष नहीं, दोष हमारा है। मैं इसकी व्यावहारिकता बिल्कुल शक्य मानता हूँ।

चार समकोण

स्वराज्य का तीसरा भाग नैतिक या सामाजिक स्वतन्त्रता का है। नैतिक और सामाजिक को मैं मिला देना चाहता हूँ। या तो हमारा स्वराज्य चक्र होना चाहिए या चतुष्कोण। मेरी कल्पना शुद्ध चतुष्कोण की है। इसके दो समकोण मैंने कह दिये हैं। यह तीसरा है। इस तीसरे में प्राचीनकाल से हमें जो नीति मिलती आ रही है, वह नीति है—सत्य और अहिंसा की। चौथा कोण धर्म का है, क्योंकि धर्म के बिना ये तीनों पाये खड़े नहीं रह सकते। कोई अगर कहे कि मैं तो सत्य को मानता हूँ, तो मैं उससे कहूँगा कि तुम सत्य को मानते हो तो खुदा को क्यों नहीं? मैं तो कहता हूँ कि अगर मैं सत्य को मानता हूँ तो भगवान् को भी मानता हूँ। कारण, भगवान् का नाम ही सत्यनारायण है। मेरा सत्य तो जीवित है, वह ऐसा जीवित है कि दुनिया में जब सब मिट जायगा तब यही एक रहेगा। सिक्ख 'सत् श्री अकाल' कहते हैं; गीता कहती है कि सत् का नाम लेकर सब काम आरम्भ करो; कुरान कहता है कि खुदा एक है। इस प्रकार सत् को माननेवाले हम सब एक-दूसरे के गले क्यों काटें? मुसलमान हिन्दुओं के गले काटें, हिन्दू मुसलमान के गले काटें, सिक्ख दोनों के काटें, और ईसाई तीनों के गले काटें, यह बात ईश्वर को माननेवालों से तो हो ही नहीं सकती।

इस तरह चारों कोनों को हमें एक-सा सम्हालना है, यह सब ९० अंश के समकोण हैं। इन चारों कोणों से बने हुए स्वराज्य को आप स्वराज्य कहिए, मैं इसे रामराज्य कहूँगा।

धारा-सभा का कार्यक्रम

अठारह वर्ष पहले मैंने कहा था कि यह स्वराज्य सूत के तार पर अवलम्बित है। वही मन्त्र मैं आज भी बोल रहा हूँ। उसका स्मरण आज भी करा रहा हूँ। यह बात नहीं कि धारा-सभा के कार्यक्रम को मैं मानता नहीं हूँ। इसे एक बार नष्ट करने के लिए मैंने कहा था, और डा० अन्सारी साहब के साथ मिलकर इसके सजीवन में भी मेरा हाथ है। इसे सजीवन इसलिए करना पड़ा, क्योंकि मैंने देखा कि इसके बिना हम अपना काम

चला नहीं सकते। पर यह कार्यक्रम आप लोगों के लिए नहीं है और न मेरे लिए है। हम सब कौन्सिलों के अन्दर जायँगे तो वहाँ समायँगे कहाँ? हमारे देश की ३५ करोड की आबादी मे एक हज़ार या पन्द्रह सौ देश-सेवक भले कौंसिलो मे चले जायँ। पर उन लोगों को हुक्म तो हमे ही देना होगा। हमारी कांग्रेस के कुछ प्रतिनिधि वहाँ रहेंगे, पर उन्हे भेजने की राय देने का हक़ तो सब को नहीं है। मुझे भी वोट देने का हक नहीं। मुझे तो ६ वर्ष की सज़ा हुई थी, इसलिए मैं नापास समझा जाता हूँ। ३५ करोड में से ३१॥ करोड को मत देने का हक नहीं। उनके साथ ही मैं रहूँ, यह अच्छा है न? बोलिए, आप क्या कहते है? (आवाज़ "३१॥ करोड के साथ") बहनों! आप क्या कहती हैं? (आवाज़— "हमारे साथ।") आपके साथ तो हूँ ही। जिस माता की गोद मे खेला, जिस माता का दूध पिया, उन माताओं के कन्धे के ऊपर कैसे बैठूँगा? उनके तो चरणों के आगे रहूँगा, उनकी सेवा करूँगा।

अब जो ३॥ करोड मत देनेवाले बचे, उनमे से कितने धारासभाओं में जायँ? पन्द्रह सौ जगहों के लिए हम लडे तो यह कहा जायगा कि हमने स्वराज का क़त्ल कर दिया। कहते हैं कि आज ऐसा क़त्ल हो रहा है। धारा-सभा का कार्यक्रम शरीफ आदमियो के लिए ही होना चाहिए। लेकिन गन्दे आदमी वहाँ घुस जायँ तो क्या करेंगे? पर ख़ैर, यह तो हुआ। जिन्हे मत नहीं देना है, वे ३१॥ करोड क्या करेंगे? उनके लिए तो सिवा रचनात्मक कार्यक्रम के दूसरा कुछ है ही नहीं।

जो धारा-सभाओं मे जायेंगे वे वहाँ कितना काम कर सकेंगे, यह बतला दूँ। हिन्दुस्तान में जो आर्डिनेन्स का राज्य चलता है उसमें कांग्रेस के भी प्रतिनिधि शामिल थे। इतिहास में अगर यह न कहा गया तो काफ़ी है। कोई गन्दा मनुष्य भी बतौर हमारे प्रतिनिधि के चला जायगा, पर मत तो उसका हमारे पक्ष में ही पडेगा। प्रतिनिधि आर्डिनेन्सों का बचाना रोक नहीं सकते। जवाहरलाल को जेल जाने या फाँसी पर चढने से वे रोक नहीं सकेंगे। और वह तो फाँसी के तख्ते पर भी बहादुरी से और हँसते-हँसते चढेंगे। पर उन्हे जो भी सज़ा मिले उसके लिए कॉग्रेस

के प्रतिनिधियों की मंज़ूरी नहीं मिलेगी। सुभाष बोस को शायद बंगाल के प्रतिनिधि छुडाले, और सम्भव है कि शायद यह भी अनुचित बात कॉंग्रेसवालों के हाथ से नहीं होगी। किसी भी गन्दी बात में हमारा वोट नहीं मिलेगा। आर्डिनेन्स राज्य का अर्थ है, जैसा बादशाह कहे वैसा करना। ऐसे राज्य को हमारे प्रतिनिधियों की मंजूरी नहीं मिलेगी।

आज़ादी नहीं दिला सकते

लेकिन ये प्रतिनिधि हमें आज़ादी नहीं दिला सकते। वह तो सूत के तार से ही मिलेगी। सूत का तार छोडा और आज़ादी का जाना शुरू हुआ। इसमें अंग्रेज़ों का अपराध तो था ही, पर हम भी पागल बन गये। हमने चर्खा छोड दिया, हमने विलायत से आनेवाला कपडा लेना शुरू कर दिया। इसलिए हमारे देश में लोगों के हाथ मे कुछ भी काम नहीं रहा और करोडों मनुष्य बेकार होगए। अगर दूसरे किसी भी उपाय से हमारे आदमी बेकार न रहे, सबको खाने-पीने को मिलने लगे और सब आराम से रह सके, तो हम खुशी से लंकाशायर से कपडा मॅगाने लगें, लंकाशायर से कपडा मंगाना खुद कोई पाप नहीं है। लेकिन दूसरे के पापों की शोध करने से पहले उन दोनों कोनों का, यानी नीति और धर्म का पालन करना पडेगा। इस शर्तपर मुझे सूत के तार के बदले या चर्खे के बदले कोई दूसरी चीज़ दे तो मैं उसका गुलाम बन जाऊँगा। पर यह चीज़ मेरी जिन्दगी में पूरी हो सकेगी, ऐसा मुझे लगता नहीं। बाकी तो बनानेवाला ईश्वर है, उसे जो करना हो करे।

आज मैं सेगॉव चला गया हूँ, तो भी उसकी यही बात सुनाता हूँ। हमारे लोग बेकारी से भूखों मर रहे हैं, पर इसका कारण केवल अंग्रेजी राज्य नहीं है। यह भी इसका एक कारण है, अंग्रेज़ी राज्य से बेकारी फैली और बेकारी से दारिद्रय, पर इस दारिद्रय को निमंत्रण देने मे हमारा काफ़ी हिस्सा है। बेकारी हमारे देश में ईस्ट इंडिया कम्पनी की बदौलत आई, पर आज जो आलस्य देखने मे आता है, इसमें तो हमारा ही दोष है। मैं सेगॉव में देखता हूँ न कि लोगों को उनके घर जा-जाकर पैसा दें तो भी वे आलस्य छोडकर काम नहीं करते। लोगों को पैसा दिलाने के, उनकी

जेब में थोड़ा-सा पैसा डालने के मार्ग तो बहुत हैं, पर वे नीति के अनुकूल होने चाहिएँ। शराब के धन्धे से भी पैसा मिलता है, पर वह किस काम का ? खजूर के पेड़ों से यों ताड़ी बनती है, पर मैं उनसे गुड़ बना रहा हूँ। ऐसा गुड़ बना रहा हूँ कि जैसा आपने कभी नहीं खाया होगा। इसमें मैं अतिशयोक्ति नहीं कर रहा हूँ। यह गुड़ अगर पैदा हो सका तो मैं कुछ हज़ार रुपये तो सेगाँव के लोगों की जेब में डालूँगा ही। अब उन पेड़ों से ताड़ी निकालें तब भी रुपया मिलेगा। पर इससे आज़ादी नहीं मिलेगी, और मिले भी तो भी मुझे नहीं चाहिए। मैं तो यह कहता हूँ कि मैं वहाँ गुड़ दाखिल करूँ। और उसके बाद लोग चोरी से ताड़ी बनाने लगें तो मुझे उनके विरुद्ध कड़ा सत्याग्रह करना पड़ेगा। इसलिए ऐसा धन्धा मुझे कोई खादी के बदले बतावे तो उसे मैं स्वीकार नहीं करूँगा। किन्तु कोई भी नीति से चलनेवाली वस्तु खादी के बदले कोई मुझे बतावे तो उसे मैं उठा लेने के लिए हूँ। वह मुझे किसीने बताई नहीं।

इसीलिए मैं कहता हूँ कि सूत के तार से ही स्वराज्य मिलेगा, पर इसके साथ नीति की ज़रूरत है। कुछ लोग ठगबाज़ी के लिए और खून करने के लिए भी खादी पहनते हैं। उनकी मनोदशा को मैं खादी की मनोदशा नहीं कहता। हमारा हृदय जब खादी से व्याप्त हो जायगा, तब हमारी आज़ादी को रोकनेवाली एक भी शक्ति ठहरने की नहीं। गाँवों में बसनेवालों को हमें यही चीज़ सिखानी है। इतना उन्होंने समझ लिया और कर लिया तो फिर धारा-सभायें सो जायेंगी। कारण कि हम तो इसके पहले ही स्वराज्य प्राप्त कर चुके होंगे।

मैंने इसी समझ से एक साल के अन्दर स्वराज्य प्राप्त करने की बात अठारह साल पहले कही थी। वही बात आज भी कह रहा हूँ, और की थी इसके लिए मुझे ज़रा भी शर्म नहीं। मैंने जिन शर्तों को पूरा करने के लिए कहा था, उनमें से क्या एक भी पूरी हुई थी ? आज भी उन्हें आप पूरा करें तो स्वराज्य हस्तामलकवत् है। आज हिन्दू-मुस्लिम-एकता कहाँ है ? बम्बई में हाल में कैसी-कैसी शैतानियाँ हुईं। आज वे करोड़ चर्खे कहाँ हैं ? और कहाँ हैं वे नियमित रूप से रोज आधा घण्टा कातनेवाले ?

(यद्यपि आज तो मैं पॉच घण्टा कातने को कहता हूँ, क्योंकि कातनेवाले बहुत थोडे रह गये है ।) और हमने अस्पृश्यता कितनी दूर की है ? त्रावणकोर की यह घोषणा तो समुद्र में एक बूँद के समान है । अस्पृश्यता जब बिल्कुल नष्ट हो जायगी, तब हिन्दू-मुसलमान गले मिलेगे । अस्पृश्यता को जड-मूल से नष्ट करने का अर्थ है, सबको अपना भाई बनाना—हरिजनों को ही नहीं, बल्कि मुसलमान, ईसाई वगैरा को भी अस्पृश्य न मानना । और हमे जो शराब का सम्पूर्ण बहिष्कार करना था, वह किया है क्या ? मैंने तो इसके अलावा सरकारी स्कूलो, अदालतों और धारा-सभाओं के बहिष्कार की भी बात की थी । मान लीजिए कि आज भी कोई धारासभा मे नही जाना चाहता तो मैं किसी से जाने का आग्रह करता हूँ क्या ? मैं तो बनिया ठहरा, जो बात लोगों को पसन्द नही आई, और जिसे वे हज़म नहीं कर सके, उसे छोड दिया और धर्म और नीति के अनुकूल उनके सामने दूसरी चीज़ रख दी ।

आर्थिक सूर्य-मण्डल

आज मैं सरल शब्दों मे एक बडी ऊँची बात आप लोगों से कह रहा हूँ—अगर आप चर्खे को अपनायेंगे तो आप देखेंगे कि सूत के तार से स्वराज्य मिलता है या नहीं ? सारा हिन्दुस्तान तो सूर्य-मण्डल है । उसमे चरखा मध्य-बिन्दु है, और इसके आसपास ग्राम-उद्योग-रूपी ग्रह चक्कर लगा रहे हैं । नभोमण्डल मे तो नवग्रह कहे जाते है, पर चरखे के आस-पास तो अनन्त ग्रह घूमते है । इस मध्यचक्र अर्थात् सूर्य को मिटाने का अर्थ है, आसपास के सभी उद्योगों को नष्ट कर देना । आज सूर्य सेवा करता है तो उसकी गरमी से टिके हुए दूसरे ग्रह सेवा करते है । मूल सूर्य का अस्तित्व स्थिर हो गया तो फिर दूसरे सब ग्रह तो उसके आसपास चक्कर लगायॅगे ही ।

इस प्रदर्शिनी में आप एक छोटा-सा सूर्य-मण्डल देखेंगे । यह तो एक नमूना है, पर ऐसे नमूने से आप सारे हिन्दुस्तान को भर दे, सारा हिन्दुस्तान इस प्रकार के गॉवों का बन जाय, तो फिर धारासभा के कार्यक्रम की कोई ज़रूरत नही रहेगी, और न जेल जाने की ज़रूरत

रहेगी। स्त्रियों को तो जेल जाना ही नहीं पडेगा, वल्कि पुरुषों को भी नहीं जाना पडेगा। हमे जेल मे अपने पाप के कारण जाना पडता है; याने इससे कि रचनात्मक काम को हाथ में नही उठा लेते।

ऊँचा उपाय

इसलिए यह एक ऊँचा उपाय है। इसके आगे हिंसक उपाय फीका पड जाता है। हमारी संख्या इतनी ज़्यादा है कि ३५ करोड सहज ही ७०,००० अंग्रेजों को पत्थर मारकर भी मार डाल सकते है। लेकिन फिर ३५ करोड के बारे मे क्या कहा जायगा ? इससे आज़ादी मिलनी तो दूर, पर ईश्वर याने संसार हमारे ऊपर थूकेगा। और ब्रिटिश सरकार के पास इस सम्बन्ध मे धर्म नही, नीति नही। वह तो हवाई जहाजों से बम फेंकेगी, और ज़हरीली गैस बरसायगी, यह भय तो हमेशा है ही। इस भय को मिटाने के लिए मैंने चर्खा खोजा, और आज सेगॉव में बैठा हूँ, पर रटना उसी की है। आज भी मुझ मे जेल जाने की शक्ति है, पर अब मैं ६८ वर्ष का हो गया हूँ, अब तो आप लोगों में जो जवान है, वे जेल मे जायँ। लेकिन आज तो मैं आपके आगे वह चीज़ रख रहा हूँ, जो मेरे अन्दर भरी हुई है। जेल तो जाने के लिए तैयार हूँ, फॉसी पर चढने को भी तैयार हूँ—शायद जवाहरलाल की तरह हँसते-हँसते नहीं, रुऑसी ऑखों से चढूँ। पर आज इसके लिए सवाल कहॉ पैदा हुआ है ? मैं तो कहता हूँ कि ३५ करोड़ आदमी अगर बुद्धिपूर्वक हिंसा का नाम छोड़ दें और मेरे बताये अनुसार चर्खे को अपनालें, तो धारा-सभा या जेल में जाने की, फांसी पर चढने की, अर्ज़ियॉ भेजने की या लार्ड लिनलिथगो के पास जाने की ज़रूरत रहेगी ही नहीं। उलटे लार्ड लिनलिथगो कांग्रेस मे आकर कहेंगे कि तुम्हें जो चाहिए, ले लो और हमें यह बताओ कि हम यहॉ किस तरह रहें ? वह कहेंगे—'हमसे ग़लती हुई। तुम्हारा वर्णन हमें आतंकवादी और हिंसावादी के रूप में नहीं करना चाहिए था। अब तुम रक्खोगे तो रहेंगे, और जिस तरह रहने को तुम कहोगे, उस तरह रहेंगे।' इसके बाद हमें विदेशियों को रोकने के क़ानून की ज़रूरत नहीं रहेगी। हम उन लोगों से कहेंगे, 'तुम दूध में शक्कर की तरह मिल

कृपा के रूप में नहीं, बल्कि उनके काम के बदले में। न्याय की दृष्टि से उन्हें इतनी मज़दूरी देना चाहिए जिससे उन्हें पर्याप्त अन्न-वस्त्र मिल सकें और वे अपना जीवन ठीक-ठीक तरह चला सकें—दूसरे शब्दों में हमें उन्हें जीवन-वेतन देने की व्यवस्था करनी चाहिए। मानवता की दृष्टि से तो यह विचारसरणी उपयुक्त है ही, किन्तु देश के अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से भी वह कितनी उपयुक्त है, इसका, वर्धा के सत्याग्रह आश्रम के आचार्य श्री विनोबाजी भावे ने लगभग डेढ वर्ष पूर्व, २४ मई सन् १९३७ में पश्चिम खानदेश के पिंपलनेर स्थान पर हुए खादीधारियों के सम्मेलन मे 'वास्तविक अर्थशास्त्र' विषय पर दिये हुए अपने एक भाषण मे अत्यन्त युक्तियुक्त और मार्मिक विवेचन किया था। वह इस प्रकार है—

"अभी तक हमारा जो काम श्रद्धा के बल पर चलता था, उसके साथ ही अब उस पर विचार करने का अवसर उपस्थित हो गया है, और वह अवसर खादीवालों ने ही उपस्थित किया है; क्योंकि खादी का भाव खादी वालों ने ही बढाया है और अनेकों का यह मत है कि इस भाव-वृद्धि के कारण खादी की खपत कम होगई है।

"सन् १९२० में हम लोगों ने सत्रह आने गज की खादी ख़रीदी है। लेकिन उसे सस्ती करने के उद्देश्य से दरों मे कमी करते-करते आज वह चार आने गज पर आ पहुँची है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जहां ग़रीबी मौजूद थी वहां कम-से-कम मज़दूरी देकर खादी सस्ती करते-करते चार आने गज पर लाई गई। अकाल के स्थान पर खादी तैयार करने का काम शुरू करना पडा, इसका अर्थ यह हुआ कि खादी और ग़रीब स्त्रियों की जोडी ही बन गई।

"चारों ओर मशीन युग होने के कारण कार्यकर्त्ताओं ने मिलों के कपडे का भाव अपनी नज़र के सामने रखकर खादी का भाव धीरे-धीरे कोशिश करके कुशलतापूर्वक सत्रह आने से सवा चार आने अर्थात् सत्रह पैसे पर ला रक्खा। लेने वालों ने उसे सस्ती कह कर ली। मध्यम श्रेणी के लोग कहने लगे कि अब खादी के इस्तेमाल में कोई हर्ज नहीं। खादी का भाव मिल के कपडे की बराबरी पर आ गया और टिकाऊपन

दुगना हो गया, ऐसी दशा में वह महँगी रही ही नहीं। मतलब यह कि लोगों को गोल सींगों वाली सुन्दर, कम कीमत की और बहुत दूध वाली गायरूपी खादी चाहिए थी। वैसी उन्हें मिल गई, और उन्हें यह भासित होने लगा कि ऐसी खादी का इस्तेमाल कर हम बहुत बड़ी देश-सेवा कर रहे हैं।

"ऐसी स्थिति में विचारशील लोगों ने—स्वयं गांधीजी ने—यह प्रस्ताव किया कि मज़दूरों को अधिक मज़दूरी दी जाय। इतना ही नहीं, गांधीजी अब भी यह कहते हैं कि मज़दूरों को आठ आने रोज मज़दूरी पड़नी चाहिए। कई लोगों का ख़याल है कि गांधीजी कहीं 'मुख मस्तीति वक्तव्यं' वाली कहावत तो चरितार्थ नहीं कर रहे हैं? वह—गांधीजी—साठ वर्ष के हो चुके हैं, इसलिए उनकी साठी बुद्धि नाठी हो गई, अतः उनके कथन में क्या कुछ अर्थ है, इसका अपने को विचार करना चाहिए। हम अभी साठी तक नहीं पहुँचे हैं। हमने अभी घर-दुनिया छोड़ नहीं दी है। हमें घर-गिरिस्ती चलाना है। अगर हमें यह विचार नहीं पटते हैं तो यह समझकर कि यह सब 'सनकी' लोगों की कल्पना है, हमें वह छोड़ देनी चाहिए।

"मैं सच कहूँ? जब से खादी के दर में वृद्धि हुई है, तब से मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है मानों मेरे शरीर में देवता का संचार हो गया हो। पहले भी मैं वही काम करता था। आठ-आठ घण्टे काम करता था। मैं नियमित कातने वाला हूँ। अच्छी पूनियाँ और निर्दोष चरखा मैं काम में लाता हूँ। यह आप अभी देख ही चुके हैं कि कातते समय मेरा सूत टूटता नहीं है। मैं श्रद्धापूर्वक और ध्यान से कातता हूँ। आठ घण्टे इस तरह काम करके भी उसकी मज़दूरी सिर्फ सवा दो आने होती थी। हड्डियाँ चूर-चूर हो जाती थीं, लगातार आठ घण्टे मौनपूर्वक काम करता था। एक बार पालथी मार कर बैठा कि चार घण्टे लगातार कातता था। तब भी सवा दो आने ही मिलते। ऐसी दशा में देश में इसका प्रचार हो तो कैसे हो, यह विचार मन में उठता था। बाद को यह मज़दूरी बढ़ गई, इससे मुझे आनन्द हुआ, क्योंकि मैं भी तो एक मज़दूर ही हूँ।

सन्त तुकाराम का यह कथन कि "जिस पर बीतती है वही जानता है," ठीक ही है।

"मेरे काते हुए सूत की धोती पांच रुपये कीमत की हो तो भी पैसे वाले लोग उसे बारह रुपये में लेने को तैयार हो जाते हैं और कहते है कि यह तुम्हारे हाथ के सूत की है, इसलिए लेते हैं। ऐसा क्यों होता है? मै मज़दूरों का प्रतिनिधि हूँ। जो मज़दूरी मुझे देंगे वही उन्हे दें। ऐसी दशा मे मुझे चिन्ता यही थी कि इतनी सस्ती खादी जीवित कैसे रहेगी? मेरी यह चिन्ता अब मिट गई है। पहले कातने वालों को यह चिन्ता थी कि खादी किस तरह टिकेगी, अब वह चिन्ता खादी वापरनेवालों को मालूम होती है।

"संसार मे तीन तरह के लोग रहते है—(१) किसान, (२) दूसरे धन्धे करनेवाले और (३) कुछ भी धन्धा न करनेवाले, उदाहरणार्थ वृद्ध, रोगी, बालक और बेकार आदि। अर्थशास्त्र का—सच्चे अर्थशास्त्र का—यह नियम है कि इन तीनों श्रेणियों मे जो प्रामाणिक है उन सब के लिए पेटभर अन्न, तन ढकने के लिए पर्याप्त वस्त्र और रहने के लिए मकान की आवश्यक सुविधा होनी चाहिए। इसी तत्व पर कुटुम्ब चलते हैं। कुटुम्बों की ही तरह देशों को चलना चाहिए। इसीका नाम राष्ट्रीय अर्थशास्त्र—सच्चा अर्थशास्त्र— है। इस अर्थशास्त्र मे सब प्रामाणिक पुरुषों की पूर्ण सुविधा होनी चाहिए। अवश्य ही आलसी अर्थात् अप्रामाणिक लोगों का उत्तरदायित्व किसी भी देश पर नहीं है।

"इंग्लैण्ड-जैसे देश में भी, जो यान्त्रिक सामग्री—मशीनरी—से सम्पन्न है और जहाँ दूसरे देशों की सम्पत्ति बहकर जाती रहती है; जहाँ के सब बाज़ार सुसमृद्ध है, सब प्रकार की सुविधा है,—बेकारी मौजूद है। ऐसा क्यों है? इसका कारण है मशीने। इतने बेकारों के होने के कारण इस तरह काम न करनेवाले लोगों को प्रति सप्ताह भिक्षा—सदावरत— (Dole) देना पडता है। इस प्रकार करीब २०-२५ लाख बेकार लोगों को मज़दूरी न देकर अन्न देना पडता है। हम कहते है कि भिखारियों को बिना काम अन्न नही देना चाहिए, लेकिन वहाँ सहज ही अन्न-दान चालू है। इन

लोगों को काम दीजिए। 'इन्हें काम देना कर्त्तव्य है; कम-से-कम एक काम तो दीजिए; नही तो खाना दीजिए।' यदि इंग्लैण्ड मे यह नीति है तो सारे संसार मे क्यों न हो? वही यहाँ भी लागू कीजिए। लेकिन यहाँ उसे लागू करने पर बिना काम दिये डेढ करोड लोगों को अन्न देना पडेगा। मैं यह बात हिसाब लगाकर कहता हूँ कि कम-से-कम डेढ करोड लोग ऐसे निकलेंगे। मैं हिसाबी आदमी हूँ। इतने लोगो को अन्न किस तरह दिया जा सकेगा? दिया जा नहीं सकेगा। इच्छा करने पर भी नही दिया जा सकेगा। वहाँ दूसरे देशों की सम्पत्ति लूट कर ले जाई जाती है, इसलिए वे लोग ऐसा कर सकते हैं। अगर प्रामाणिकता के साथ शासन करने को कहा जाय तो इस तरह किया नहीं जा सकेगा।

"यहाँ मज़े की बात यह है कि हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश होने पर भी उसके पास और कोई सहायक धन्धा नही है। जिस देश मे खेती का धन्धा होता है वह देश हीन समझा जाता है। हिन्दुस्तान मे ७९ फीसदी से अधिक खेतिहर—किसान—हैं। हिन्दुस्तान की भूमि कम-से-कम १०,००० वर्ष से जोती जाती है। अमेरिका मे इससे तिगुना प्रदेश है। आबादी सिर्फ बारह करोड है। ज़मीन की जुताई सिर्फ ४०० वर्ष से ही है, इसलिए वहाँ की भूमि अच्छी और उपजाऊ है और वह देश सम्पन्न है। अपने देश मे, किसानों के हाथ मे और कोई धन्धे देने पर ही वह जीवित रह सकेगा। किसान से मतलब है (१) खेती करनेवाला, गोपालन करनेवाला और (२) पिंजाई कर कातनेवाला। किसान की इतनी व्याख्या करनेपर हिन्दुस्तान का किसान टिक सकेगा।

"कहते है हिन्दुस्तान मे अब नया राज्य शुरू हुआ है; नये मन्त्री आये है। वे कुछ अच्छी बाते करेगे। लेकिन दूध मँगानेवाले अश्वत्थामा को उसकी माँ ने दूध के बजाय अत्यन्त आतुरता के साथ पानी मे आटा घोलकर यद्यपि दूध कह कर दिया तो भी उसे दूध थोडे ही कहा जा सकेगा? पेट मे आग लगी हो, उस दशा मे सिरपर सौंठ लगाने से क्या लाभ? मन्त्रियो को यह जानना चाहिए था कि उन्होंने भलमनसाहत मे आकर सत्ता ली होगी; लेकिन इस सत्ता के लेने का अर्थ है

अपने को पददलित करनेवाली सत्ता की सहायता करना। फ़ौज का काम न होने पर भी उसपर ६० करोड का ख़र्च किस बात के लिए ? सम्पत्ति के बहकर जाते रहने पर फुटकर प्रवृत्तियों से किसानों का कुछ हित नही होनेवाला है।

"अतः सारी व्यवस्था फिर से बदलनी चाहिए और यह समझना चाहिए कि इसी के लिए हम यहाँ आकर बैठे हैं। बहुत से लोग इस बात पर दुःख प्रकट करते है कि खादी का प्रसार जितना होना चाहिए था उतना हो नहीं रहा है। लेकिन इसमें दु.ख नहीं, आनन्द ही है। खादी कोई बीडी का बण्डल या लिप्टन की चाय नहीं है; खादी एक विचार है। आग लगानी हो तो उसमे कुछ देर नहीं लगती। अगर इस गाँव में आग लग जाय तो इसके जलने में कितनी देर लगेगी ? लेकिन इसके विपरीत अगर गाँव बाँधना हो तो उसमें कितना समय लगेगा, इसका विचार कीजिए। खादी रचनात्मककार्य है; विध्वंसक नहीं। यह विचार अंग्रेज़ों के विचारों का शत्रु है। ऐसी दशा में खादी धीरे-धीरे आगे बढ रही है, इसका कोई दुख नही, यह ठीक ही है। पहले जब अपना राज्य था, तब खादी थी ही। लेकिन उस खादी और अबकी खादी में अन्तर है। इस समय की खादी में जो विचार है, वह उस समय नहीं था। आज हमें खादी के उपयोग करने का मर्म अच्छी तरह समझ-लेना चाहिए। आज की खादी का अर्थ है संसार में प्रचलित प्रवाह के विरुद्ध जाना। यह पानी को ऊँचे चढ़ाना है। अतः जब हम इस अधिकांश प्रतिकूल प्रवाह—प्रतिकूल काल—को जीत लेंगे, तब खादी आगे बढ़ेगी। तब वह कहेगी,'मैं प्रतिकूल काल का संहार करनेवाली हूँ।' अपना 'कालोऽस्मि क्षयकृत्प्रवृद्धः' वाला विराटस्वरूप वह बतलायगी। इसलिए अगर मिल के कपडे से उसकी तुलना की गई तो मिलों में ही समाई हुई—मरी हुई—समझी जायगी। इसके विपरीत उसे यह कहना चाहिए कि "मैं मिलों के कपडे की तरह सस्ती नहीं हूँ; मैं महँगी हूँ; मैं कीमती हूँ; मैं जो विचारशील व्यक्ति हैं उन्हीं को अलंकृत करती हूँ; मैं खोके पर बैठने नहीं आई हूँ, मुझे तो सिर पर बैठना है।" ऐसी खादी का एकदम

प्रचार किस तरह होगा? वह तो धीरे-धीरे आगे बढ़ेगी। लेकिन जितनी भी आगे बढ़ेगी, मज़बूती से बढ़ेगी। खादी प्रचलित विचारों की विरोधी है, इसलिए हमारी गिनती पागलों में होगी। आप विचारपूर्वक इन पागलों की श्रेणी में शामिल होइए। कईएक लोग अधूरी खादी पहनते हैं। इससे किसी का समाधान होता हो तो भले ही हो, लेकिन मैं तो सिर्फ दो ही तरह के आदमी पहचानता हूँ—एक जीवित और दूसरे मरे हुए। आधा-जीवित और आधा-मृत मनुष्य मैंने नहीं देखा। अधूरी खादी क्यों बरतते हैं? खादीवालों पर कोई कृपा न कीजिए। खादी के सम्बन्ध में विचार कीजिए। जबतक वह आपको नहीं पटे तबतक खुशी से अपने यहाँ की मिलों का कपड़ा पहनिए। मैं आपको लिखकर दे सकता हूँ कि अपने यहाँ की मिलों का कपड़ा देशी ही है, विदेशी नहीं। इसके सिवा आपको और क्या सबूत चाहिए? बिना विचार के खादी के व्यवहार का कोई अर्थ नहीं। खादी का अर्थ है विचारों का प्रवर्त्तन।

"मैं अभी जो तीन श्रेणी—(१) किसान, (२) दूसरे धन्धे करने वाले और (३) कोई भी धन्धा न करनेवाले—बता आया हूँ, उन सब प्रामाणिक व्यक्तियों को अन्न देना है। यह करने के लिए तीन शर्तें हैं। सबसे पहली यह कि किसान की व्याख्या बदली जाय। जो व्यक्ति (१) खेती, (२) गोपालन और (३) कातने का काम करता हो, उसे किसान कहा जाय। अन्न, वस्त्र, गाय, बैल, दूध के सम्बन्ध में किसान को स्वावलम्बी होना चाहिए। दूसरी शर्त यह है कि किसानों की तैयारी की हुई सब वस्तुयें दूसरों को महंगे मोल में लेनी चाहिएं। वे तीसरी शर्त यह कि, इनके सिवा किसानों को जो दूसरी चीज़ें लेनी हों वे उन्हें सस्ती मिलनी चाहिए। अन्न वस्त्र, दूध आदि वस्तुयें महंगी, और घड़ी, प्याला आदि चीज़ें सस्ती होनी चाहिएं। लेकिन हो रहा है इसके विपरीत। दूध महंगा होना चाहिए; किन्तु वह क़ीमती चीज़ सस्ती है और प्याला सस्ता होना चाहिए, वह महंगा है। हमको प्याला सस्ता और दूध मँहगा हो, ऐसी स्थिति पैदा करनी चाहिए। क्या खादी, दूध और अनाज के सस्ता होने से राष्ट्र सुखी होगा? जिन नौकरों को नियमित

रूप से पैसे मिलते हैं उनकी बात छोड़कर जिस देश में ७५ फीसदी किसान हैं, वह देश इन वस्तुओं के सस्ता होने पर सुखी किस तरह होगा? अतः किसानों की पैदा की हुई खादी, दूध, अनाज आदि वस्तुयें मंहगी और बाकी की दूसरी वस्तुयें सस्ती होनी चाहिए।

"लोग मुझसे कहते हैं कि तुम्हारे ये सब व्यवहार उलटे हैं। इस बीसवीं सदी में तुम गांधी वाले लोग यन्त्रों का—मशीनों का—विरोध कर रहे हो। लेकिन मैं जानना चाहता हूँ कि क्या तुम अन्तर्ज्ञानी हो? हम सब यन्त्र-विरोधी हैं, यह तुमने कैसे जाना? हम कहते हैं हम यन्त्र वाले ही हैं। यह कोई इतनी सरल बात नही है कि तुम हमें एकदम पहचानलो। हम तो तुम्हें हज़म कर जानेवाले लोग हैं। मैं कहता हूँ, तुमने यन्त्रों की ईजाद की है न? हमें वे चाहिएं। किसानों की उक्त वस्तुओं के सिवा बाकी की सब चीज़ें तुम सस्ती करो। तुम अपनी यन्त्र-विद्या किसानों के धन्धों के सिवा दूसरे धन्धों पर चलाओ। उन्हें छोड़-कर बाकी सब चीज़ें सस्ती होने दो। लेकिन ऐसा हो नही रहा है। उलटे किसानों की चीज़ें सस्ती, लेकिन इन मशीन के हिमायतियों के पास मशीनें होने पर भी इन सब मशीनों की चीज़ें महंगी हैं। मैं खादीवाला हूँ, तो भी यह नहीं कहता कि आप चकमक से आग जलावें। मुझे भी दियासलाई की डिब्बी चाहिए। किसान को एक पैसे में पांच डिब्बी क्यों नहीं देते? आपने बिजली पैदा की और कहते हैं कि वह गांवों में होनी चाहिए। तब दीजिए न उन्हें दो पैसे में महीने भर। आप खुशी से यन्त्र ईजाद कीजिए; लेकिन उनका उपयोग मैं कहता हूँ उस तरह होना चाहिए। केले चार आने दर्जन होना चाहिए और आपके यन्त्रों की चीज़ें एक-दो पैसे में मिलनी चाहिएँ। आपको किसान से मक्खन दो रुपये सेर लेना चाहिए। जो यह कहें कि हमें यह पुसाता नहीं है तो किसान को उन्हें जवाब देना चाहिए मैं स्वयं ही वह खाता और खा चुकने के बाद बचा हुआ देता हूँ। मुझे बताइए कौनसा किसान ऐसा होगा जो इसका विरोध करेगा? इसलिए इस खादी का विचार समझना चाहिए। बहुतसों को ऐसा प्रतीत होता है कि खादी महंगी हुई

तो काम कैसे चलेगा ? लेकिन किसका ? किसानों को खादी ख़रीदनी ही नहीं है, उन्हे तो बेचनी है। ऐसी दशा मे यह खादी उन्हें महंगी नहीं पडेगी। वह तो दूसरे लोगों को महंगी लेनी चाहिए।"

इस विवेचन से पाठको के ध्यान मे यह बात आ ही गई होगी कि मज़दूरो की मजदूरी बढाने मे कैसा उच्च तत्वज्ञान समाया हुआ है। इस तत्त्वज्ञान को ध्यान मे रखकर सारे भारत भर मे महाराष्ट्र चरखा-संघ ने ही सबसे आगे कदम रक्खा है। उसने २ मई १९३८ से अपनी अधीनता में काम करने वाले मजदूरो की मजदूरी की दर बढादी है। पृष्ठ २१६ तथा २१७ पर दिये हुए कोष्टको से उसका परिचय मिलेगा।

महाराष्ट्र चरखा-संघ के इस तरह भाव बढ़ाने पर पूज्य विनोवाजी ने उसके समर्थन मे 'ग्राम सेवा वृत्त' मे एक छोटा-सा लेख लिखा था। उस के भी उपयुक्त होने के कारण हम नीचे उसे उद्धृत कर रहे हैं—

पूरी मज़दूरी के सिद्धान्त की तत्त्वमीमांसा

'अथातो न्यायारंभ.'

"पूरी मज़दूरी के सिद्धान्त की चर्चा पिछले दो-तीन सालो से हो रही है। 'महाराष्ट्र चर्खा संघ' ने उस दिशा मे पहले एक छोटा क़दम बढाया। उसका परिणाम अनिष्ट नहीं हुआ, ऐसा अनुभव कर अब वह खुले दिल से उस ओर दूसरा कदम रख रहा है। मज़दूरी के भावों मे की गई इस बार की वृद्धि पिछली बार से करीब दुगुनी पडती है। इस मास के आरम्भ से नये दर अमल मे आनेवाले थे। नये दरों से सामान्य कातने वाला ८ घंटों मे चार आने, और प्रवीण कातने वाला उतने ही समय मे ६ आने कमा सकेगा। क्वचित कोई व्यक्ति, एकाध दिन क्यों न हो, विशेष प्रयत्न कर ८ आने भी कमा सकेगा। आठ आने गांधीजी की कल्पना की कम-से-कम मजदूरी है। अब भूला-भटका कोई उसको स्पर्श कर सकेगा। १९३५ मे एक बार लगातार चार महीनों तक प्रति-दिन २६ नम्बर की १६ लटियों के हिसाब से मैं काता करता था। उस समय मैं रोज़ाना ६ आने कमा लेता था। यह बात आज ३ साल बाद और वह भी महाराष्ट्र चर्खा-संघ के मर्यादित क्षेत्र के लिये ही कही

धुनाई के नये दर

८० तोले के १ सेर के] [मई १९३८ से चालू

क्रमांक	रुई की जाति	धुनकी की गति	तांत की मोटाई गजों में	पूनी-सलाई की मुटाई	पूनियों की संख्या १ तोले में	पूनी की जाति	मजदूरी रु	आ.	पा	किस नम्बर के सूत के योग्य
१	रोज़िया	मध्यम ४ फुटी	१७	३ सूती	८	रोज़िया नं० २	०	६	०	६से१०
२	,,	,,	,,	२॥ सूती	१२	रोज़िया नं० १	०	८	०	११से१४
३	बनी	,,	,,	,,	१२	बनी नं० २	०	८	०	११से१६
४	,,	मध्यम ३॥ फुटी	१९से२०	२ सूती	१६	,, नं० १	०	१२		१७से२०
५	वेरम या नादेड	,,	,,	,,	१६	वेरम या नादेड नं० २	०	१२		१७से२६
६	वेरम	युद्ध ३ फुटी	२१	,,	१६	वेरम नं० १	१	०	०	२७से३२
७	नादेड या सूरती	,,	२१	,,	१६	नादेड या सूरती नं० १	१	०	०	२७से४०

नोट—(१) यह दर रुई चुनना, धुनना और उसकी पूनी बनाना इन तीनों क्रियाओं के लिए है।

(२) यह दर ८० तोले रुई पर नहीं, बल्कि ८० तोले सूत तैयार करने के लिए जितनी रुई तैयार करनी पडे, उस पर दिये जायँगे।

(३) धुनाई के साधन (धुनकी आदि सामान) कारीगर के खुद के होंगे।

कातने के नये दर

सूत का अंक	रुई या पूनी की जाति		चार आने प्रतिदिन कमाने के लिए प्रति घंटा कितने तार कातना चाहिए ?	कातने के नये दर						रुई धुनकर कातने के पुराने दर		
	रुई की जाति	पूनी की जाति		पूनी में से			रुई धुन कर					
				रु.	आ	पा	रु	आ	पा	रु	आ	पा.
६	रोजिया	न २	३२०	०	१२	०	१	२	०	०	१०	०
७	,,	,,	२९९	०	१५	०	१	५	०	०	१२	०
८	,,	,,	२८०	१	२	०	१	८	०	०	१४	०
९	,,	,,	२७४	१	५	०	१	११	०	१	०	०
१०	,,	,,	२६६	१	८	०	१	१४	०	१	२	०
११	रोजिया, वनी	न १-२	२६१	१	११	०	२	३	०	१	४	०
१२	,,	,,	२५६	१	१४	०	२	६	०	१	६	०
१३	,,	,,	२५२	२	१	०	२	९	०	१	८	०
१४	,,	,,	२४९	२	४	०	२	१२	०	१	१०	०
१५–१६	,,	,,	२४४	२	१०	०	३	२	०	१	१२	०
१७–१८	वनी अथवा वेरम, नाँदेड	न १-२	२४०	३	०	०	३	१२	०	२	०	०
१९–२०	,,	,,	२२९	३	८	०	४	४	०	२	४	०
२१–२२	वेरम, नादेड	,,	२२०	४	०	०	४	१२	०	२	८	०
२३–२४	,,	,,	२१३	४	८		५	४	०	२	१४	०
२५–२६	,,	,,	२०८	५	०	०	५	१२	०	३	४	०
२७–२८	वेरम, नादेड या सूरती	न १	२०४	५	८	०	६	८	०	३	१०	०
२९–३०	,,	,	२००	६	०	०	७	०	०	४	०	०
३१–३२	,,	,,	१९७	६	८	०	७	८	०	४	८	०
३३–३४	नादेड, सूरती	न १	१९४	७	०	०	८	०	०	५	०	०
३५–३६	,,	,,	१९२	७	८	०	८	८	०	५	८	०
३७–३८	,,	,,	१९०	८	०	०	९	०	०	६	०	०
३९–४०	,	,,	१८८	८	८	०	९	८	०	६	८	०

जा सकती है। क्योंकि अन्य प्रान्तों के कई जवाबदार व्यक्ति अभी तक इस दरों की वृद्धि की नीति को अव्यवहार्य मानते हैं और महाराष्ट्र चर्खा-संघ के क्षेत्र मे उसकी खुद की ख़ास, जवाबदारी पर ही यह कदम बढाया जारहा है। इसमें यदि सफलता मिली तो अन्यत्र भी उसका अनुकरण किया जायगा, इसमे कोई सन्देह नहीं है।

इस प्रकार क़दम आगे बढाने मे हम किसी पर कोई उपकार कर रहे हों, या वृथा औदार्य दिखा रहे हों, सो बात नही है। "अथा तो न्यायारम्भः" इतना ही इसके बारे मे कह सकते हैं। पर यह न्यायारम्भ भी बहुत महंगा पड़ता है और नहीं पुसाता, ऐसी आज की परिस्थिति या यों कहिए कि मनःस्थिति है। उसमें फंस कर मज़दूरों को अल्प मजदूरी देते रहने मे न्याय तो नहीं है, पर व्यवहार भी नहीं है। क्योंकि ऐसा करते रहने में मुक्ति का मार्ग ही रुंध जाता है। इसलिए न्याय से चलना कितना ही महंगा पडे तो भी न्याय से चलकर मौजूदा परिस्थिति के विरुद्ध मे बल्वा पुकारने के सिवाय सज्जनों को कोई चारा नहीं है।

सज्जनता से अर्थात् अहिंसा से बल्वा करने में सब मिलकर एक साथ हो सके या सारे क्षेत्र मे जब हो सकेगा तभी बल्वा पुकारा जाय, इसकी गुंजाइश ही नहीं रहती। जिसको सूझ हुई उसने अपने क्षेत्र मे, स्थूल परिणामों की परवाह न करते हुए, फौरन श्रीगणेश कर दिया, यह अहिंसा की पद्धति है। मुझे कितने प्रवाह आकर मिलेंगे इसका अन्दाज लगा कर गंगाजी गंगोत्री से नही चली है। वह हिमालय से शान्त और दृढ निश्चय से—सीधी निकल पडीं और जिन प्रवाहों से उन्हे मिलना था वे मिले, जिन्हे नहीं मिलना था, वे नही मिले। न मिलने वालों की गंगाजी ने कोई परवाह नहीं की। इसीलिए वह प्रवाहित हुई, नहीं तो उद्गम स्थान मे ही रुंध गई होती। अहिंसा की प्रणाली उन गंगाजी सरीखी है। इसलिए 'महाराष्ट्र चरखा-संघ' उसके इस दृढ़ निश्चयपूर्वक उठाये हुए कदम के लिए तमाम अहिंसक बागी लोगों के धन्यवाद का पात्र है।

बग़ावत का रुख हो तो भी उसकी अपनी कोई पद्धति तो होनी ही चाहिए। उस पद्धति की कुछ बातें इस प्रकार हैं—

१—व्यवस्था-खर्च यथासम्भव कम हो। बिल्कुल ही न हो तो अच्छा। कुछ समय के बाद व्यवस्था खर्च की मद ही उड़ जाय, ऐसी कल्पना कर सकते हैं।

२—ऐसी परिस्थिति निर्माण होनी चाहिए कि हाथ-कता सूत मिल के सूत की स्पर्धा कर सके, या उससे भी बढ़ा-चढ़ा साबित हो। इस दृष्टि से नांदेड पद्धति की धुनाई का प्रचार उपयुक्त और आवश्यक है। हलके दर्जे की रुई इस्तेमाल करने की कोरकसर आदरणीय नहीं।

३—मज़दूरों के जीवन में कार्यकर्ताओं का—अर्थात् उनकी भलाई का—प्रवेश होना चाहिए। बढ़ी हुई मज़दूरी से कार्यकर्ताओं की भलाई हो, इसका खयाल रखना चाहिए।

४—चुनींदा स्थानों में खादी-उत्पत्ति केन्द्रित न कर, और यदि ज़रूरत हो तो कम करके भी, हर ज़िले में वह फैलाई जाय। ऐसा करने से खादी में का स्वदेशी-धर्म अधिक उज्ज्वल और प्राणदायी होगा।

५—आजतक चरखे के द्वारा चार-छः पैसे मज़दूरी देकर भी चरखा-संघ गंभीरता-पूर्वक कार्य कर रहा था। अब के भावों से तकली पर भी २॥ आने के लगभग मजदूरी पड सकती है। इसलिए तकली की ओर भी गंभीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए। उसका लाखों में प्रवेश होकर स्वावलंबन—जो खादी आन्दोलन का अन्तिम ध्येय है—प्रत्यक्ष में सिद्ध हो सकेगा। इसलिए तमाम कार्यकर्ताओं को तकली पर (दोनों हाथों से) नित्य कातने की आदत रखनी चाहिए। इस कातने में यज्ञदृष्टि रहे।

चरखा संघ के अथवा तत्सम कार्यकर्ताओं के लिए ये बातें लिखीं। पर बगावत का झंडा चरखा-संघ को सौंप कर, अथवा हम महंगी खादी लेते हैं, इसलिए उतने अंश में हम बागी हैं हो, ऐसा समाधान कर लेना पर्याप्त नहीं है। हरएक खादीधारी व्यक्ति ने, जहां-जहां, उसका मज़दूरों से सम्बन्ध आवे, वहां-वहां, मजदूरों को पूरी मजदूरी देकर ही काम कराना चाहिए। ऐसा यदि हम करेंगे तो ही हम अहिंसक बल्वे का

झंडा फहरा सकेंगे। अन्यथा सिर्फ़ खादी ही महंगी ख़रीद कर अन्य मजदूरों से यथासम्भव कम दामों मे काम कराते रहने से खादी पहन कर हमने एक प्रकार की, कोरी प्रतिष्ठा ही प्राप्त की, ऐसा हमारे खादी पहनने का आइन्दा के लिए मतलब होगा। अपने व्यक्तिगत जीवन में पूर्ण मजदूरी देने का सिद्धान्त अमल मे लाने वाली व्यक्तियां जगह-जगह पर निर्माण होंगी, तभी हम उस अहिंसा के बूते पर सरकार को भी वह सिद्धान्त मान्य करने पर मजबूर कर सकेंगे और राज्य-पद्धति मे तथा अर्थ-व्यवहार मे आवश्यक परिवर्तन करा सकेंगे।"

जैसाकि उक्त लेख मे कहा गया है, दरों की यह वृद्धि सभी धन्धों पर लागू करती है। गत १८ वर्षों से देश मे खादी का काम चल रहा है। इसलिए इस सम्बन्ध मे चरखा-संघ को काफ़ी अनुभव प्राप्त हुआ है और इसके सिवा कितने घण्टे काम लेने पर कितनी मजदूरी ली जा सकती है, इस सम्बन्ध मे वह अभी तक कई तरह के प्रयोग कर चुका है। उन प्रयोगों को ध्यान मे रखकर ऊपर बताये अनुसार भाव-वृद्धि की गई है।

अब अगर दूसरे धन्धों मे भी यह भाव-वृद्धि करनी है तो खादी के धन्धे की तरह उनमें भी इसी तरह के प्रयोग किये जाने चाहिए। प्रत्येक धन्धे के लोग ये प्रयोग किस तरह करें, उसका हिसाब किस तरह रक्खा जाय और वास्तविक मज़दूरी निकालने का नियमानुसार ज्ञान उन-उन धन्धों के लोगो को प्राप्त कर लेना चाहिए।

अनुभव यह है कि देश में प्रत्येक १०० व्यक्तियों में से सामान्यतः ४० व्यक्ति प्रत्यक्ष काम के लिए उपलब्ध हो सकते हैं। तदनुसार एक व्यक्ति को ढाई व्यक्तियों का पेट भर सकने जितनी मज़दूरी दी जानी चाहिए। इसके सिवा प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे कामों के लिए कुछ दिनों की छुट्टी की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से विचार करने पर २५ दिन काम करने पर ३० दिन की मज़दूरी दी जानी चाहिए। तभी मज़दूर को पूरी मजदूरी दी गई समझना चाहिए। मजदूर को प्रतिदिन आठ घण्टे उत्पादक काम करना चाहिए। प्रत्येक धन्धे में, प्रत्येक घण्टे मे,

मनुष्य किस हद तक और किस दर्जे का काम कर सकता है, यह प्रयोग करके निश्चित कर लेना चाहिए और उनके अनुसार आठ घण्टे की मजदूरी का हिसाब करना चाहिए।

मज़दूरी बहुतांश में चीज़ों के रूप में दी जानी चाहिए। ऊपरी ख़र्च के लिए कुछ पैसे नकद भी देना चाहिए। सिर्फ़ पैसा देने से उसके दुरुपयोग होने अथवा अन्न-वस्त्रादि की प्राथमिक आवश्यकताओं के सिवा दूसरी बातों पर ख़र्च हो जाने की सम्भावना रहती है। अतः ऐसा नहीं होने देना चाहिए।

भिन्न-भिन्न धन्धों में लगे हुए मज़दूरों को जीवन-वेतन देकर उनमें जाग्रति पैदा करनी हो तो कार्यकर्त्ताओं के सामने यह एक भारी प्रयोग-क्षेत्र और कार्यक्षेत्र है।

जो शिक्षा-पद्धति उद्योग के साथ-साथ ज्ञान का गुम्फन करती है, उसके अनुसार भी ऐसे प्रयोग करने का काफ़ी मौका है।

: १७ :

खादी का भविष्य

"यूरोप पर उन्माद छाया है। उत्साह-जैसी चीज़ कहीं भी दिखाई नहीं देती।...सामाजिक अस्थिरता, धार्मिक असहिष्णुता, बेकारी और नवयुवकों में फैले हुए अस्वास्थ्य के कारण यूरोप की आपत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'चोरी और सिरजोरी' अन्तर्राष्ट्रीय नियम बन गये है। ऐसे सघन अन्धकार में यूरोप को एशिया से ही प्रकाश मिलेगा और पूर्वीय संस्कृति ही संसार के दुःखों का निवारण करनेवाली औषधि दे सकेगी।"[1]

—सर टी० विजयराघवाचार्य

"जो तत्त्वज्ञान 'सेवा' और 'श्रम' के आधार पर अधिष्ठित है, वही अंत तक टिक सकेगा। जिस तत्त्वज्ञान के पीछे दूसरों का भक्षण (अपहरण) करने की भावना लगी हुई है, वह नष्ट हो जायगा। मेरा तो यह निश्चय है कि 'हिंसा' की भित्ती पर खड़ी की गई सब इमारते कच्ची है, और इस हिंसा का एक दिन चकनाचूर हुए बिना नहीं रहेगा।"

"दूसरे देशों मे बाजार ढूंढने और उन बाजारों पर अपना अधिकार कायम रखने के लिए हमे जापान, इंग्लैण्ड, अमेरिका, रूस और इटली-जैसे देशों की सामुद्रिक और सैनिक शक्ति से टक्कर ले सकने जितनी सेना खडी करनी होगी, और उसी के बल पर हमें अपनी सब योजनायें कायम करनी होंगी। नहीं, हमे यह नहीं पुसायगा। यह युग मनुष्यों को यन्त्र-मशीन बनाने के लिए हाथ धोकर पीछे पडा है। मैं यन्त्रशीनम—बने हुए व्यक्तियों को मनुष्य बनाना चाहता हूँ।"[2]—महात्मा गांधी

१ १९ अगस्त १९३८ को शिमला मे दिये हुए भाषण से

२ छ. न जोशीकृत 'आपला आर्थिक प्रश्न' पृ० २१६-२१७

यहाँतक खादी के सम्बन्ध में पैदा होनेवाले जुदा-जुदा विषयों का विवेचन किया गया। अब इस अध्याय में हमेशा पूछे जानेवाले इस प्रश्न का कि 'खादी का भविष्य क्या होने वाला है ?' उत्तर देना है।

प्रश्न अत्यन्त महत्त्व का है और उसपर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार करना आवश्यक है। इस प्रश्न के करनेवालों के मानसिक चक्षुओं के सामने पश्चिमीय देश और उनकी चमक-दमक हमेशा चमकती रहती है, अतः उनका ऐसा प्रश्न करना अत्यन्त स्वाभाविक है। हम भी हिन्दुस्तान और उक्त देशों की स्थिति को ध्यान में रखकर ही इस प्रश्न का उत्तर देंगे अर्थात् इसका उत्तर देते समय हमें अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति का विचार करना होगा।

आमतौर पर कहा जाता है कि आधिभौतिक दृष्टि से पश्चिमीय राष्ट्र बहुत उन्नत हैं। यह ठीक है कि भौतिक विज्ञान ने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर टेलीफोन, रेडियो, हवाई जहाज आदि अद्भुत और चमत्कारिक वस्तुओं का निर्माण किया है और इसलिए इन वैज्ञानिकों की शोधक-बुद्धि के लिए उनके प्रति हमारा सिर नम्रता से नीचे झुके और उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जाता। लेकिन प्रश्न यह है कि क्या इन आविष्कारों से कुल मिलाकर मानव-जीवन सुखी हुआ है ? क्या लोगों में सात्त्विक गुणों की अभिवृद्धि होकर जिधर देखो उधर ही वे सुख, आनन्द और शान्ति का उपभोग कर रहे हैं, ऐसे दृश्य दिखाई देते हैं ?

निर्विकार मन से सारी स्थिति पर विचार करने पर हमें क्या दिखाई देता है ? स्पेन में नृशंसता फैली हुई है, चीन पर जापान के आक्रमण हो रहे हैं; जर्मनी आस्ट्रिया को हजम कर गया है और चेकोस्लोवाकिया पर मशीनगनें लगा रक्खी है और इंग्लैण्ड फिलस्तीन पर नजर लगाये हुए है। आज ये राष्ट्र आपस में लड़ रहे हैं, कल इन राष्ट्रों के बजाय दूसरे राष्ट्रों में युद्धाग्नि के प्रज्वलित हो उठने के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं।[1] मानव-प्राणियों का संहार करने वाले अपने-अपने शस्त्रास्त्र बढ़ाने की

[1] गत सितम्बर से वह अग्नि प्रज्वलित हो युद्ध शुरु हो भी चुका है। —अनु०

इन राष्ट्रो मे होड लगी हुई है। अगर इंग्लैण्ड अपने हवाई जहाजों की संख्या बढाता है तो फ्रांस को वैसा किये बिना चैन नहीं पड़ता! और जर्मनी वैसा करता है तो रूस से चुपचाप बैठे नहीं रहा जाता।

पिछले महायुद्ध मे इतना मानव-संहार हुआ, इतना प्रदेश और इतनी भौतिक सम्पत्ति धूल मे मिली! उसे अभी २५ वर्ष भी नहीं हुए हैं। उसकी स्मृति अपनी नज़रों के सामने ज्यों-की-त्यों बनी हुई है कि प्रायः सभी प्रमुख राष्ट्रों मे दूसरे महायुद्ध की ज़ोरों से तैयारी हो रही है। ऐसी दशा मे क्या इन राष्ट्रों को, उन्नत कहना उचित होगा? अगर कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति का माल बिना उसकी सम्पत्ति लिए जबर्दस्ती उठा ले जाता है तो हम उसे 'आततायी' कहते है। उसी तरह ये प्रबल राष्ट्र दूसरे दुर्बल राष्ट्रों के साथ छल-बलकर ज़बर्दस्ती उनका अपहरण करते हैं, हमें तो वह अत्यन्त उद्दण्ड और जंगलीपन का कार्य प्रतीत होता है। इस बीसवीं सदी में इन राष्ट्रों में इस तरह का नंगा नाच होते हुए कौन ऐसा विवेकशील मनुष्य होगा जो इन्हें उन्नत कहेगा?

यूरोप की इस स्थिति का बारीकी-से अध्ययन कर सर टी. विजयराघवाचार्य ने जो उद्गार प्रकट किये थे, वे इस अध्याय के आरम्भ मे दिये गये हैं। इन उद्गारों में उन्होंने यूरोपीय राष्ट्रों को जिस रोग ने जकड रक्खा है, उसका अचूक निदान किया है और औषधि कहाँ से मिलेगी, इस सम्बन्ध में जो भविष्यवाणी की है, वह सर्वथा ठीक है। वह कहते है—"यूरोप के सघन अन्धकार में उसे एशिया से प्रकाश मिलेगा और संसार के दुःखों का निवारण करनेवाली औषधि पूर्वीय संस्कृति ही दे सकेगी।" किसी भी दूरदर्शी मनुष्य के यह बात सहज ही ध्यान मे आ जायगी कि यह प्रकाश पूर्व अर्थात् हिन्दुस्तान के महात्मा गांधी की ओर से मिलेगा और वह औषधि होगी 'अहिंसा।'

अपने नीच स्वार्थ साधने के लिए इन लोगों को करोडों रुपये की सम्पत्ति अथवा दूसरे देश के करोडों बेकारों के मुँह में न डालकर आग के मुँह में डालने में ज़रा भी संकोच नहीं होता। इससे पाठक सहज ही अनुमान कर सकते हैं कि ये लोग कितने हृदयशून्य एवं उलटी खोपडी

के हैं। अमेरिका में यह व्यवहार किस तरह चल रहा है, एक लेखक ने उसका चित्र खींचते हुए लिखा था :

"अपने जीवन-कलह के नीच स्वार्थ की कोई सीमा बाकी नहीं रही। अमेरिका में अनेकों ऐसे करोड़पति पड़े हुए हैं जो यह नहीं जानते कि अपनी अपार सम्पत्ति का उपभोग किस तरह किया जाय; तिस पर भी वे लाखों बेकारों को अपनी नज़रों के सामने भूख से तड़पते देखते रहते है! एक तेहरसौ फुट ऊँची इमारत में ऊपर जाने के लिए ७५ लिफ्ट्स (बिजली के ज़ोर से ऊपर चढ़नेवाले पालने) का उपयोग होता है और लोगों को ११५ वीं मंज़िल पर पहुँचाया जाता है, जबकि दूसरी तरफ बहुतसों को रहने के लिए झोपड़ी तक नहीं मिलती!

"कनसारा परगने मे मेरी आँखों के सामने लाखों टन गेहूँ नष्ट किये गये और 'टेक्सस' परगने मे लाखों टन वजन की कपास की गांठे 'अग्नये स्वाहा' की गई। ऐसा करने का उद्देश्य यही था कि गेहूँ और कपास के भाव में गड़बड़ न हो और धनवान् लोग कम धनवान न हों। एक तरफ यह हो रहा था और दूसरी तरफ अनेक लोग फटे कपड़े पहने फिरते दिखाई देते थे। केवल अमेरिका में ही नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान और चीन में अनेक लोग बुभुक्षित और नग्नस्थिति मे फिरते थे। ऐसी दशा में उसे संस्कृति कहा जाय अथवा कि जंगलीपन?"[1]

यह हृदय-विदारक वर्णन पढ़कर किसी भी विवेकशील व्यक्ति के हृदय में पाश्चात्य संस्कृति के प्रति चिड़ और सात्त्विक संताप हुए बिना न रहेगा। पाश्चात्य राष्ट्र इतने उन्मत्त—आक्रमणशील—बन गये हैं, इसका कारण यह है कि इनके सामने कोई उच्च ध्येय ही नहीं है। कम-से-कम पूर्वीय संस्कृति इतनी नीच नहीं है कि करोड़ों लोगों को अपनी नज़रों के सामने भूख से विह्वल और अर्द्धनग्न स्थिति मे देखते हुए भी उन्हें अन्न और वस्त्र न देकर इन वस्तुओं को अग्नि के समर्पित कर दिया जाता।

जिस समय ये राष्ट्र 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की आध्यात्मिक अहिंसक दृष्टि रखकर शासनकार्य चलावेंगे तभी उन्हें सच्ची शान्ति और सुख प्राप्त

१ कालेर हुयेर कृत "हमारा आर्थिक प्रश्न" पृष्ठ २२०

होगा। जबतक यह दृष्टि इन सब प्रमुख राष्ट्रों के हृदयंगम नहीं होती और जबतक उनकी ओर से उसके अनुसार आचरण नही होता, तबतक यह निश्चित बात है कि वे कितने ही अद्भुत आविष्कार क्यों न करें उनसे अखिल मानव-समुदाय का कल्याण हो नही सकता।

इन राष्ट्रों को अगर आगे जीवित रहना है तो उन्हे अहिंसा की उपासना करनी ही होगी। आधुनिक आधिभौतिक आविष्कारों ने यातायात के साधन खूब बढा दिये है और इससे राष्ट्र-राष्ट्र के बीच का अन्तर बहुत कम हो गया है। इससे स्थिति इतनी नाज़ुक हो गई है कि एक राष्ट्र के दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण करने पर संसार के सब राष्ट्रों पर उसका असर हुए बिना नहीं रहता।

पिछले महायुद्ध में हमे इसका अनुभव हो ही चुका है। हमारे दैनिक व्यवहारों पर उसका असर पडा। हमारे खाने-पीने की वस्तुयें और पहनने-ओढने के वस्त्रादि और दूसरी चीज़ें भी मंहगी हुईं, इसमे आश्चर्य की ही बात क्या है? गत महायुद्ध मे हमे भयंकर मंहगाई का अनुभव हुआ और सन् १९३० से हमे चौपट करदेने वाली मन्दी का सामना करना पडा। अमेरिका मे कपास की फ़सल ज्यादा होने पर उसके परिणाम मे हिन्दुस्तान की रुई का भाव उतरना निश्चित ही समझना चाहिए। आस्ट्रेलिया में गेहूँ की पैदावार ज्यादा होने पर हिन्दुस्तान के गेहूँ के भाव मे कमी हुए बिना रह नही सकती। अमेरिका मे क्रासरेट बढते ही सोना मंहगा होजाता है। उसने चॉदी की खरीद बन्द की तो इधर उस बिचारी को कोई पूछता ही नहीं! संक्षेप मे कहा जाय तो संसार मे कहीं भी ज़रा-सी गडबडाहट हुई नही कि हिन्दुस्तान अथवा दूसरे देशों मे उसकी प्रतिध्वनि हुए बिना नहीं रहती। राष्ट्रों की ऐसी नाज़ुक स्थिति है। ऐसी दशा में अगर २५–२५ वर्षों मे महायुद्ध होने लगे तो सब राष्ट्र जल्दी ही रसातल को पहुंच जायंगे, यह निश्चित है।

अगर ये महायुद्ध टालने हों तो आज जो प्रबल राष्ट्र अपने लिए आवश्यक कच्चे माल के लिए दुर्बल राष्ट्रों पर अपने आक्रमण—हिंसा—करते है, वे आक्रमण—वह हिंसा—रुकने चाहिएं। प्रबल राष्ट्रों को

अपने मे ऐसी उदार अहिंसक-वृत्ति जाग्रत करनी चाहिए कि वे यह अनुभव करे कि दुर्बल राष्ट्रों को भी जीवित रहने का, अपने सद्गुणों का विकास कर सुख, सुविधा और शान्ति का उपभोग करने का स्वाभाविक अधिकार है। ऐसी वृत्ति उत्पन्न होने पर आज प्रबल राष्ट्रों को कच्चे माल के लिए जो दुर्बल राष्ट्रो पर अवलम्बित रहना पडता है, वह बन्द हो जायगा। यह निश्चय करना चाहिए कि कम-से-कम अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रत्येक राष्ट्र को स्वावलम्बी बनना चाहिए। क्योंकि अगर हम स्वावलम्बी नही बने तो हमे दूसरे पर अवलम्बित रहना पडेगा, अर्थात् उन बातो मे दूसरे पर आक्रमण और हिंसा होगी ही। प्राथमिक आवश्यकताओ के सिवा बाकी दूसरी आवश्यकताओं मे जो राष्ट्र जो वस्तु उत्पन्न नही कर सकता, वह उसे दूसरे राष्ट्र से अवश्य लेनी चाहिए।

हमे अहिंसा का पल्ला पकडे बिना सुख-शान्ति मिल नही सकती, यह बात पश्चिम के राष्ट्रों के ध्यान मे आज कदाचित नहीं आयगी; हमारा लेकिन दृढ विश्वास है कि आकाश पर दूसरे महायुद्ध के जो बादल मण्डरा रहे हैं, उनके बरसने पर अर्थात् मानवसंहार की दूसरी परिवर्द्धित प्रचण्ड पुनरावृत्ति होने पर बरबस उनकी आंखे खुलेगी और तब संसार की राजनीति मे अहिंसा का अडिग स्थान स्थापित हो जायगा।

इतने विस्तारपूर्वक विवेचन का कारण यह है कि आगे हम यह प्रतिपादन करना चाहते है कि खादी का भविष्य अहिंसा पर अवलम्बित है। क्योंकि पीछे इस सम्बन्ध मे काफी विवेचन हो चुका है कि नीतिमूलक अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से खादी स्थायी रहने वाली है। अब अगर हिन्दुस्तान मे अहिंसा टिकी—यदि हम अहिंसा के द्वारा स्वराज्य प्राप्त कर सके—तब खादी का भविष्य उज्ज्वल है, यह निःसंशय है। और हिन्दुस्तान की राजनीति मे अभीतक अहिंसा ने जो काम किया है उसे देखते हुए हमें इस बात मे ज़रा भी सन्देह नहीं कि हम अहिंसा के ज़रिये स्वराज्य अवश्य प्राप्त करेगे। और अहिंसा से स्वराज्य मिलने के बाद अहिंसा के मार्ग से ही हम अपने कपडे की समस्या हल करेंगे और अहिंसा के इस मार्ग का

ही अर्थ सच्चा खादी का मार्ग है। संक्षेप मे कहा जाय तो अहिंसा की जो शक्ति है वही खादी की शक्ति है; अहिंसा का भविष्य ही खादी का भविष्य है।

संसार मे सुख, शान्ति और समृद्धि प्रस्थापित करनी हो तो उसके लिए 'हिंसा' नही, 'अहिंसा' ही उपयोगी सिद्ध होगी। कुछ लोग यह कह सकते हैं कि संसार मे 'अहिंसा' का प्रसार हो सकना असम्भव बात है; लेकिन महायुद्ध में हुए भयंकर मानवसंहार को देखकर जिन लोगों ने उसकी भीषणता को अनुभव किया है, वे यह मानने लगे है कि अहिंसा का प्रचार किये बिना संसार के उद्धार का और कोई उपाय नही है। सुप्रसिद्ध फ्रेंच दार्शनिक रोमाँ रोलां, अमेरिका के रे० होल्म्स आदि विद्वान और दूरदर्शी व्यक्ति 'शान्ति और अहिंसा' का ज़ोरों से समर्थन करने लगे है।

विलायत में तो 'शान्ति प्रतिज्ञा संघ' (Peace Pledge Union)[1] नामक संस्था तक स्थापित हो गई है। श्री. एच आर एल. (डिक) शेफर्ड उसके आदि संस्थापक और जार्ज लेन्सबरी, बर्ट्रण्ड रसेल, मिडलटन मुरी, जॉन बारक्ले, लार्ड पॉनसानबी, लॉरेन्स हाऊसमेन आदि विचारशील व्यक्ति उसके सदस्य है। उन्होंने "मैं युद्ध का त्याग करता हूँ, और अब से कभी भी युद्ध में सहायता अथवा उसका समर्थन नहीं करूँगा" यह प्रतिज्ञा ली है।

ये सब प्रयत्न देखते हुए हमें यह विश्वास होता है कि जिस महायुद्ध की काली घटा संसार पर मण्डरा रही है, उसके साफ होने के बाद संसार में बिजली की-सी तेज़ी से अहिंसा का प्रचार हुए बिना नहीं रहेगा।

इसके सिवा हमारा यह भी विश्वास है कि इस विचारसरणी का भी अब तेज़ी से प्रचार होगा। बम्बई की कांग्रेस सरकार के मंत्री माननीय श्री कन्हैयालाल मुंशी ने गत २८ अगस्त १९३८ को बम्बई के खालसा कालेज की औद्योगिक शाखा का उद्घाटन करते हुए इस आशय के उद्गार प्रकट किए थे। उन्होंने कहा था—

१ ९६ रीजण्ट स्ट्रीट, लन्दन, डब्ल्यू० आई०

"ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अब यह बात समझ चुके है कि जिस देश के लोग मरने के लिए तैयार है. ऐसे हिंसक देश की अपेक्षा हिन्दुस्तान अब अधिक बलवान और जीतने में अधिक कठिन है। यूरोप के सशस्त्र राष्ट्र जब एक-दूसरे का नाश कर चुकेंगे, तब उन्हें अहिंसा का महत्व मालूम होगा।"

इसके सिवा, बम्बई सरकार के पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी तथा अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के नेता श्री गुलजारीलाल नन्दा ने भावनगर मे होने वाले सन् १६३८ के मजदूर-सम्मेलन मे भाषण करते हुए निम्नलिखित मननीय उद्गार प्रकट किये :

"संसार के अनेक देशो में हिंसक साधनों द्वारा शान्ति और सुख प्राप्त करने के निष्फल प्रयास मे जो मानव-संहार और सम्पत्ति का विनाश हो रहा है, उसके बजाय अगर उन देशों ने गांधीजी के सिद्धान्त और कार्य-पद्धति का अनुसरण कर कार्य किया होता तो आज यूरोप और दूसरी जगह जो गम्भीर स्थिति उत्पन्न होगई है, और भयंकर परिमाण में जो हानि हो रही है, वह रोकी जा सकती थी। इतना ही नहीं, प्रत्युत संसार की अधिक प्रगति हुई होती और मानव-समाज का—सर्व-साधारण जनता का—कल्याण करना सम्भव होता। संसार में जो उथल-पुथल होती है, उसपर आज अपना नियन्त्रण नहीं है। किन्तु यदि गांधीजी के सिद्धान्त और कार्य-पद्धति को अमल में लाकर उसकी यथार्थता सिद्ध करने का अवसर हमे मिला तो हम केवल हिन्दुस्तान के ही प्रश्न को सफलतापूर्वक हल नहीं कर सकेंगे, बल्कि दूसरे राष्ट्रों और वहाँ की जनता का भी इस दिशा में मार्ग-दर्शन कर सकेंगे।"

जिस समय संसार के प्रमुख राष्ट्रों को अहिंसा की कार्यक्षमता का अनुभव होगा तब वे उसकी दीक्षा लेंगे और फिर 'विश्व-राष्ट्र-संघ' का निर्माण होगा। इस संघ मे प्रत्येक राष्ट्र उसकी एक इकाई के रूप मे सम्मिलित होगा। सारी सत्ता पहले विश्व-संघ में केन्द्रीभूत होगी और फिर वह प्रत्येक राष्ट्र में विभाजित की जायगी। प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक, आर्थिक और शैक्षणिक व्यवस्था

उस राष्ट्र के केन्द्रीय संघ के पास ही रहेगी। यदि किन्हीं दो राष्ट्रों में कोई विवाद अथवा झगड़ा खड़ा हुआ तो उस अन्तर्राष्ट्रीय विवाद को फैसले के लिए विश्व-संघ के पास भेजा जायगा, और उसका फ़ैसला इन युयुक्त राष्ट्र को मानना पड़ेगा। जो राष्ट्र विश्व-संघ के अनुशासन में नहीं रहेगा, विश्व-संघ उसका बहिष्कार करेगा और कोई भी राष्ट्र उसके साथ किसी तरह का सम्पर्क न रक्खे, यह आदेश जारी करेगा। ऐसा होने पर बहिष्कृत राष्ट्र विश्व-राष्ट्र-संघ से छिटक पड़ेगा।

ऊपर कहा ही जा चुका है कि प्रत्येक राष्ट्र की आन्तरिक व्यवस्था राष्ट्र के केन्द्रीय संघ के पास रहेगी। इस संघ में शामिल होनेवाले भिन्न-भिन्न प्रान्त इसकी इकाइयाँ होंगी। यदि इन प्रान्तों में किसी एक-दूसरे प्रान्त में आपस में कोई झगड़ा हुआ तो वह राष्ट्र के इस केन्द्रीय संघ के पास भेजा जायगा और उसका फ़ैसला इन दोनों झगड़नेवाले प्रान्तों को मानना होगा। राष्ट्रसंघ के आधार पर प्रान्तीय-संघ, ज़िलासंघ, ताल्लुकासंघ, ग्रामसंघ आदि भिन्न-भिन्न संघ स्थापित होंगे और अन्तिम इकाई गाँव होंगे। विश्व-राष्ट्र-संघ की केन्द्रीभूत सत्ता के विभाजन की क्रिया को यदि निर्दोष रखना हो तो अपना एक समुदाय बनाकर रहने वाले छोटे समाज तक अर्थात् गाँव तक वह पहुँचनी चाहिए।

नीचे दिये गये क्रम के अनुसार भिन्न-भिन्न इकाइयों की कल्पना स्पष्ट होगी—

विश्व-राष्ट्रसंघ
राष्ट्रसंघ
प्रान्तसंघ
ज़िलासंघ
ताल्लुकासंघ
ग्रामसंघ
ग्राम

प्रत्येक गाँव अपने आन्तरिक व्यवहारों में पूर्णरूप से स्वतन्त्र होगा, अर्थात् ऊपर बताये गये राष्ट्र की तरह राजनैतिक, सामाजिक, औद्योगिक,

आरोग्य और शैक्षणिक विषयों मे अपनी स्थानीय परिस्थिति के अनुसार सब समस्याओं का हल करेगा। इस प्रकार प्रत्येक गाँव स्वयं पूर्ण स्वायत्त और स्वावलम्बी होगा। केवल वस्त्र के ही सम्बन्ध मे कहना हो तो प्रत्येक गाँव ही क्या प्रत्येक घर वस्त्र-स्वावलम्बी होगा। उस समय हरेक घर मे चरखे चलते दिखाई देंगे। किसी भी गाँव में एक इञ्च भर भी विदेशी कपड़ा नही आयेगा। यह सब व्यवस्था अहिंसक आर्थिक-विधान (Planned Economy) के द्वारा पूरी की जा सकेगी।

प्रत्येक गाँव दूसरे गाँव के साथ हिल-मिल कर रहेगा। उनके आपस मे पूरा सहयोग रहेगा। इसी कल्पना को अगर सूत्ररूप में व्यक्त करना हो तो यों कहा जा सकेगा कि "मानव्यनिष्ठ अन्योन्य सहकारी, स्वावलम्बी और स्वायत्त गाँवों का निर्माण ही अहिंसा का राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक नीतिसूत्र है।"

प्रत्येक गाँव अगर इस तरह अहिंसामय, स्वायत्त और स्वावलम्बी हो जाय तो खादी का भविष्य उज्ज्वल होने मे कोई सन्देह नहीं है। इस तरह अगर घर-घर और गाँव-गाँव चरखे चलने लगे तो सात लाख गाँवों का संगठन होने मे बहुत अधिक समय नहीं लगेगा। उस दिशा मे स्वराज्य तो दूर रहेगा ही नही, साथ ही घर-घर 'समृद्धि, सुख और शान्ति' का साम्राज्य फैला हुआ दिखाई देगा।

समाजवादियों का भी ध्येय 'विश्व-राष्ट्र-संघ' स्थापित करना है, लेकिन वह इसी मार्ग से होगा, यह बात उनके ध्यान मे नहीं आती। उनका साधन हिंसा और हमारा साधन अहिंसा है—दोनों की पद्धति मे यही अन्तर है।

खादी-मीमांसा

[भाग २ : कार्य और तंत्र]

: १ :

चरखा-संघ का संक्षिप्त इतिहास

पहले अध्याय में खादी के सम्बन्ध मे तात्विक विवेचन किया गया है। अब इस दूसरे भाग मे खादी के प्रत्यक्ष कार्य के सम्बन्ध मे विचार करना है। देश मे खादी का प्रचण्ड काम करनेवाली संस्था 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' है। इस संस्था के कार्य का परिचय कराने से पहले यह देखना ज़रूरी है कि इस संस्था की स्थापना के पहले खादी का काम किस तरह चल रहा था।

महात्मा गांधी को चरखे की उपयुक्तता और कार्यक्षमता का अनुभव बहुत समय पहिले ही होगया प्रतीत होता है। उन्होंने सन् १९०८ मे विलायत से दक्षिण अफ्रीका जाते समय जहाज़ मे 'हिंद स्वराज' नाम की सुप्रसिद्ध पुस्तक लिखी थी। उसमें उन्होंने शुरू में ही चरखे का उल्लेख किया है।

सन् १९१५ में वह दक्षिण अफ्रीका छोड़कर स्थायीरूप से हिन्दुस्तान मे रहने के लिए आये और अहमदाबाद के निकट पहले कोचरब में और बाद को साबरमती में अपना सत्याग्रह आश्रम स्थापित किया। उस समय पहले-पहल प्रत्यक्ष कार्य का आरम्भ हुआ। पहली शुरूआत भी 'चरखे' से नहीं 'करघे' से हुई। पाठकों को आश्चर्य होगा कि जैसाकि महात्माजी ने स्वयं कहा है, "सन् १९०८ ई० तक चरखा अथवा करघा देखने का मुझे स्मरण तक नहीं था। इतना होने पर भी 'हिन्दस्वराज' लिखते समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि चरखे द्वारा ही हिन्दुस्तान की दरिद्रता नष्ट होगी, क्योंकि यह मानने मे कोई हर्ज नहीं है कि जिस उपाय से भुखमरी टलेगी उसी उपाय से स्वराज्य मिलेगा, यह बात सब के समझ मे आने जैसी है। सन् १९१५ ई० में दक्षिण अफ्रीका से

हिन्दुस्तान आया तबतक भी मैं चरखे के दर्शन नहीं कर पाया था। आया तब आश्रम स्थापित किया और करघा लगवाया।"[१]

करघा शुरू करने मे भी उन्हें कितनी अड़चनें उठानी पड़ीं और चरखे की शुरूआत पहले कहाँ से की जाय, इसकी खोज करने में उन्हे कितना प्रयत्न करना पड़ा, इसके सम्बन्ध में उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' के चौथे भाग में 'खादी का जन्म' शीर्षक और उसके बाद के अध्याय में अत्यन्त मनोरंजक जानकारी दी है। जिज्ञासुओं को वह सब मूल पुस्तक में अवश्य देखनी चाहिए।

लेकिन उक्त वर्णन मे से एक मुद्दे की ओर हम पाठकों का ध्यान ख़ासतौर पर आकर्षित करना चाहते है। वह यह कि सन् १९१७-१८ तक उन्होंने चरखा देखा तक नहीं था, तो भी 'जिस मार्ग से लोगो की भुखमरी टलेगी, उसी मार्ग से स्वराज्य मिलेगा—जनता की भुखमरी बढाने से स्वराज्य नही मिलेगा'—यह तत्व उन्हे सन् १९०८ मे ही मालूम हो गया था और इस बात का उन्होंने सन् १९०८ मे लिखी हुई अपनी 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक मे उल्लेख भी किया था, इससे उनकी दृष्टि कितनी व्यापक है, इसकी स्पष्ट ही कल्पना हो सकती है।

चरखे द्वारा हमें स्वराज्य प्राप्त होगा, यह बात उन्होंने पहले-पहल सन् १९१८ में प्रकट की।

सितम्बर सन् १९२० में कलकत्ता मे हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में कांग्रेस के प्रस्ताव में पहली बार खादी का उल्लेख हुआ। उसमे इस आशय का प्रस्ताव पास हुआ कि 'प्रत्येक स्त्री, पुरुष और बालक को देश के अनुशासन और स्वार्थ-त्याग का प्रतीक समझ कर सूत कातना चाहिए और हाथ से कते सूत के बने हुए वस्त्र का व्यवहार करना चाहिए।'

इसके बाद अगले पांच वर्षों मे खादी की जैसी-जैसी प्रगति होती गई, उसी तरह कांग्रेस उस सम्बन्ध मे अपनी नीति को किस तरह व्यापक करती गई, इसका हाल बड़ा मनोरंजक है।

१ आत्मकथा, भाग ४ अध्याय ३९

दिसम्बर १९२० मे नागपुर में हुए कांग्रेस के अधिवेशन मे कलकत्ता के ही प्रस्ताव को दुहराया गया।

मार्च सन् १९२१ मे बेजवाडा मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई थी। उसमें देश मे २० लाख चरखे चलाये जाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

उसके बाद भिन्न-भिन्न कांग्रेस कमेटियों ने खादी को अपने कार्यक्रम का एक अंग समझ कर उसका प्रचार किया।

सन् १९२२ मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने देश मे होनेवाले खादी के कार्य पर देख-रेख रखने के लिए एक स्वतन्त्र 'अखिल भारतीय खादी विभाग' का निर्माण किया।

सन् १९२३ में कोकनाड़ा में हुए कांग्रेस अधिवेशन मे अनेक प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों द्वारा स्थापित 'प्रान्तीय खादी संघों' के सहयोग से देश मे होनेवाले सारे खादी-कार्य पर देख-रेख और नियन्त्रण रखने के लिए 'अखिल भारतीय खादी-संघ' की स्थापना की गई।

सितम्बर सन् १९२५ मे पटना में हुई 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' ने 'अखिल भारतीय चरखा संघ' नाम की संस्था स्थापित की। उस सम्बन्ध मे जो महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, उसका आवश्यक अंश इस प्रकार है—

"क्योंकि हाथ से कातने की कला और खादी का विकास करने के लिए उसके विशेषज्ञों की एक संस्था स्थापित करने का समय आ पहुँचा है और क्योंकि अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि राजनीति, राजनैतिक उथल-पुथल और राजनैतिक संस्था के नियन्त्रण और प्रभाव से दूर रहने वाली एक स्थायी संस्था के बिना ऐसा विकास हो सकना सम्भव नहीं है, इसलिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की स्वीकृति से इस प्रस्ताव के द्वारा कांग्रेस में समाविष्ट किन्तु स्वतन्त्र अस्तित्व और सत्ता रखने वाली 'अखिल भारतीय चरखा संघ' नामकी संस्था स्थापित की जाती है।"

इस संस्था में (१) सदस्य (२) सहयोगी (३) आजीवन सहयोगी, और (४) विश्वस्त और कार्य-कारिणी समिति रहेगी।

इन सब को हमेशा और पूर्णतया खादी पहननी चाहिए। खादी की इस शर्त्त का पालन कर कोई भी स्त्री-पुरुष इसका सदस्य, सहयोगी और आजीवन सहयोगी बन सकता हैं; बशर्त्ते कि वह अठारह वर्ष से ऊपर की आयु का हो।

सदस्यों को प्रतिमास अपने हाथ का अच्छा वटदार और एक-सा कता हुआ १००० गज़ सूत फीस के रूप में देना होगा।

सहयोगियों को प्रतिवर्ष बारह रुपये पेशगी देना होगा।

आजीवन सहयोगियों को एक साथ पांच सौ रुपये देने होंगे।

विश्वस्त और कार्यकारिणी समिति—इस समिति में कुल पंद्रह सदस्य होंगे।

इनमे नीचे लिखे बारह सदस्य—यदि वे बीच ही में छोड़ न दें तो—आजीवन सदस्य रहेंगे। बाक़ी के तीन सिर्फ़ एक वर्ष ही इसके सदस्य रहेंगे। इन तीन सदस्यों को साधारण सदस्य अपने मे से चुनकर भेजेंगे। शर्त्त सिर्फ़ यही है कि सभासदों की सूची मे लगातार दो वर्षों से इनका नाम दर्ज हो अर्थात् ये दो वर्ष तक लगातार प्रतिवर्ष बारह-बारह हज़ार गज सूत देते रहे हों।

उपरोक्त बारह आजीवन सदस्यों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) महात्मा गांधी, (२) सेठ जमनालाल बजाज, (३) श्री राजगोपालाचार्य, (४) श्रीगंगाधर राव देशपाण्डे, (५) श्री कोंडा-व्यंकटपय्या, (६) बाबू राजेन्द्र प्रसाद, (७) पं० जवाहरलाल नेहरू, (८) श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त, (९) श्री वल्लभ भाई पटेल, (१०) श्री मणिलाल कोठारी, (११) श्री रणछोड़लाल अमृतलाल और (१२) श्री शंकरलाल बैंकर।[1]

१. इनमे से श्री मणिलाल कोठारी का स्वर्गवास होगया और सर्वश्री सतीशचन्द्र दास गुप्त, रणछोडलाल और राजगोपालाचार्य ने इस्तीफा दे दिया। इस प्रकार खाली हुई चार जगहो पर क्रमश सर्वश्री (१) गोपबन्धु चौधरी, (२) धीरेन्द्र मजूमदार (३) श्री कृष्णदास जाजू और (४) लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास आसर चुने गये हैं।

इनमें से इस्तीफे, मृत्यु अथवा अन्य किन्हीं कारणों से कोई जगह ख़ाली हुई तो बाक़ी के सदस्य उसकी पूर्ति कर लेंगे। आजीवन सदस्यों की जगह जिनकी नियुक्ति होगी वे आजीवन काम करते रहेंगे और प्रतिवर्ष चुने जाने वाले सदस्यों की जगह पर नियुक्त होनेवाले सदस्य बाक़ी बचे हुए समय तक काम करेंगे।

इस समिति को (१) चन्दा इकट्ठा करने, (२) स्थावर सम्पत्ति की व्यवस्था देखने, (३) पैसे सुरक्षित रखने, (४) जायदाद गिरवी देने-लेने (५) खादी-शिक्षण संस्थायें स्थापित करने, (७) खादी भंडारों को सहायता देने अथवा नये भंडार खोलने और (८) खादी-सेवकों की योजना करने आदि सब महत्व के और उत्तरदायित्वपूर्ण काम करने होंगे। संक्षेप में कहा जाय तो संस्था के विकास के लिए जो-जो बातें करना आवश्यक और उचित प्रतीत हो, वह सब उसे करनी होंगी। इस के लिए कांग्रेस ने एक प्रस्ताव कर तिलक-स्वराज्य-फण्ड में से २० लाख रुपये इस संस्था—चरखा संघ—को दिये हैं। इस समिति का केन्द्रीय दफ्तर अहमदाबाद में है, और उसे अपना अध्यक्ष, मन्त्री और ख़ज़ानची अपने में से ही चुनना होता है। यह चुनाव तीन वर्षों तक रहता है, बाद को फिर चुनना पडता है।

संस्था ने २७ लाख रुपये की पूँजी से अपने कार्य की शुरुआत की। अवश्य ही यह पूँजी भिन्न-भिन्न प्रान्तीय शाखाओं और दूसरे खादी-केन्द्रों में बाँटी गई है।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' की कुल १५ शाखायें हैं। प्रत्येक प्रान्त में खादी के काम में दिलचस्पी रखनेवाले श्रद्धावान् और प्रभावशाली सज्जन एजेन्ट के तौर पर नियत किये जाते हैं। यह नियुक्ति अखिल भारतीय चरखा-संघ की ओर से होती है। एजेण्ट पर अपने प्रान्त के खादी-कार्य-सम्बन्धी सब तरह की ज़िम्मेदारी होती है। ये एजण्ट अखिल भारतीय चरखा-संघ के प्रति उत्तरदायी होते हैं। बिना कहे ही यह बात समझ लेना चाहिए कि इन एजेण्टों को अवैतनिक ही काम करना पड़ता है।

अखिल भारतीय चरखा-संघ की कुल १५ शाखाओं में एक शाखा महाराष्ट्र में भी है। इस महाराष्ट्र मे बम्बई इलाक़े के मराठी भाषी ११ ज़िले और खास-खास देशी रियासतें, निज़ाम के मराठी इलाके के ५ ज़िले, बरार के चार ज़िले और मराठी मध्यप्रान्त के चार ज़िलों का भी समावेश होता। इस समय 'महाकोशल' का भी खादी-कार्य महाराष्ट्र चरखा-संघ के द्वारा ही होता है।

अखिल भारतीय चरखा-संघ की स्थापना के समय से ही उसका ध्येय (१) देश के करोडों बेकार लोगों को सहायक धन्धा देना, (२) लोगों को वस्त्र-स्वावलम्बी बनाना, वे अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार खादी तैयार करले। आवश्यकता से अधिक हो तो अपने पडोस अथवा आस-पास बेचलें, और (३) विदेशी वस्त्र का बहिष्कार करना था। इस ध्येय को दृष्टि के सामने रखकर उसने (१) खादी के औज़ारों में उन्नति करने, (२) यथासम्भव खादी की उत्पत्ति बढाने और (३) खादी का माल अधिकाधिक सुन्दर, मुलायम और सस्ता करने का प्रयत्न किया। खादी की लोक-प्रियता और उसकी बढती हुई खपत देखकर मिलवालों ने अपने माल को भी खादी का ही बनाने का प्रयत्न शुरू किया, तब इस मनोवृत्ति पर रोक लगाने के लिए, मिलवालों और चरखा-संघ की ओर से महात्मा गांधी के बीच सन् १९२९ मे यह समझौता हुआ कि—

(१) मिलवाले अपने माल पर ख़ास तौर से ऐसी मुहर लगावे जिससे यह सहज ही झलक जाय कि यह माल खादी से भिन्न है;

(१) उन्हें अपने माल को न तो 'खादी' बताना चाहिए, न उसपर इस आशय की मुहर ही लगानी चाहिए।

(३) मिलवाले खादी मे मिल सकनेवाला अथवा उससे स्पर्धा कर सकनेवाला माल तैयार न करें। इसके लिए उन्हें कुछ निश्चित नमूनों के अपवाद छोड़कर, १८ नम्बर से ऊपर के ही सूत का माल तैयार करना चाहिए।

दुःख की बात है कि मिल-मालिकों ने सत्याग्रह-आन्दोलन कमज़ोर रहने तक ही इस समझौते पर अमल किया। सन् १९३१ के आरम्भ मे

हुई गांधी-इरविन-सन्धि के बाद से ही उन्होंने इस समझौते के विरुद्ध काम करना शुरू कर दिया।

संक्षेप में कहा जाय तो १९२५ से १९३३ तक होनेवाला खादी-कार्य बेकार और आर्त्त लोगों को सहायता और सुविधा पहुँचाने के रूप मे था। किन्तु सन् १९३३ के हरिजन-दौरे मे देश की स्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करते समय महात्माजी को यह अनुभव हुआ कि अभीतक जो खादी-कार्य हुआ, वह शहरी ग्राहक किस तरह खुश हों, इस बात को सामने रखकर हुआ है। अभीतक शहरी ग्राहकों को (१) उनकी इच्छानुसार मुलायम, (२) यथासम्भव सस्ती, (३) आवश्यक परिमाण मे और (४) जहाँ वे हों वहीं पहुँचाने के लिए यथासम्भव प्रयत्न किया गया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ऐसा प्रयत्न करने का हेतु किसानों को सहायक धन्धा देना तो था ही, साथ ही इस रचनात्मक कार्य की ओर शहरी लोगो का ध्यान आकर्षित करना भी था।

हरिजन-दौरे के बाद महात्माजी ने अखिल भारतीय चरखा-संघ के ध्येय में परिवर्त्तन किया। ३-४ अप्रैल सन् १९३४ को वर्धा मे संघ की कार्यसमिति की बैठक होकर उसमे खादी उत्पत्ति और वस्त्र-स्वावलम्बन की प्रगति को ध्यान में रखकर निश्चय किया गया कि—

(१) खादी जहाँ पैदा होती हो उसी गाँव में और उसके आसपास के इलाक़े में खपाई जाय, और (२) विशेषतः कातनेवाले, जुलाहे और उनके आस-पास के कुटुम्बों के हृदय मे यह बात बिठा देने का प्रयत्न होना चाहिए कि उन्हें अपने ख़ुद के लिए आवश्यक वस्त्रों की पूर्त्ति के लिए स्वयं कातना, बुनना और अपने ही गाँव में तैयार हुई खादी वापरनी चाहिए, और इसी पर ज़ोर देकर जोरों से प्रयत्न किया जाय।

इन लोगो के लिए खादी का व्यवहार सुगम हो, इसके लिए खादी-भण्डारों के व्यवस्थापको को यह सूचना प्रकाशित करनी चाहिए कि इन्हें लागत के मूल्य मे ही खादी दी जायगी।

प्रत्येक गांव वस्त्रस्वावलम्बी हो और जहां खादी तैयार हो, वहीं वह

बेची जाय, खादी-कार्य का यह ध्येय पहले भी था; लेकिन अब उस पर अधिक ज़ोर दिये जाने के कारण उसको अधिक प्रोत्साहन मिला।

अखिल भारतीय चरखा-संघ ने बेकार और दरिद्र लोगों का जीवन अधिक समृद्ध और सुखी करने लिए जो प्रयत्न किये, उसके तीन भाग हैं। उनमें का यह पहला भाग है।

इस ध्येय के अनुसार चरखा-संघ ने १९३४ के अप्रैल से सन् १९३५ के अक्तूबर तक कारीगरों को यथासम्भव वस्त्र-स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न किया; लेकिन इससे ही महात्माजी का समाधान नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि खादी की विविध क्रियाओं में 'कातने' की क्रिया अत्यन्त महत्वपूर्ण है, लेकिन इतना होनेपर भी खादी के दूसरे सब मजदूरों में कातनेवालों की मज़दूरी बहुत कम होती है। इसलिए उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें उनकी अन्न-वस्त्र की आवश्कता पूरी हो सकने जितनी मज़दूरी मिलनी चाहिए और इसके लिए ११ अक्तूबर १९३५ को वर्धा में चरखा-संघ के कार्य-वाहक मण्डल की नियमित बैठक बुलाकर उसमें नीचे लिखा हुआ महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास करवाया—

"इस कार्यकारिणी-समिति की यह राय है कि कत्तिनों को अभी जो मजदूरी दी जाती है, वह पर्याप्त नहीं है; इसलिए यह समिति निश्चय करती है कि मज़दूरी की दर में वृद्धि की जाय, और उसका एक ऐसा उचित पैमाना निश्चित कर दिया जाय कि जिससे कत्तिनों को उनके आठ घण्टों के सन्तोष-जनक काम के हिसाब से कम-से-कम इतना पैसा मिल जाय कि जिससे उन्हें कम-से-कम अपनी ज़रूरत भर का कपड़ा (सालाना २० गज़) और वैज्ञानिक रीति से नियत किये हुए आहार के पैमाने के अनुसार भोजन मिल सके। अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार सभी शाखाओं को कताई की मज़दूरी के अपने-अपने पैमानों को तबतक बढाने की कोशिश करनी चाहिए जबतक कि ऐसा पैमाना बन जाय जिससे हरेक कत्तिन के कुटुम्ब का पालन-पोषण उस कुटुम्ब के काम करनेवालों की कमाई से हो सके।"

अखिल भारतीय चरखा-संघ के कार्य की प्रगति का यह दूसरा भाग

है। इस प्रस्ताव से एक बात यह स्पष्ट होती है कि अभीतक जो यहाँ मान बैठे थे कि कातनेवालो का धन्धा सहायक धन्धा है, इससे उन्हें कम मज़दूरी देने से भी काम चल जायगा, वह विचारसरणी ग़लत थी। अतः सहायक धन्धा होने पर भी वह धन्धा ही है, इसलिए उसकी मज़दूरी पूरी पडनी चाहिए, यह नीति निश्चित की गई।

यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि हिन्दुस्तान मे सबसे पहले महाराष्ट्र चरखा-संघ ने इस प्रस्ताव पर अमल किया।

यह प्रस्ताव खादी के सब मज़दूरों के लिए हितकर सिद्ध हुआ; इतना ही नहीं भिन्न-भिन्न प्रान्तों के कार्य-कर्त्ताओं को अपने-अपने प्रान्तों के खाद्य-पेय पदार्थों और उनके गुण-धर्म का शास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन कर उनके भाव की भी जानकारी प्राप्त करनी पड़ी और इस दृष्टि से उनके ज्ञान मे इतनी और वृद्धि हुई।

अगर यह कहा जाय तो कोई हर्ज नहीं है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के खाने-पीने की वस्तुओं के भावों का विचार कर सामान्यतया प्रत्येक प्रान्त मे कम-से-कम मज़दूरी दो आना से लेकर तीन आने तक ठहरी। आरम्भ में तो कार्यकर्त्ताओ को यह डर लगा कि इस दर-वृद्धि के कारण खादी के भाव में वृद्धि होने से उसकी खपत पर अनिष्ट परिणाम होगा, और दूसरी ओर कातनेवालो की तादाद बढ जायगी। लेकिन सौभाग्य से उनका यह डर ग़लत निकला। मज़दूरों की दृष्टि से विचार करने पर बढी हुई मज़दूरी का परिणाम भी चाहिए था, उससे भी अच्छा हुआ! बढी हुई मज़दूरी से उनकी थोडी-सी आर्थिक सहायता हो गई; उनका उत्साह बढा; इतना ही नहीं, नैतिक दृष्टि से उनकी स्वावलम्बन की ओर प्रवृत्ति अधिक बढी।

इस बढी हुई मज़दूरी का एक यह महत्वपूर्ण लाभ और हुआ। कार्य-कर्ता के सामने जब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि मज़दूरों को कम-से-कम तीन आने रोज़ मजदूरी मिलनी ही चाहिए, तब उनका ध्यान साधनों मे उन्नति करने की ओर तीव्रता से खिंचा और उस दृष्टि से खादी के उपकरणों में अनेक सूक्ष्म सुधार हो गये हैं और मज़दूरों

की कार्य-क्षमता बढाने का भी प्रयत्न जारी है। मज़दूरी की दर बढाने से पहले सब मज़दूर ज्यों-त्यों अपना काम पूरा कर देने की धुन में रहते थे। पहले उन्हें उनके काम में किसी तरह का सुधार करने को कहने पर वे उसे सुना-अनसुना कर देते थे; लेकिन अब सुधार को ध्यानपूर्वक अमल मे लाने की दिल से कोशिश करते हैं। कातनेवाली स्त्रियों का सूत अब अधिक मज़बूत, बटदार और एक-सा आने लगा है। इतना ही नहीं, उनकी कातने की गति भी बढी है। अच्छा चरखा और अच्छी पिंजी हुई रुई की पूनियाँ दी जाने पर सामान्य कुशल कतवैया एक घण्टे मे ४०० गज़ सूत कात सकता है। यह प्रत्यक्ष देखने मे आया है कि बढी हुई मज़दूरी के कारण खादी की सब क्रियाओं मे स्थायी उन्नति का काफ़ी मौक़ा है। ऐसे चिह्न दिखाई देने लगे है कि अगर इस तरह सब क्रियायें कुशलतापूर्वक की जाने लगीं तो मज़दूरों को जीवन-वेतन (Living wage) देने जैसी स्थिति पैदा हो जायगी, जिससे ग़रीब-से-ग़रीब मज़दूर तक को अपनी कार्यक्षमता के बारे मे आत्मविश्वास अनुभव होगा और आगे चलकर वह अपना जीवन व्यवस्थित रूप से बिता सकेगा। सिर्फ़ कार्यकर्त्ताओं को यह स्थिति पैदा करने के लिए अधिक उत्साह, दृढनिश्चय और निष्ठा के साथ इस काम को आगे बढाना चाहिए।

सन् १९३८ के आखिरी मार्च में डेलॉग में अखिल भारतीय चरखा-संघ के कार्यवाहक मण्डल की बैठक हुई थी। इस बैठक मे महात्माजी ने हृदय-द्रावक भाषण दिया था। उसमें उन्होंने कहा था कि आठ घण्टे तक सन्तोषजनक और कुशल कतवैये को आठ आने मज़दूरी दी जानी चाहिए। लेकिन इस सम्बन्ध की अन्य कठिनाइयों का विचार कर मण्डल ने अभी इस आशय का प्रस्ताव किया है कि "खादी-कार्य की प्रगति को धक्का न पहुँचाकर कतवैये को अधिक मज़दूरी देने के सम्बन्ध में संघ की भिन्न-भिन्न शाखाओं की ओर से जो योजनायें आवें, मण्डल के अध्यक्ष और मन्त्री को उन सबके स्वीकार करने का अधिकार दिया जाता है।"[1] इस प्रस्ताव के अनुसार महाराष्ट्र चरखा-संघ ने एक और क़दम आगे रक्खा है।

१. अखिल भारतीय चरखा-सघ का वार्षिक विवरण सन् १९३०

सारे भारतवर्ष भर में पहले-पहल महाराष्ट्र चरखा-संघ ने ही तीन आने रोज़ के हिसाब से मज़दूरी देने का निश्चय किया और अब अच्छा कातनेवालों को छः आने तक मज़दूरी देने का पहला साहस भी उसीने किया है; इसके लिए उसका अभिनन्दन करना चाहिए। इस दर से अच्छे-से-अच्छे कातनेवाले के लिए वर्तमान साधनों से ही आठ आने मजदूरी कमा सकने की सम्भावना है।

अखिल भारतीय चरखा-संघ के कार्य की प्रगति की यह तीसरी सीढी है।

यहाँतक के संक्षिप्त विवरण से पाठकों के ध्यान में यह बात आ ही गई होगी कि सारे हिन्दुस्तान मे 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' ही एक ऐसी प्रचण्ड संस्था है जो गाँव-गोठों के लाखों मज़दूरों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आकर उनकी आर्थिक और नैतिक उन्नति करने मे सहायता पहुँचाती है।

: २ :

अखिल भारतीय खादी-कार्य

पिछले अध्याय में 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। उसमें यह दिखाया गया है कि देश के बेकार और दीन-दुःखी लोगों को काम देकर उनको पर्याप्त मज़दूरी देने और उनका जीवन सुखी और समृद्ध बनाने के लिए संघ कैसा प्रयत्न करता है। इस अध्याय में संघ का कार्य कितने विस्तृत परिमाण में चल रहा है, हम इस बात पर विहंगम दृष्टि डालने का प्रयत्न करेंगे।

खादी तैयार करने की दो पद्धतियाँ हैं। एक धन्धा देनेवाली व्यापारिक पद्धति और दूसरी स्वावलम्बी पद्धति। व्यापारिक पद्धति में सब काम मज़दूरी द्वारा होते हैं। स्वावलम्बी पद्धति में रुई चुनने से लेकर कातने तक की अधिकतर सब क्रियायें यथासम्भव घर-के-घर में अपने आप ही करनी पड़ती है। हिन्दुस्तान मे इन दोनों ही पद्धतियों से काम हो रहा है।

व्यापारिक पद्धति

पहले हम व्यापारिक पद्धति से होनेवाले कार्य पर नजर डालेंगे।

सारे हिन्दुस्तान भर में जो खादी-कार्य हो रहा है वह 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' की अपनी निजी शाखाओं और उससे प्रमाणपत्र प्राप्त स्वतन्त्र संस्था अथवा व्यापारियों के द्वारा हो रहा है। संघ ने सन् १९३५ मे औसत जीवन-वेतन देने का जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है, वह प्रस्ताव इन प्रमाणित संस्थाओं और व्यापारियों पर भी लागू है। जो संस्थायें अथवा व्यापारी इस प्रस्ताव के अनुसार अमल करना स्वीकार नहीं करते उन्हें प्रमाणपत्र नहीं दिये जाते।

'अखिल भारतीय चरखा-संघ' के कार्य का विस्तार कितना हुआ है,

यह बात नीचे दिये हुए अङ्कों से प्रकट होगी। ये अङ्क संघ के सन् १६३७ के कार्य-विवरण से लिए गये हैं, और इनमें चरखा-संघ और प्रमाणित संस्था और व्यापारी सभी के कार्य का समावेश है।

पिछले अध्याय में यह कहा ही जा चुका है कि चरखा-संघ की पूँजी २७ लाख रुपये है। सारे हिन्दुस्तानभर मे कुल ६०६ उत्पत्ति-केन्द्र और ५७८ विक्री-भण्डार हैं। उत्पत्ति-कार्य का विस्तार १०,२८० गाँवों में फैला हुआ है और उनमें १,७७,४६६ कतवैये और १३, ५६८ बुनकर—जुलाहे हैं। इनके सिवा दूसरे मज़दूर भी बहुत से हैं। खादी-कार्य मे लगे हुए कार्यकर्त्ताओं की संख्या १,८६६ है। १६३७ मे खादी की उत्पत्ति ३०,१५,३३६ रु० की और विक्री ४५,३२,७२६ रु० की हुई है।[1]

साथ मे दिये हुए कोष्टक से भिन्न-भिन्न प्रान्तों की खादी-विषयक कार्यक्षमता का परिचय मिलेगा। पहला कोष्टक अखिल भारतीय चरखा-संघ के कार्य का और दूसरा संघ द्वारा प्रमाणित संस्थाओं और व्यापारियों के कार्य का है।

१. खादी की उत्पत्ति और खपत में किस तरह वृद्धि होती है, यह बात सन् १९३८ के पहले छः मास का इस सम्बन्ध का जो विवरण प्रकाशित हुआ है, उससे प्रकट होगी। तुलना के लिए साथ में उसी समय के सन् १९३७ के अंक भी नीचे दिये जाते हैं :

क्रम संख्या	प्रांत का नाम	उत्पत्ति १९३८	उत्पत्ति १९३७	बिक्री १९३८	बिक्री १९३७
		रुपये	रुपये	रुपये	रुपये
१	आन्ध्र	१,९६,९६७[1]	७७,३१७	१,१७,६१५[1]	८१,३७६
२	आसाम	४०५	५३०	८९८	५६९
३	बगाल	२,७६,०३४	१,३२,४५४	२,०९,४०७	१,७०,७३६
४	बिहार	८७,३९३[1]	४४,२१७	९६,५१८[1]	९४,७६७
५	बम्बई	०	०	२,३२,६८८	२,०८,०४७
६	ब्रह्मदेश	०	०	३७,४०६	३३,२२२
७	गुजरात (काठियावाड)	३३२	१,२१७	२,१९,०५०	१,६०,७९३
८	कर्नाटक	८०,८९९	४३,५२९	१,२५,८९७	९०,३४६
९	काश्मीर	१,०८,६१५	१,२५,८८५	२५,७२५	३५,७८१
१०	केरल	५१,१३६	१९,१५५	४३,६९१	३०,७२४
११	महाराष्ट्र	२,८०,१६८	१,४३,४९९	३,२७,६९४	२,३१,६४३
१२	पजाब	१,३१,६८५[1]	९६,२५१	९४,३००	७०,१५८
१३	राजस्थान	१,०८,६५७	५०,४७०	३७,८३७	३१,०६७
१४	सिंध	४,९७८	१,९६९	२८,६९२	३९,९०७
१५	तामिलनाड	७,४३,७८२	२,९३,१४४	३,८३,०१०	३,१७,५३२
१६	सयुक्त प्रात	३,५२,६४२[1]	१,४२,१८८	३,२४,३७६	२,४५,०६७
१७	उत्कल	१४,२५०	५,७३३	१५,३३६	६,६२३
	योग	२४,३७,९३३[1]	११,७७,५५८	२३,२०,१४०	१८,४८,३५८

१. अक अपूर्ण है ।

अखिल भारतीय चर्खा-संघ का कार्य

क्रम	प्रान्त का नाम	उत्पत्ति रुपये	बिक्री रुपये	गावो की सख्या	कातने वालो की सख्या	बुनकरो की सख्या	चरखा-सघ के कार्यकर्त्ता	नोट
१	आन्ध्र	१,७७,०३४	२,१७ ५८०	२९९	८,००८	६८७	९२	खादी से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे मजदूर, उदाहरणार्थ खादी धोनेवाले धोवी, रगने वाले रगरेज, छापने वाले छीपे, चरखा बनाने वाले बढई, लुहार आदि के अक-उपलब्ध न होनेके कारण इस कोष्टक मे उनका समावेश नही हो सका है।
२	आसाम	२,९९३	२,७७५	७३	१,४७७	१०३	८	
३	बिहार	२,९८,९९३	२,५६,५९४	१,०३६	२७,३८७	१,०२६	३०५	
४	बगाल	८१,०७७	५४,११७	१९३	१०,३०७	४९५	५२	
५	बम्बई	०	३,७८,०१४	०	०	०	५७	
६	बर्मा	०	६६,९७०	०	०	०	४	
७	गुजरात	१,६३५	४०,८४३	३५	५२	४	४	
८	कर्नाटक	५२,६८८	१,५२,५१५	१६४	३,६०२	२८३	५३	
९	काश्मीर	२,७५,२५४	९०,६८३	१,०६३	६८०[1]	३३८	६७	
१०	केरल	४८,३७७	७३,०४४	११८	२,६९७	२३२	२०	
११	महाराष्ट्र	३,५३,०४०	५,१३,३५२	६६७	१६,२२१	६,५५२[1]	२६२	
१२	पजाब	१,५३,८००	१,६४,२०४	६२७	७,०११	९७५	८७	
१३	राजस्थान	७२,६७४	६९,६७९	११०	४,८५६	५९३	७७	
१४	सिन्ध	७,०२५	२७,५६४	६०	१,४९२	४०	७	
१५	सयुक्तप्रात	२,६०,२१६	५,३७,०००	१,८११	३०,९५३	२,३५०	२९८	इसमे मुख्य कार्यालय के १६ और अनन्तपुर के ६ कार्यकर्त्ता शामिल है।
१६	तमिलनाड	५,४१,७५०	७,३३,७९७	२,४९५	३४,९८१	२,११०	२१३	
१७	उत्कल	२६,४८९	१५,२९१	७०	८८३	१४०	२२	
	योग	२३,५३,०४५	३३,७४,०२२	८,८२१	१५०,६०७	१५,९२८	१,६२८	

१. अपूर्ण

अखिल भारतीय चरखा-संघ द्वारा प्रमाणित संस्थाओं और व्यापारियों का कार्य

क्रम संख्या	प्रान्त का नाम	खादी की उत्पत्ति रुपये	खादी की बिक्री रुपये	गावों की संख्या	कातनेवालों की संख्या	बुनकरों की संख्या	कार्यकर्ताओं की संख्या
१	आन्ध्र	१ २३,५८१	३९,६१६	२५४	५,४६३	२६३	४०
२	बिहार	०	०	९	२४	७	०
३	बगाल	९५,२११	१,५७,७१९	५१	१,३६६[1]	५०[1]	२३
४	बम्बई	०	६६,४४०	०	०	०	१९
५	गुजरात	०	३,७७,६२४	०	०	०	३५
६	कर्नाटक	६२,४५३	४२,५७८	१६४	३,३४३[1]	१९[1]	२५
७	महाराष्ट्र	०	३४,९८१	०	०	०	५
८	पजाब	४२,५८९	३२,७३२	११७	२३,०७५	१४२	०
९	राजस्थान	६१,७५६	३,४९३	५४	३,०३२	५१४	२१
१०	सयुक्तप्रात	१,६९,२९८	१,३१,९६७	२७८	८,७०२	६८३	५६
११	सिन्ध	०	४९,५३५	०	०	०	०
१२	तमिलनाड	१,०३,८४४	१,३९.२९०	२५५	३,८३९	२६९	१२
१३	उत्कल	३,३५८	३,९१४	०	०	०	०
	योग	६,६८,०९८	१०,७९,८८९	११८२	२८१४४	१९४७	२३६

साथ के कोष्टकों से पाठकों को खादी की उत्पत्ति, बिक्री और कातने और बुननेवालों की संख्या का परिचय मिल जायगा, किन्तु कातने और बुननेवालों को प्रत्यक्ष कितनी मज़दूरी मिलती है, उसका पता नहीं लगेगा। उसके लिए वे नीचे के कोष्टक पर दृष्टि डालें—

१. अपूर्ण

प्रान्त का नाम	बुनकर (जुलाहो) की मजदूरी		कातनेवालो की मजदूरी	
	१९३७	१९३६	१९३७	१९३६
	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये
आन्ध्र	३३,५१४	१८,६७१	६८,६४५	२६,७६८
आसाम	अक नही मिले	७२०	अक नही मिले	८७२
विहार	४४,२१२	४७,८७३	१,२८,२५६	१,०२,३६१
बगाल	११,५९८	१४,३१७	२०,२१६	२५,४८३
गुजरात और काठियावाड़	२८३	७५	४८२	२९४
कर्नाटक	१२,६५३	९,८३५	१०,४२३	१२,६७२
काश्मीर	३८,०९७	०	८४,३५७	०
केरल	१०,७५७	६,०९२	१९,४१६	९
महाराष्ट्र	८३,९२२	५३,५६४	१,४७,६६२	१,१३,१६१[1]
पजाव	७८,६१७	२२,६०५	४५,७७८	३०,४४१[2]
राजस्थान	१९,९८६	७,९६९	१८,६४३	७,६७०
सिन्ध	२,५५६	३,१३५	१,०४१	२,४०६
तामिलनाड	१,४५,५४२	१,१०,७७१	२,६५,९३१	२,१३,७३२[3]
सयुक्तप्रान्त	७३,०९७	३९,३२२	१,२५,४९८	३८,४१४[4]
उत्कल	४,६४७	२,३१३	४,३०६	३,५३१
योग	५,५९ ४७६	३,३६ ७६२	९,४०,८०४	५,८६,५५२

१. इसमे पिंजाई की मजदूरी के १७ ३४७ रु० शामिल है।

२. " " ५,१८४ "

३. " " २६,६०२ "

४. अपूर्ण

चरखा-संघ द्वारा प्रमाणित संस्था

प्रान्त का नाम	जुलाहो की मजदूरी		कातनेवालो की मजदूरी	
	१९३७	१९३६	२९३७	१९३६
आन्ध्र	३३,५६१	२७,१२५	२०,०२९	३२,५०६
बगाल	१३,०२२	४,८१८	१७,२०४	८,०००
कर्नाटक	६,३०४	१३,४०१	१९,६१४	१६,४१२
पजाब	५,५७२	६,४९५	५,६८६	१४,३६६
राजस्थान	१७,७१६	१२,५६३	२३,७४६	१७,०८४
तामिलनाड	२२,८१२	३५,२०३	४२,६७२	८३,१२०[1]
सयुक्त प्रात	२६,६५२	२७,४०९	४२,४१७ .	२४,१६४
कुल योग	१,२५,६३९	१,२७,०१४	१,७१,३६८	१,९५,६५२

अब यह जानना बोधप्रद होगा कि यह मज़दूरी भिन्न-भिन्न समाजों मे किस प्रकार विभक्त होती है। उसके लिए नीचे के अंक देखिए—

चरखा-संघ के मज़दूर

धन्धा	कुल संख्या		सवर्ण हिंदू,	हरिजन	मुसलमान[2]
कातनेवाले	१,४९,२५२	इनमें	९०,६०१,	१५४४६	४३१२५
बुनकर (जुलाहे)[3]	११,४७९	इनमें	४,९५७	२८२५	३६६२

प्रमाणित संस्थाओं के मज़दूर

धन्धा	कुल संख्या		सवर्ण हिंदू,	हरिजन	मुसलमान
कातनेवाले	२८,१४४	इनमें	१,६४९	४९४	७,१०३
बुनकर (जुलाहे)	२,११९	,,	५७२	१०,७७	२००

१. इसमें पिंजाई की मजदूरी के ९,५२० रुपये शामिल हैं।

२. कातनेवाली स्त्रियो मे उत्कल, बगाल, सयुक्तप्रान्त तथा पजाब आदि प्रान्तो की कुछ स्त्रिया मुसलमान हैं, महाराष्ट्र के सावली और चांदा केन्द्र की अधीनता मे कातनेवाली स्त्रिया 'हरिजन' हैं।

इसी तरह बगाल, बिहार आदि प्रान्तो में कुछ बुनकर (जुलाहे) मुसलमान हैं और पजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, तामिलनाड, उत्कल आदि प्रान्तो के जुलाहे 'हरिजन' हैं।

जिन प्रान्तो में पिंजाई का काम पिंजारो से लिया जाता है, वहाँ के पिंजारे मुसलमान हैं।

३. कुछ प्रान्तो के अक न मिलने के कारण यह संख्या अधूरी है।

उपरोक्त अङ्कों से इस बात की कल्पना होगी कि अखिल भारतीय चरखा-संघ, उसके द्वारा प्रमाणित संस्थायें और व्यापारी कितनी खादी तैयार करते हैं। लेकिन इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि हिन्दुस्तान में तैयार होनेवाली खादी इतनी ही है। हिन्दुस्तान के कुछ प्रदेश, उदाहरणार्थ पंजाब, राजस्थान, संयुक्तप्रांत, निज़ामराज्य और आन्ध्र का कुछ भाग ऐसा है कि जहाँ खादी के व्यवहार की प्रथा पहले से चली आरही है और वह उन्होंने क़ायम रक्खी है। उनका इस प्रकार खादी वापरना 'वस्त्र-स्वावलम्बन' नहीं हो सकता; क्योंकि इन भागों में हाथ के कते सूत के बाजार लगते हैं; लोग इन बाजारों से सूत बिकाऊ लेते हैं और उसे जुलाहों से बुनवा लेते है। इसके सिवा यहाँ इस तरह का हाथ का सूत बुन कर उसकी खादी भी बिक्री के लिए बाज़ार मे आती है। कुछ लोग इस तरह बनी-बनाई खादी बिकाऊ ले लेते हैं। इस तरह उपरोक्त प्रदेशों में बहुत से किसान ऐसे है जो दोनों तरह की खादी वापरते है। कहीं-कहीं तो ऐसे किसानों की संख्या ५० फीसदी तक पहुँची हुई दिखाई देती हैं।

पाठकों के ध्यान मे यह बात आ ही गई होगी कि आरम्भ में ही खादी की यह व्याख्या की जा चुकी है कि जो कपड़ा हाथ का कता और हाथ का बुना हुआ हो, फिर चाहे वह सूती हो, रेशमी हो अथवा ऊनी हो, वही खादी कहलायगा। अतः अब हम यह देखेंगे कि अखिल भारतीय चरखा-संघ द्वारा केवल रेशमी अथवा केवल ऊनी खादी कहाँ और किस परिमाण में तैयार होती है।

रेशमी माल के लिए बंगाल पहले से ही प्रसिद्ध है। अभी तक भी उत्पत्ति और सुघड़ता मे बंगाल का नम्बर पहला है। इसके लिए नीचे के अंक देखिए—

रेशमी खादी की उत्पत्ति सन् १९३७

प्रान्त	मूल्य
आसाम	११,७९७ रु०
बिहार	६,५१२ ”

बंगाल	१७६,०७७ "
कर्नाटक	१४,५०० "
	२,०८,८८७ रु०

'ऊनी' माल विशेषतः काश्मीर और सिन्ध के गढ़ो स्थान पर होता है। इन दोनों जगहों पर कुल मिला कर चरखा-संघ ने १,५०,००० रु० की पूँजी लगाई है और वहाँ सन् १९३७ में क्रम से २,७५,२५४ और ७,०२५ रु० का माल तैयार हुआ।

आगे से चरखा-संघ के काम को अधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक पद्धति से चलाने के लिए संघ की भिन्न-भिन्न शाखाओं में खादी की विविध क्रियाओं की व्यवस्था की गई है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रांतों में कितने कार्यकर्त्ता तैयार हुए हैं यह बात नीचे के अङ्कों से प्रकट होगी—

प्रान्त	शिक्षित कार्य-कर्त्ताओं की संख्या
आन्ध्र	६ (अपूर्ण)
बिहार	३५
बंगाल	२६
कर्नाटक	२५
केरल	१७
महाराष्ट्र	५५
पंजाब	२४
राजस्थान	७
तामिलनाड	४०
संयुक्त प्रांत	१९४
उत्कल	६
	४४१

अगर खादी अच्छी तैयार करनी हो तो उसके लिए सूत अच्छा, बलदार और एक समान कता हुआ होना चाहिए। अच्छा, एक समान और बलदार सूत निकलने और कातने का वेग बढाने के लिए पूनी अच्छी होनी चाहिए। इस तरह की अच्छी पूनी मिलने के लिए कातने

वाले को खुद पींजना जरूरी है। यह अनुभव होने पर चरखा-संघ ने जिस तरह अपनी-अपनी शाखाओं के ज़रिये कार्यकर्त्ताओं की शिक्षा की योजना की है, उसी तरह कातनेवालों तक को वैज्ञानिक पद्धति से पिंजाई सिखाने की व्यवस्था की है। नीचे दिये हुए अङ्कों से प्रकट होगा कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कातनेवालों में से कितनों ने पिंजाई की शिक्षा प्राप्त की है

प्रान्त	पिंजाई की शिक्षा प्राप्त कतवैयों की संख्या
आन्ध्र	१३१ (अपूर्ण)
बिहार	२७१
बंगाल	२१७
कर्नाटक	६२
केरल	२२६
महाराष्ट्र	६४३
पंजाब	२१६
राजस्थान	०
तामिलनाड	अंक प्राप्त नहीं हुए
संयुक्तप्रान्त	१३७६
उत्कल	०
कुल	३१६१

यहांतक तो व्यापारिक पद्धति से होनेवाले खादी के कार्य का निरीक्षण हुआ। अब हम स्वावलम्बन की पद्धति से होनेवाले कार्य पर नज़र डालेंगे।

स्वावलम्बी पद्धति में रुई चुनने से लेकर उसका सूत कातने तक की सब क्रियायें खुद और अपने घर पर ही करनी पड़ती हैं। इस पद्धति में तैयार होनेवाली खादी बहुत सस्ती और बहुतकर मुफ्त-सी ही पड़ती है। खादी की जितनी क्रियायें हम अपने घर कर लेंगे, उतनी ही वह हमें सस्ती पड़ेगी। अगर हमें बुनना आता हो तो रुई चुनना, पींजना, और कातना आदि सब क्रियायें घर पर कर लेनी चाहिएं और

इस तरह तैयार हुआ सूत जुलाहे को देकर उससे कपड़ा बुनवा लेना चाहिए। ऐसी दशा में अगर रुई घर की ही हुई तो सिर्फ़ बुनने की ही मज़दूरी देनी पड़ेगी और अगर रुई मोल लेनी पड़ी तो रुई की क़ीमत और बुनाई की मजदूरी में ही वह खादी तैयार होजायगी। किसानों के पास अपनी घर की खेती की ही रुई होती है, अतः स्पष्ट ही है कि उन्हें उस रुई की क़ीमत देनी नहीं पड़ती। जिस तरह हम अपने खेत में पैदा हुए अनाज की रोटी बनाकर खाते है, उसी तरह हम अपने खेत में पैदा हुई रुई के वस्त्र बनाकर व्यवहार मे लावें, यही इस स्वावलम्बन की पद्धति का उद्देश्य है।

चरखा-संघ का ध्यान, अपने बढ़ते हुए काम के साथ-ही-साथ उत्पत्ति केन्द्रों में और दूसरी जगह भी स्वावलम्बन की पद्धति का तीव्रता के साथ प्रचार करने की ओर शुरू से ही है; बल्कि हिन्दुस्तान के प्रत्येक घर को वस्त्र-स्वावलम्बी बनाना उसका उद्देश्य है। कुछ जगहों पर कुछ केन्द्र केवल वस्त्र-स्वावलम्बन के विकास की दृष्टि से ही जारी किये गये है। सारे हिन्दुस्तान में सन् १९३७ में वस्त्र-स्वावलम्बन का काम कहाँ-कहाँ और किस तरह चल रहा था, नीचे दिये हुए विवरण से इसका परिचय मिलेगा—

बंगाल—ढाका ज़िला के मुंशीगंज ताल्लुक़ा में एक कुशल कार्यकर्त्ता १० गांवों में वस्त्र-स्वावलम्बन के प्रचार का कार्य कर रहा है। उसने ४० लोगों को पींजना और कातना सिखाया, ४२ पौण्ड सूत काता गया और २९ पौण्ड सूत की १२७ वर्ग गज़ खादी बुनी गई।

गुजरात—वेडछी का स्वराज्य आश्रम बारडोली ताल्लुका के 'रानीपरज' लोगो मे भारी तादाद में—६४ गाँवों में—वस्त्र-स्वालम्बन का काम कर रहा है। १९३७ मे ४०९ परिवारों में यह काम जारी था। १९३६ में जितने कातनेवाले कुटुम्ब थे, १९३७ में उससे ४०९ परिवारों में यह काम जारी था। १९३६ में जितने कातनेवाले कुटुम्ब १९३७ में थे, उससे दुगुने हो गये। इनके द्वारा कुल ५,५८८ वर्ग गज़ खादी तैयार हुई। सन् १९३६ की अपेक्षा यह ५० फ़ीसदी अधिक थी। इसमें से

१,००५ वर्ग गज़ खादी तो सिर्फ 'मरोली' आश्रम में ही बुनी गई; बाकी सब 'रानीपरज' लोगों ने बुनी। इन बुनकरों की संख्या २७ है।

वेडछी के स्वराज्याश्रम ने व्यापारिक पद्धति से भी खादी-उत्पत्ति का काम शुरू किया है। नौ गांवों में यह काम शुरू किया गया है और इनमें १८५ कातनेवाली स्त्रियां काम करती हैं। इनमें ३१ मुसलमान हैं, और शेष 'रानीपरज' और दूसरी पिछड़ी जातियों की हैं। ६३७ रु० ७ आने ६ पाई कातने की मजदूरी के रूप में बांटे गये।

कातने वाली स्त्रियों की कार्य-क्षमता बढ़ाने की दृष्टि से आश्रम ने दो जुदा-जुदा गांवों में कातना सिखाने की व्यवस्था की है। सन् १९३९ में ८ गांवों की १४२ कत्तिनों को उन्नत पद्धति से कातने की शिक्षा दी गई।

महाराष्ट्र—यहां जगह-जगह व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से सूत कातने का काम जारी है। चरखा-संघ ने सांवली में इस सूत के बुने जाने की व्यवस्था की है। सांवली में इस तरह का २,११६ पौण्ड सूत बुना गया और उसके कुल ६२१ थान तैयार हुए। यह खादी कुल ७१६४ वर्ग गज़ हुई।

इसके सिवा महाराष्ट्र में नीचे लिखे स्थानों पर स्वतन्त्र रूप से वस्त्र-स्वावलम्बन का काम जारी है—

(१) चरखा-संघ, यवतमाल (बरार)
(२) उद्योग-मन्दिर, चोपडा (पूर्व खानदेश)
(३) खादी-शिक्षण-संघ, मथुराबाद (पूर्व खानदेश)
(४) हनुमान उद्योग-मन्दिर, कापडना (पश्चिम खानदेश)
(५) समर्थ उद्योग-मन्दिर, सवाई मुकटी (पश्चिम खानदेश)
(६) सेवामन्दिर, कासार (पश्चिम खानदेश)
(७) आश्रम, सासवड (पूना)
(८) उद्योग मन्दिर, एखतपुर (शोलापुर)
(९) आश्रम, अम्बेरी (रत्नगिरी)

इन सब संस्थाओं के द्वारा कुल ३२५ परिवारों ने २,४१६ पौण्ड

सूत काता और ८,६८० वर्ग गज़ खादी बुनी गई। उपरोक्त संस्थाओं में की कुछ संस्थाओं को चरखा-संघ की ओर से सहायता भी दी गई।

इसके सिवा सतारा जिले में ग्रामोद्योग-संघ की ओर से कुछ काम चालू है। वहाँ भी वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से थोड़ा-बहुत काम होता है। उपरोक्त अङ्कों में इनके काम के अङ्क शामिल नहीं हैं।

तामिलनाड—इस प्रान्त में ५ केन्द्र वस्त्र-स्वावलम्बन का कार्य करते हैं। यहाँ १७६ कतवैयों ने ८६८ पौण्ड सूत काता और उसका २,६३७ वर्ग गज़ कपड़ा तैयार हुआ।

संयुक्तप्रान्त—रनीवां में चरखा-संघ की ओर से वस्त्र-स्वावलम्बन का केन्द्र जारी है। ३२ गाँवों के मिला कर ४४१ व्यक्तियों को पींजना और कातना सिखाया गया। सूत के बदले में ३,७३१॥ वर्ग गज़ खादी कातने वालों को दी गई। २५ परिवार पूरी तरह स्वावलम्बी हो गये हैं और इनके सिवा २६ दूसरे परिवार पूर्ण स्वावलम्बी होने की दिशा में हैं। ३ नये नवयुवक बुनाई का काम सीख कर तैयार हो गये हैं और ७ सीख रहे हैं।

श्री प्रभुदास गांधी बदायूँ ज़िले के आसफ़पुर केन्द्र मे वस्त्र-स्वावलम्बन का काम कर रहे है। एक जुलाहे के वेतन के रूप में चरखा-संघ की ओर से २४० रु० सहायता स्वरूप दिये गये है।

चरखा-संघ की ओर से अपने सब उत्पत्ति-केन्द्रों में इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि उनके अन्तर्गत काम करने वाले सब पिंजारे, कतवैये, जुलाहे और दूसरे सब कारीगर खादी का ही व्यवहार करें। प्रचलित वर्ष में चरखा-संघ के उत्पत्ति-केन्द्रों के कारीगरों को २,५५,४२५ रु० की खादी दी गई और १,०१,६२५ रु० की खादी प्रमाणित केन्द्रों ने अपने कारीगरों को बेची। वस्तुतः ये अङ्क वस्त्र-स्वावलम्बन के अन्तर्गत नहीं दिये जाने चाहिएँ, फिर भी कारीगरों को उनके काम के बदले में यह खादी दी गई, इसलिए यहाँ उसका उल्लेख किया गया है

दूसरे वस्त्र-स्वावलम्बी प्रदेश

आन्ध्र—इस प्रान्त के गन्तूर जिले में गुरवरेड्डीपालयम में बहुत से लोग हमेशा अपने घर में कते हुए सूत की ही खादी व्यवहार करते हैं।

कोकोनाडा के निकट पीठापुर की ओर के लोगों की भी प्रवृत्ति इसी तरह की है।

तामिलनाड—इस प्रान्त के तिरुपुर इलाक़े में अच्छी हालत के किसान लोगों में तो अपने वस्त्रों के लिए स्वयं सूत कातना एक गृह-कर्त्तव्य ही बन गया है।

इसी तरह मदुरा ज़िले के काशीपालयम् स्थान पर अपनी ही प्रेरणा से वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयत्न किया गया था, और उसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है।

उत्कल—इस प्रान्त के बोलगड के आसपास २८ गांव हैं जहां के निवासी अपने ही कुटुम्ब में कते हुए सूत के वस्त्र पहनते हैं।

कर्नाटक—इस प्रान्त में कुछ परिवार ऐसे हैं जो अपने खेत में पैदा हुई रुई का अपने परिवार के लोगों से सूत कतवा कर उसी के वस्त्र पहनते हैं।

अखिल भारतीय खादी कार्य में ही महाराष्ट्र प्रान्त के खादी-कार्य का समावेश हो जाने के कारण पाठको को इस प्रान्त के खादी-कार्य-सम्बन्धी साधारण कल्पना हो ही गई होगी, किन्तु जिज्ञासु महाराष्ट्र पाठकों का इतने से ही समाधान नहीं होगा, इसलिए नीचे कुछ विशेष जानकारी दी जाती है।

सन् १९३७ के अन्त में महाराष्ट्र चरखा-संघ की ओर से ९ उत्पत्ति-केन्द्र और २३ बिक्री-केन्द्र चालू थे। इन ९ उत्पत्ति केन्द्रों का प्रसार ६६७ गांवो तक हुआ था और २३ बिक्री केन्द्रों की एजेन्सी १७५ गांवों तक फैली हुई थी।

इन उत्पत्ति केन्द्रों द्वारा सन् १९३७ में २,९३,०३९ रुपये की ८,४७,००० वर्ग गज़ खादी तैयार हुई। इससे कातनेवाले, पींजनेवाले और बुनकर आदि २२,८७३ कारीगरों को काम दिया। बिक्री-केन्द्र और

उनकी एजेन्सिम्रों द्वारा कुल ५,४६,७७१ रुपयों की बिक्री हुई।

• महाराष्ट्र-चरखा-संघ की पूँजी केवल पौने दो लाख रुपये है। उपरोक्त कार्य के लिए वह पर्याप्त नहीं है, अतः स्वभावतः ही उसे कुछ कर्ज लेकर अपना काम चलाना पडता है।

सन् १६३७ के अन्त मे संघ के छोटे-बडे सब मिलाकर कुल कार्यकर्त्ता ३२६ थे।

महात्माजी ने जिस समय अखिल भारतीय चरखा-संघ के सामने जीवन-वेतन का प्रश्न रक्खा, उस समय महाराष्ट्र-चरखा-संघ ने ही सब से पहले अपने कारीगरों को सन् १६३५ में तीन आने रोज और बाद को अब १६३८ मे चार आने रोज जीवन-वेतन देने मे आगे क़दम रक्खा।

महाराष्ट्र-चरखा-संघ के कार्य-क्षेत्र मे नागपुर से कोल्हापुर तक का सब मरहठी प्रदेश का समावेश होता है। इनमे बिक्री-केन्द्र तो सब जगह थे, लेकिन उत्पत्ति-केन्द्र सिर्फ़ नागपुर इलाक़े मे ही थे। अगर यह कहा जाय तो कोई हर्ज नहीं कि कांग्रेस के महाराष्ट्र प्रान्त मे (१६३७ तक) बिक्री-केन्द्र और उनकी एजेन्सियों को छोड कर चरखा-सघ का दूसरा अर्थात् उत्पत्ति कार्य करीब-क़रीब नहीं-सा ही था। पूर्व और पश्चिम दोनों खानदेशों को निकाल देने पर कांग्रेस-महाराष्ट्र प्रान्त मे कातने की प्रथा और किसी ज़िले मे कही भी नहीं थी। इसलिए पहले की कम दरों पर कहीं भी खादी उत्पत्ति का कार्य करना सम्भव नहीं हुआ। इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि महाराष्ट्र मे ग़रीबी कम है। लेकिन ग़रीबी होने पर भी अभी तक कातने की मजदूरी बहुत कम होने के कारण कातने-पीजने का काम सीख कर उसके बाद उसके द्वारा मिलनेवाली थोडी-सी मजदूरी की ओर अधिकतर कोई आकर्षिन नही होता था। कॉंग्रेसी महाराष्ट्र प्रान्त में आरम्भ किये गये नये केन्द्रों से इस बात का परिचय मिलता है कि वहाँ अब यह स्थिति नहीं रही है, और अगस्त सन् १६३८ के आख़ीर तक वहाँ क़रीब १,३०० चरखे शुरू हो गये थे। यह संख्या २,००० तक बढाई जाने वाली है, इससे स्वयं महाराष्ट्र मे प्रतिमास १०,००० रु० की खादी तैयार होने की सम्भावना है।

: ३ :

भिन्न-भिन्न प्रान्तों की खादी-सम्बन्धी विशेषता

आन्ध्र

आन्ध्र प्रान्त की कुछ विशेष जातियों के जुलाहों में यह प्रथा है कि जिस व्यक्ति को बुनना नहीं आता, उसका विवाह होता ही नहीं—उसे कोई अपनी लड़की नहीं देता। इससे यहां पहले जुलाहों का धन्धा कितनी ज़ोर से चलता होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है।

आन्ध्र प्रान्त बारीक खादी के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। लेकिन इस से यह नहीं कहा जा सकता कि वहां जितनी भी खादी तैयार होती है, वह सब बारीक ही होती है। वहां पैदा होने वाली कुल खादी के हिसाब से बारीक खादी का औसत करीब-करीब आधा अथवा उससे भी कम ठहरेगा। यह बारीक खादी इस प्रान्त के 'गंजम' और 'विजगापट्टम' केवल इन दो ही जिलों में तैयार होती है। बारीक खादी दो तरह की है—(१) 'पट्टुसाली' और (२) 'चेलमा'। पट्टुसाली सूत का नम्बर १२० तक और 'चेलमा' सूत का नम्बर ६० तक होता है। यह बारीक खादी बुनने वाली 'पट्टुसाली' नाम की जुलाहों की एक जाति ही है। इन जुलाहों की स्त्रियां ही यह बारीक सूत कातती हैं। ये जुलाहे स्पृश्य अथवा सवर्ण हैं। अति प्राचीन काल से इसी भाग में यह बारीक खादी तैयार होती है। जिस तरह बंगाल में 'ढाका' प्रसिद्ध है, इसी तरह आन्ध्र प्रान्त में यह भाग मलमल की तरह की बारीक खादी के लिए सुप्रसिद्ध है।

इस बारीक खादी के तैयार करने की पद्धति भी ख़ास है। उसकी प्रत्येक क्रिया अत्यन्त नाज़ुक है। उस भाग में पैदा होने वाली 'कोंडा-पत्ती' नामक रुई से ही यह खादी बनाई जाती है। कातने वाली स्त्रियां स्वयं ही यह रुई संग्रह करके रखती हैं। खेत में से इस रुई को चुनते

समय अत्यन्त सावधानी रक्खी जाती है। कपास का एक-एक बीज लेकर उसके आस-पास जो रुई चिपटी रहती है, उसे एक तरह की मरी हुई मछली के जबडे से चुनते हैं। इस जबडे मे सादी कंघी की तरह अत्यन्त बारीक और नोकदार दांते होते है। इस तरह चुनी हुई रुई को एक फुट लम्बे और ९"-१०" चौडे पट्टे के बीच मे रख कर लोहे की सलाई से रोटी की तरह उसे बेलते हैं। इस पद्धति से रुई एक ओर और बिनौले दूसरी ओर रहते है। इस तरह अलग हुई रुई को एक टोकरी मे रखते हैं। फिर उसमें से थोडी-थोडी लेकर उसके तन्तु-रेशे विथूनते और एक गज लम्बी तांत की कमान वाली धुनकी से उसे धुनकते हैं। बाद को उस की एक बालिश्त लम्बी और डेढ इञ्च चौड़ी मोटी पूनी बनाते हैं। एक पूनी का वजन क़रीब पौन तोला होता है। यह पूनी खराब न हो जाय, इसलिए उसे सूखे केले के पत्ते मे रखते हैं। कातते समय भी केले का पत्ता पूनी के ही ऊपर रहता है।

जिस चरखे पर यह पूनी काती जाती है, वह चरखा भी दूसरे प्रान्तों के साधारण चरखो से आकार में बहुत बडा होता है। चरखे की लम्बाई ३२" और उसके बीच की डण्डी जिन दो स्तम्भों पर रक्खी जाती है, उनकी लम्बाई १६½", चक्र का व्यास ३१", बीच की डंडी १०½ "लम्बी, तुम्बे का घेर ४½", तकुआ लगाने की गुडिया २½" और तकुए की लम्बाई ६½' होती है।

'कोंडापत्ती' रुई सामान्यतः एक रुपये की ४॥ से ६ पौण्ड अथवा लगभग सवा दो सेर से तीन सेर तक के भाव मिलती है। इस रुई की विशेषता यह है कि इसका तन्तु क़रीब-क़रीब ½" ही लम्बा होने पर भी उससे १०० नम्बर तक का सूत निकलता है। विशेषज्ञ लोग इसका कारण यह बताते है कि यद्यपि यह रुई छोटे धागे वाली है, फिर भी उसके मुलायम, चिकना और चमकदार होने के कारण उसका इतना बारीक सूत निकल सकता है।

५०" पने की पाँच गज़ खादी का वजन ३८ तोले होता है।

वेलमा और पट्टुसाली—दोनों ही तरह का सूत कातने और उससे

पहले की तैयारी करने मे बहुत समय लगता है, इसलिए यहां की मलमल जैसी खादी बहुत महंगी पडती है।

गंजम और विजगापट्टम् जिले मे कुल पन्द्रह सौ पट्टुसाली परिवार है। बारीक सूत के दस केन्द्र, छः सौ चरखे और डेढ सौ करघे है। इन करघो पर रेशम और जरी के काम की भी खादी तैयार होती है। तरह-तरह के बेलबूटे की रेशमी और ज़रीन खादी बुनने की मजदूरी चार आने से लेकर एक रुपया गज तक है। इस बारीक खादी से ग्राहकों की इच्छानुसार धोती, गमछे, साफे, ओढने आदि हर तरह की चीज तैयार कर दी जाती है। यह माल इतना सुन्दर, सुहावना और सफाईदार होता है कि उसका व्यवहार लखपतियों तक की शान के अनुरूप होता है।

मछलीपट्टम् रंगाई और छपाई के काम की उत्कृष्टता के लिए अत्यन्त प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण है कि लाखों रुपये की 'पट्टुसाली' खादी के थानों पर रंगाई और छपाई का काम हो कर वह माल मछलीपट्टम के बन्दरगाह से विदेश को जाता था। अब खादी की रंगाई और छपाई का काम वहां की सुप्रसिद्ध संस्था 'आन्ध्र जातीय कलाशाला' मे होता है। इस कलाशाला में यह काम सिखाने की भी अच्छी सुविधा है। इसके सिवा इसमे तरह-तरह की बेल-बूटी के सांचे व ठप्पे तैयार करने का काम भी सिखाया जाता है, और वैसे ठप्पे बिक्री के लिए भी तैयार मिलते है।

तामिलनाड

इस प्रान्त में चरखे पर सूत कातने की प्रथा इतनी प्रबल थी और अब भी है कि वेलाल जाति की लडकी को, उसके विवाह मे चरखा दिये जाने का रिवाज है।[१]

१ तामिलनाड, बगाल, बिहार, पजाब आदि प्रांतो मे कातनेवाली स्त्रियाँ स्वय ही रुई धुनकर उसकी पूनियाँ बना लेती है, उन्हे पिंजारे की आवश्यकता नहीं होती। तामिलनाड के जुलाहे अपने धन्धे मे दक्ष है, अत यहाँ की खादी सफाईदार होती है। मदूरा पहले से ही रगाई के काम के लिए प्रसिद्ध है, उसने अपनी वह परम्परा अब भी कायम रक्खी है।

तिरुपुर के श्री लक्ष्मीकान्त ने खादी पर अनेक रासायनिक प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि खादी 'वाटर प्रूफ' हो सकती है। ऐसी खादी अब बिक्री के लिए तैयार भी की जाने लगी।

बंगाल

ढाके की सुप्रसिद्ध मलमल बंगाल प्रान्त की ही है। ढाका पूर्व बंगाल का एक शहर है। पूर्व बंगाल में चरखा कातने की प्रथा अब भी जारी है। प्रो० राधाकमल मुकर्जी ने अपनी Foundations of Indian Economics नामक पुस्तक (पृष्ठ ५४) पर लिखा है कि "पूर्व बंगाल में मध्यमवर्ग की स्त्रियां चरखे पर सूत कातती हैं। बंगाली वर्ष के आरम्भ के पहले दिन ये स्त्रियां विश्वकर्मा की पूजा करती हैं। उस दिन चरखे का शृंगार कर उसके आगे चौक पूरती हैं और उसे दूध हलवे आदि का भोग—नैवेद्य—लगाती हैं। चरखे की पूजा करने के बाद विश्व के चमत्कारों की कहानी भी कहती हैं।"

बंगाल की यह टेक है कि बंगाल की खादी बंगाल में ही खपाई जाय।

बिहार

'कोकटी' रुई और कोकटी खादी बिहार की विशेषता है। यह रुई स्वभावतः ही गेरुए रंग की होती है। दरभंगा जिले में यह पैदा होती है। रुई का गेरुआ रंग साधारणतः पक्का होता है, लेकिन पक्की भट्टी पर पांच-सात बार चढ़ाने पर उसमें कुछ फीकापन आ जाता है। इसका तन्तु—रेशा—आध इञ्च ही लम्बा होता है, फिर भी उसका ७० नम्बर का बारीक सूत निकलता है। जुलाहे ही इस कपास को बोते, चुनते, धुनते, कातते और बुनते हैं। चरखा-संघ इन जुलाहों से ही कोकटी खादी मोल लेता है। कोकटी खादी की बुनावट अत्यन्त गहरी और उसमें चमक होने के कारण वह रेशमी वस्त्र-सा दिखाई देती है। 'नेपाल-नरेश' इस कोकटी खादी को आश्रय देते रहे हैं, इसीलिए यह कला अभी तक जीवित रह पाई है।

बिहार प्रान्त की दूसरी विशेषता यह है कि वहां कातने वाली स्त्रियों

को मजदूरी पैसों के रूप में न दी जाकर रुई के रूप में दी जाती है। कातने वाली स्त्रियां बारीक अथवा मोटा, बलदार अथवा कच्चा जैसा सूत लाती हैं, उसी के अनुसार उन्हें रुई दी जाती है। एक सेर सूत पर उसके गुण धर्म के अनुसार सवा सेर से दो सेर तक रुई दी जाती है। इस प्रान्त में जितनी भी कत्तिनें हैं उनमें से अधिकांश कत्तिनें इस 'बदला पद्धति' को पसन्द करती हैं। मजदूरी के रूप में जो अधिक रुई मिलती है, फुरसत के समय में उसे भी कातकर उससे अपने और अपने कुटुम्बी जनों के लिए कपड़े बनाती है। 'बदला-पद्धति' का अवलम्बन करने वाली बहुत-सी स्त्रियां खादी ही इस्तेमाल करती हैं। चरखा-संघ ने इधर तकली पर १२० नम्बर तक का बारीक सूत कातने का काम शुरू किया है। इस सूत की मलमल सुन्दर, सुहावनी और सफाईदार होती है।

राजपूताना

कपड़े के सम्बन्ध में आजकल जिस तरह मैन्चेस्टर की ख्याति है, उसी तरह मध्ययुग में राजपूताना अत्यन्त प्रसिद्ध था। सूत कातने और खादी वापरने की प्रथा आज भी यहाँ जीवित है। यहाँ के चरखा-संघ को रुई-संग्रह कर उसकी पूनी बना कर रखने की कुछ भी आवश्यकता नहीं। वहाँ घर-घर रुई लोढने और सूत कातने के चरखे हैं। यहाँ के लोग उद्यमशील और परिश्रमी हैं और कमख़र्ची की ओर उनकी प्रवृत्ति है। इसलिए जब कभी भी हम घूमते हुए गाँवों की ओर निकल जाते हैं तो वहाँ के लोग अपनी सुविधा के अनुसार उसपर काम करते दिखाई देते हैं। इस ओर पूनी, सूत, खादी आदि की हाट लगती है। जयपुर में ऐसी हाट—बाज़ार—रविवार को लगती है। इधर के जुलाहे स्वयं कातनेवाली स्त्रियों से सूत ख़रीदकर खादी बेचते हैं। चरखा-संघ सूत मोल लेकर जुलाहों से बुनवा लेते हैं।

इस प्रान्त में भी तामिलनाड की वेलाल जाति की तरह की सुन्दर प्रथा है। विवाह के समय प्रत्येक वधू को चरखा दिया जाता है। जो महिला चरखा चलाती है, वही कुलीन—खानदानी—समझी जाती है। इस प्रथा के अनुसार अमीर-ग़रीब सब श्रेणियों की स्त्रियाँ चरखे पर सूत

कातना अपना धर्म ही समझती है। जो स्त्री चरखे पर सूत नहीं कातती, वह अच्छी निगाह से नहीं देखी जाती।

जयपुर राजपूताना का 'मछलीपट्टम' है। धुलाई, रंगाई और छपाई के सम्बन्ध मे जयपुर कई सदियों से प्रसिद्ध है। जयपुर के पानी में ही कुछ ऐसे विशेष गुण है कि जिससे वहाँ के धुले हुए कपडे अत्यन्त स्वच्छ होते है। जयपुर की धुलाई और रंगाई इतनी प्रसिद्ध होने के कारण बम्बई के कुछ लोग और व्यापारी अपने कपडे (खादी) वहाँ से धुला और रंगा कर मॅगवाते है। इस नैसर्गिक स्थिति के कारण यहाँ धुलाई, रंगाई और छपाई का काम बडी भारी तादाद मे होता है।

संयुक्तप्रान्त

बनारस मे आचार्य कृपलानी के विद्यार्थियों द्वारा स्थापित 'गांधी आश्रम' ने विशेष परिश्रम कर हाथ के कते और हाथ के बुने रेशमी वस्त्र पर जरी के कोर—पल्लेवाले दुपट्टे और साडी तैयार करने का उपक्रम किया है। आश्रम अपने कारीगरों से, जैसे भी चाहो, बेल-बूटे के वस्त्र आर्डर के अनुसार तैयार करवा देता है। ४५" × ११ नाप की बनारस की शुद्ध रेशमी साडी ४०) रु० से लेकर आगे अधिक-से-अधिक कीमत तक की मिल सकती है। रेशम और जरी जितने परिमाण में होगी और बेल-बूटे जितने घने होंगे, उसी औसत से क़ीमत से कम-ज्यादा होगी।

हिमालय की तलहटी में अलमोडा के आसपास के संयुक्तप्रान्त के हिस्से में ऊन काफी तादाद मे पैदा होती है। हिमालय की सर्दी से लोगों की रक्षा करने के लिए स्वयं प्रकृति ने इस भाग में सब तरह की ऊन पैदा होने की व्यवस्था की मालूम होती है। इस ऊन से सफ़ाईदार कम्बल तैयार होते है। विशेषतः मुज़फ्फरनगर मे यह काम होता है। कुछ बातों मे कानपुर की लालइमली मिल से भी सरस माल यहाँ तैयार होता है। ये कम्बल ५४" × ३ गज़ अथवा ६०" × ३ गज़ के होते हैं। और उनकी क़ीमत ५) रु० से लेकर २५) रु० तक होती है। मई से नवम्बर तक कम्बलों की भरमार रहती है। कम्बल की तरह कोट के काम का भी ऊनी कपडा यहाँ मिलता है। इस भाग में चलते-फिरते

बाज़ार लगते है। इन बाज़ारों मे रुई, सूत और ऊन देकर उसके बदले मे खादी मिलती है। नकद दाम पर भी मिलती है।

इस प्रान्त के फर्रुख़ाबाद में रंगाई और छपाई का काम इतना उत्कृष्ट होता है कि यहाँ के एक कारीगर को उसके कौशल के लिए लन्दन की वेम्ब्ले प्रदर्शिनी में इनाम मिला था।

बिहार की तरह इस प्रान्त मे भी बदले की पद्धति प्रचलित है।

पंजाब

राजपूताना की तरह पंजाब मे भी हाथ-कते सूत का बाज़ार भरता है। उसी प्रकार बिहार और संयुक्तप्रान्त की तरह यहाँ भी कुछ परिमाण मे 'बदला-पद्धति' शुरू है।

खादी रंगने और छापने का काम भी उच्चकोटि का होता है। यहाँ के 'नारियल वृक्ष' और 'मोर' छाप के परदे अत्यन्त सुन्दर और मोहक होते हैं।

कर्नाटक

इस प्रान्त में लिगायतों की संख्या बहुत है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके धर्म में उनके लिए यह आदेश है कि उन्हे अपने हाथ से कते सूत के करघे पर बुने हुए कपडे पहनने चाहिएँ। वहाँ के कुछ कुटुम्ब इस धर्माज्ञा का पालन कर तदनुसार आचरण करते हैं।

राजपूताना और पंजाब की तरह कर्नाटक में भी कुछ जगहों पर तैयार सूत बिकाऊ मिलता है।

उत्कल

उत्कल (उडीसा) प्रान्त के चरखों में लकड़ी की मुड़ी के बजाय बाटोला पत्थर काम मे लाया जाता है, इसलिए वहाँ के चरखे चलाने में कुछ भारी पड़ते हैं।

इस प्रान्त मे सूत कातने की प्रथा इतनी प्राचीन है कि इस सम्बन्ध में उडिया भाषा में कुछ कहावते प्रचलित है। यहाँ के नेता स्वर्गीय गोपबन्धुदास ने हमसे बात करते हुए ऐसी एक कहावत—'कुटी खांबा कांती विंधा'—का उल्लेख किया था, जिसका अर्थ है कि जो धान कूटने

और सालने की मेहनत करेगा उसे खाने के लिए चावल मिलेंगे और जो सूत कातेगा, वह अपने वस्त्र तैयार कर सकेगा। इस कहावत से यह सिद्ध होता है कि इस प्रान्त मे सूत कातने की प्रथा तो थी ही, इसके साथ ही यहाँ चावल भी भारी तादाद मे पैदा होता था। एक दूसरी कहावत है—'बिना सुता रे हाटो'। इसका आशय यह है कि जिस पुरुष अथवा स्त्री के पास बाजार मे बेचने के लिए सूत नहीं है, उसके पास बाज़ार-हाट करने का कोई भी साधन नहीं है। इससे ऐसा प्रतीत होता कि वहाँ सब जगह यह रिवाज था कि बाज़ार-हाट जानेवाले अपने साथ सूत लेकर जॉय और उसे बेचकर उसके जो पैसे मिलें, उनसे गृहस्थी के काम की चीज़ें ख़रीदें। साथ ही इससे स्वभावतः यह भी अनुमान होता है कि पुराने ज़माने में वहाँ सूत का वाज़ार लगता था। अब एक तीसरी कहावत देखिए। इस प्रान्त के प्रत्येक गाँव मे कातनेवाली स्त्रियों के ढोर-ढंगर चरने के लिए एक विशेष जंगल होता है। उस जंगल को 'कांतुनी पोड़ियो' कहने का रिवाज है। ऐसा प्रतीत होता है कि इधर यह रिवाज होगा कि कातनेवाली स्त्रियाँ अपनी कातने की कमाई में से ढोर-ढंगर लेकर अपने कुटुम्ब के लिए दूध-छाछ की व्यवस्था करें।[1]

इस प्रान्त मे भी सूत लेकर उसके एवज़ मे रुई देने का रिवाज है। जिन-जिन प्रन्तों में यह 'बदला-पद्धति' प्रचलित है, वहाँ की यह विशेषता है कि कातनेवाली अधिकतर स्त्रियाँ अपने सूत की खादी बुनवाकर उसका व्यवहार करती है।

आसाम

रेशम के कीड़ों से रेशम पैदा कर उसे पींजने, कातने और बुनने आदि का काम आसाम प्रान्त मे आज भी घर-घर प्रचलित है। यहाँ प्रत्येक घर में करघा होना ही चाहिए और जिस तरह आन्ध्र प्रान्त में जिस जुलाहे को बुनना नहीं आता उसका विवाह नहीं होता, उसी तरह इस प्रान्त मे यह प्रथा है कि जिस स्त्री को बुनना नही आता, उसका

१ प्रत्येक भाषा मे इस तरह की कहावते होगी ही। अगर उन्हे सग्रह किया जाय तो उनसे खादी के साहित्य मे अच्छी वृद्धि होगी।

विवाह नहीं होता। इससे इस प्रान्त में बुनाई की कला कितनी प्राचीन है, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। हाँ, करघे पर रेशम के बजाय रुई का सूत व्यवहार मे लाने की पद्धति अभी प्रचलित नहीं हुई है।

काश्मीर

काश्मीर की ऊन हिन्दुस्तान भर की सब ऊनों से अच्छी होती है। इतनी ही नहीं, उसके सम्बन्ध मे यह प्रसिद्ध है कि वह पश्चिमीय देशों में उच्चकोटि की मानी गई ऊन तक की बराबरी कर सकती है। यहाँ के ऊनी माल की कलाकुशलता के सम्बन्ध में पहले से ही ख्याति है। यहाँ की ऊन की प्रसिद्धि के कारण विदेशी लोगो ने यहाँ आकर कारखाने जारी किये और उन कारखानों मे विदेशी ऊन का इस्तैमाल कर उसे काश्मीरी ऊन के नाम से बेचने लगे। वहाँ बहुत अधिक परिमाण मे माल तैयार होता था, फिर भी शुद्ध हाथ-कता विश्वस्त माल मिलना असम्भव-सा होता जा रहा था। ऐसी स्थिति में अखिल भारतीय चरखा-संघ ने वहाँ अपनी एक शाखा स्थापित की है और इस प्रकार आज हिन्दुस्तान में सब जगह वहाँ का माल मिलने की सुविधा हुई है।

काश्मीर के शाल-दुशाले प्रसिद्ध है ही।

यहाँ ऊन का इतना बारीक और हलका कपड़ा तैयार होता है कि ६४ इञ्च चौड़ा और साढे तीन गज़ लम्बा कपड़ा आसानी से अंगुली की अंगूठी में होकर निकल आता है। यह कपड़ा ७०० रु० तक बिकता है।

पश्मीने से उच्चकोटि की ट्वीड, पट्टू, लोई आदि तरह-तरह के वस्त्र तैयार होते हैं। गुण की दृष्टि से ये मिल के कपडे की अपेक्षा अच्छे होते हैं।

सिन्ध

काश्मीर के बाद ऊन का सफाईदार माल सिन्ध मे तैयार होता है। इसके सिवा पंजाब, राजस्थान, संयुक्तप्रांत, महाराष्ट्र और कर्नाटक प्रांत मे लाखों रुपये के खेस, धुस्से और धुग्गियाँ तैयार होती हैं और उनकी बिक्री भी अच्छी होती है।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र में वननेवाला कपडा मुख्यतः मध्यम वर्ग के उपयोग के लिए अच्छा होता है। १४ से २० नम्वर तक के सूत की धोतियाँ, १८ से २४ नम्बर तक के सूत की गुजराती साडियाँ और २६ से ३२ नम्बर तक के सूत की वेल-बूटेदार रेशमी और जरी के ओढने और १०-१२ नम्बर के सूत का कोटिंग का कपडा, इस प्रान्त की खादी की विशेषता है। स्त्रियों की—विशेषतः महाराष्ट्रीय पद्धति से पहननेवाली स्त्रियों की—साडियाँ और ओढनों का प्रश्न महाराष्ट्र चरखा-संघ ने ही हल किया है।

यहाँ तक हमने जुदा-जुदा प्रांतों की खादी-सम्बन्धी विशेपता पर नजर डाली। जिन्होंने १८ वर्ष पहले की २७ और ३६ इञ्च पने की मोटी और खुरदरी खादी देखी और इस्तैमाल की है, उन्हे आज की भिन्न-भिन्न दिशाओं मे उन्नत खादी देकर आश्चर्य हुए विना नहीं रहेगा। अव ५०-५४ इञ्च तक के पने की खादी सब जगह और सपाटे से निकलने लगी है। धनवानों की शान के लायक़ सुन्दर और सुहावनी खादी अव सब जगह मिल सकती है। खादी के कोटिंग के कपडे अव इतने प्रकार के और इतनी उच्चकोटि के निकलने लगे है कि मिलवाले भी उनकी नक़ल करने लगे है।

खादी के सम्बन्ध में हुई उन्नति यद्यपि सन्तोषजनक है, फिर भी जगह-जगह के कार्यकर्ता यह जानते है कि उसमें उन्नति करने की अव भी काफ़ी गुंजायश है और उसके लिए काफ़ी प्रयत्न करना बाकी है, और इसलिए वे इस दिशा में सतत प्रयत्नशील रहते हैं।

: ४ :

खादी के उपकरणों की उत्क्रान्ति

कांग्रेस के आरम्भ किये हुए असहयोग आन्दोलन के साथ-ही-साथ खादी-आन्दोलन का किस तरह जन्म हुआ और खादी का आन्दोलन शुरू होने से आज तक खादी ने किस-किस प्रकार प्रगति की, ये सब बातें पाठक पिछले अध्यायों में देख ही चुके हैं।

खादी का आन्दोलन शुरू होने से अबतक गत १८ वर्षों मे खादी के सम्बन्ध में जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उनपर से खादी का अलग एक शास्त्र हो बन गया है। इन अनुभवों को ध्यान में रखकर ही समय-समय पर खादी के उपकरणों में काफ़ी प्रगति होती रहती है। उपकरणों की उत्क्रान्ति के साथ-साथ कार्यकर्ताओं की आविष्कारक बुद्धि का भी विकास हुआ है। इन दोनों विषयों का एक-दूसरे के साथ सम्पर्क होने के कारण इस अध्याय में इन दोनों पर विचार किया जायगा।

समस्त हिन्दुस्तान में जुदा-जुदा प्रान्तों मे जुदा-जुदा आकार के उपकरण काम मे लाये जाते हैं। उनका आकार छोटा-बड़ा होने पर भी उनकी बनावट बहुतकर एक निश्चित तरह की ही होती है। खादी का आंदोलन आरम्भ करते समय जो पुराने औज़ार उपलब्ध हुए, उन्हीं को हाथ मे लेकर उनमें किस-किस तरह सुधार किये गये, इस अध्याय में यही बताना है। महाराष्ट्र में प्रचलित औज़ारों—उपकरणों—को नज़रों के सामने रख-कर ही आगे विवेचन किया जा रहा है।

लोढ़ना या चरखी

कपास चुनकर साफ करने के बाद उसमे से बिनौला अलग करने के लिए पहले उसे लोढनेवाली चरखी की ज़रूरत होती है। अतः पहले हम उसी को लेते हैं।

गांवों मे अक्सर लोढ़ने की जो चरखी दिखाई देती हैं, वे आकार में बड़ी और अपेक्षाकृत भारी होती है, इसलिए उन्हें चलाने के लिए दो आदमियों की ज़रूरत होती थी। एक आदमी सलाई के पास कपास सरकाता था और दूसरा उसका हत्था घुमाता था। इस चरखी के ज़रिये एक घण्टे में ५ पौण्ड अथवा ढाई सेर कपास लोढी जाती थी। भारी और मोटी होने और चलाने के लिए दो आदमियों की ज़रूरत होने के कारण यह चरखी पिछड़ गई।

गाँवों में ऐसी चरखी भी सर्वत्र दिखाई देती है, जिसे एक आदमी चला सके। लेकिन उसमें बैठक नहीं होती। बैठक की जगह लकडी के मध्यवर्ती डण्डे पर भारी पत्थर रक्खा जाता है, जिससे कि वह चरखी हिल न सके। इसपर काम करना बडा कष्टकर प्रतीत होता है। इसके सिवा उसपर एक घण्टे मे तीन ही पौण्ड कपास लोढ़ी जा सकती है। ऐसी दशा में यह चरखी भी लोकप्रिय नहीं हुई।

बारडोली के 'सरंजाम-कार्यालय' ने भी खादी-कार्य के लिए एक चरखी तैयार की। इस चरखी की लाट मोटी है। यह लाट ऊपर से लकडी की है; लेकिन उसके बीच मे आरपार लोहे की चौकोनी सलाई बिठाई गई है। इस सलाई के ही एक सिरे पर हत्था लगा दिया गया है, जिससे एक आदमी आसानी से उसे फिरा सके। चरखी में जो पेच होते हैं, वे लकडी के हैं। इसकी बनावट ऐसी रक्खी गई है जिससे यह पेचों-वाला भाग अलग निकाला जा सके। इसकी ऊपर की सली लोहे की और गोल है। उसपर आडी रेखायें हैं। इस चरखी मे लोहे की ढिब्री लगाई गई हैं। सली के घूमने से घर्षण न हो, इसलिए एक पीतल का वर्तुल स्तम्भों के दोनों तरफ फिट किया गया है। इस चरखी के छुटे हिस्से 'लेथ' पर तैयार किये गये है, इसलिए वे समान माप के है और फुटकर बिकाऊ मिल सकते हैं। इसकी बैठक अच्छी है और इसकी घडी की जा सकती है। इसपर एक घण्टे में पांच से सात पौण्ड तक सूरती कपास लोढी जा सकती है।[१]

१. कपास के परिमाण के बारे मे यह खुलासा कर देना जरूरी है

बारडोली चरखी के दोष—(१) इसकी कीमत ५) रु० है, जो किसान की दृष्टि से अधिक है; (२) आरम्भ में उसपर बिनौले ज़्यादा टूटते है, और (३) यह गाँवों में न तो तैयार हो सकती है, न टूट-फूट होने पर वहाँ उसकी दुरुस्ती ही हो सकती है।

इस चरखी मे उक्त दोष होने के कारण वर्धा के ग्राम-सेवा मण्डल ने दूसरी तरह की चरखी तैयार करवाई। सुधरी हुई अथवा उन्नत चरखी तैयार करने पर पच्चीस रुपये के इनाम की घोषणा की। उसके लिए नीचे लिखी शर्तें थीं—

(१) वह ऐसी होनी चाहिए कि उससे आठ घण्टे मे कम-से-कम पन्द्रह सेर रोज़िया कपास लोढी जा सके, (२) किसी भी तरह की कपास के बिनौले न फूटे; (३) सर्वसाधारण स्त्रियाँ बिना किसी दिक्कत के आठ घण्टा चला सकें; (४) आरम्भ से ही अच्छा काम दे और (५) बीच-बीच में टूट-फूट की दुरुस्ती का मौका न आकर कम-से-कम एक महीना काम देनेवाली है।

नोट—बैठक के दोनों खूँटों में १० इञ्च का अन्तर हो और प्रत्येक खूँटा डेढ़ इञ्च मोटा हो।

इन शर्तों के अनुसार वर्धा के एक सुतार ने एक चरखी तैयार की। उसपर आठ घण्टे में १८ सेर कपास लोढी जाती है। इस चरखी की

कि जिस कपास मे बिनौले से रूई जल्दी छूट जाती है उसका लौढने का औसत ज्यादा होता है, और जिसमे से रुई देर से छूटती है उसका कम। उदाहरणार्थ उपरोक्त चरखी पर एक घंटे मे ७ पौंड सूरती कपास लोढी जाती है। इस कपास में से बिनौले से रुई जल्दी छूट जाती है इसलिए उसका औसत ७ पौंड है। रोज़िया रुई को बिनौले से अलग करने मे देर लगती है, इसलिए उस कपास के लोढने का फी घटा औसत कम पडेगा। इस अध्याय मे जहाँ-जहाँ यह कहा गया है कि एक घटे में अमुक पौण्ड लोढी जाती है, वह औसत रोज़िया कपास का समझना चाहिए। कपास की जुदा-जुदा किस्मो को ध्यान में रखकर, उस-उस कपास के गुण-धर्म के अनुसार उसके औसत में अन्तर पडता जायगा।

विशेषता यह है कि उसकी लाट मोटी है और उसमें छः आँटे है। कना अष्टकोनी और टाँचेदार है। कना दोनों ओर टेढा है और लाट की एक बाजू पर लगाया गया है, इससे बिनौला जल्दी टूटता है। इसमें ढिब्री के बजाय 'स्क्रू' लगाये गये है। लाट के रगड न लगने देने के लिए पाये पर लाट के दोनों ओर बाँस के वर्तुलाकार 'बेअरिंग' लगाये गये है। कने के जितने अधिक फेरे होंगे, उतना ही काम अधिक होगा। इस नई चरखी के लोढने मे लाट के एक फेरे या चक्कर के साथ कने के तीन फेरे होते है। पहले की चरखी मे दो फेरे होते थे। उपरोक्त सुधार के कारण काम अधिक होने लगा है। इस चरखी की घडी नहीं की जा सकती, लेकिन उसके बैठक है।

दोष—इस चरखी पर जितनी चाहिए उतनी कपास नही लोढी जा सकती। अभी फ़ी घण्टा साढे चार पौण्ड लोढी जाती है, जब फ़ी घण्टा छः पौण्ड लोढी जाने लगे, तब यह चरखी वर्त्तमान चरखियों में सर्वोत्तम हो सकती है।

इसके सिवा अ० भा० चरखा-संघ के आजीवन सदस्य और साबरमती के सरंजाम-कार्यालय के सञ्चालक श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमजी ने भी एक 'लोढन-यन्त्र' तैयार किया है। इस यन्त्र पर फी घण्टा १५ पौण्ड कपास लोढी जाती है। इसकी विशेषता यह है कि इस पर एक ही आदमी पैर से पैडल चलाता है और हाथ से कपास सरकाता जाता है। इसमे साइकिल की जंज़ीर फ्री व्हील और बॉल-बेअरिंग का उपयोग किया गया है।

दोष—(१) यह यन्त्र महँगा है, (२) इससे बिनौला फूटता है; (३) यह गाँवों में तैयार और दुरुस्त नही हो सकता और (४) यह सब तरह की कपास के लोढने मे उपयोगी नहीं होता।

इस सारे विवरण पर से यह स्पष्ट है कि वर्त्तमान चरखियों में अनेक दोष है। इसलिए अभी ऐसे एक उपकरण की अत्यन्त आवश्यकता है जिसमें से उक्त सब दोष निकाल कर लुढाई का काम सन्तोषजनक रीति से हो सके। अ० भा० चरखा-संघ ने हाथ से लोढने पर बहुत जोर

देकर इस तरह की चरखी का आविष्कार करने की आवश्यकता बतलाई है। अगस्त सन् १९२६ में हुई संघ के कार्यवाहक-मण्डल की बैठक में इस सम्बन्ध में नीचे लिखा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकार किया गया था—

"कार्यवाहक-मण्डल का मत है कि वह समय आ गया है जबकि हाथ की लुढाई पर यथासम्भव ज़ोर दिया जाय। मण्डल खादी की उत्पत्ति में दिलचस्पी रखने वाली चरखा-संघ की सब शाखाओं का और खादी-प्रेमी लोगों का इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता है कि खादी की व्याख्या में आने वाले सब कपड़े हाथ से पिंजे, हाथ से कते और हाथ से बुने होने चाहिएँ और उसके लिए आवश्यक रुई हाथ-चरखी पर लुढी होनी चाहिए। चरखी में सुधार अथवा उन्नति करने और हाथ की लुढी रुई को लोकप्रिय बनाने के लिए संघ की शाखायें और प्राइवेट व्यक्ति जो प्रयत्न करेंगे, उसके लिए मण्डल उनका अभिनन्दन करेगा।"

धुनकी या पींजन

चरखी के बाद अब धुनकी को लीजिए।

पुराने ज़माने में बाँस की खपच्ची पर डोर बाँधकर धुनकी तैयार की जाती थी और उस पर हाथ से ही रुई पींजने की प्रथा थी। यज्ञोपवीत—जनेऊ—तैयार करने अथवा स्त्रियों की बत्तियों के लिए आवश्यक रुई इस तरह की धुनकली पर धुनी जाती थी। पिंजारे की धुनकी में बकरी की आँत की ताँत लगती थी, इसलिए उक्त पवित्र कामों के लिए इसे उपयुक्त न मानकर यह धुनकली काम में लाई जाती थी। धुनकली के लिए काम में लाई जाने वाली डोर सन अथवा अम्बाड़ी के बजाय केले के तन्तु अथवा मूँज की घास से बनाई जाती थी। ऐसी बारीक डोर होने के कारण इस धुनकली से पिंजाई का काम हो सकता था।

खादी का आन्दोलन शुरू होने से पहले सामान्यतः पिंजारों के पास की मोटी धुनकियाँ ही सब जगह काम में आती थीं। अभी-भी लिहाफ़-गद्दों के लिए आवश्यक रुई इन्हीं धुनकियों पर धुनवाई जाती है। इन

धुनकियों की ताँत दस-बारह तार की होने के कारण खूब मोटी होती है। ताँत जितनी मोटी होती है, पिंजाई उतनी ही मामूली और जितनी बारीक होती है, पिंजाई उतनी ही अच्छी होती है। इसके सिवा इस धुनकी के लिए जगह की भी अधिक आवश्यकता होती थी और धुनने में भी यह भारी पडती थी, इसलिए इन दोषों से युक्त धुनकी की आवश्यकता अनुभव होने लगी। इसलिए बारडोली के 'सरंजाम कार्यालय' ने धुनकने में सामान्यतः हलकी, कम जगह घेरने वाली और बारीक ताँत की 'मध्यम-धुनकी' तैयार की। इस धुनकी पर फ़ी घण्टा १०-१२ तोले रुई धुनकी जाती है। यह बाँस की भी बनाई जाती है; लेकिन बाँस के बीच में गाँठ होती है, इसलिए उस पर काकर (धुनकी के पखे पर लगने वाली चमडे की पट्टी) अच्छी तरह कसकर नहीं जम पाती। संघ के कामों में 'मध्यम धुनकी' का ही व्यवहार अच्छा है।

पिंजारों की मोटी धुनकी और आजकल काम में लाई जाने वाली मध्यम धुनकी मे भी टाँगने के लिए जगह की ज़रूरत होती है। बाँस की दो खपच्चियों को एक के ऊपर एक बाँधकर उस पर डोरी से यह धुनकी लटका दी जाती है। इस कमान के कारण धुनकी पर काम करना सरल हो जाता है और प्रत्येक बार इस कमान का स्प्रिंग (Spring) की तरह उपयोग हो जाता है।

सत्याग्रह-आन्दोलन में ज़ब्तियों और पकड़ा-धकडी का दौर दौरा था। ऐसे समय में एक सुविधाजनक धुनकी की आवश्यकता अधिक प्रतीत हुई; क्योंकि 'मध्यम धुनकी' के होने पर भी उसे लेकर सफर करना ज़रा असुविधाजनक होता था। अतः 'यौद्धिक' अथवा 'सफ़री' धुनकी की कल्पना हुई और तदनुसार वह बनाई गई। यह धुनकी इतनी हलकी है कि बालक-बूढ़े सभी स्त्री-पुरुष इसे जहाँ चाहे अपने साथ ले जा सकते है, उसके लिए जगह भी थोड़ी ही चाहिए। उसके ताँत बारीक लगानी पड़ती है, इसलिए उस पर पिंजाई भी अच्छी होती है। इससे फ़ी घण्टा ७-८ तोले रुई धुनकी जा सकती है। व्यक्तियों के अपने आप पींजने के लिए यह धुनकी अच्छी है। इसे लटकाना नहीं पडता।

बंगाल के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त ने कलकत्ते के उपनगर सोदपुर में 'खादी प्रतिष्ठान' नामक एक संस्था स्थापित की है। इस संस्था ने सन् १९३०-३१ में पिंजाई की एक मशीन बनाई थी। वह हाथ से चलाई जाती है। इससे प्रतिदिन १० पौण्ड रुई धुनकी जा सकती है। यह मशीन अभी सर्वमान्य नहीं हुई है।

इसके बाद स्वर्गीय मगनलाल गांधी के पुत्र श्री केशवलाल गांधी ने भी पिंजाई की एक मशीन का आविष्कार किया और उसका लाभ उठा कर साबरमती के 'सरंजाम-कार्यालय' ने पोंजने की एक नई मशीन बनाई है।

इस मशीन के गुण—इस मशीन में रुई के बिथूरने की क्रिया होने के कारण उसके—रुई के-तन्तु साफ़ और अलग हो जाते हैं। तांत से तन्तुओं का इतना साफ हो सकना सम्भव नहीं होता। इसके सिवा इसमें पंखा लगाया गया है, जिससे तन्तु से भारी वज़न की धूल अथवा कचरा उसकी हवा से अलग होकर, मशीन के साथ ही लगी हुई कचरा-पेटी में फेंक दिया जाता है। इस मशीन में पोल तैयार होता है। इस मशीन से एक घण्टे में अधिक से अधिक २० तोले सूरती और १२ तोले रोजिया रुई धुनकी जाती है! रुई की धुनाई अच्छी होने के कारण पूनियाँ भी अच्छी होती है। ३० नम्बर से ऊपर का सूत कातने के लिए इस मशीन पर धुनी हुई रुई की पूनियाँ अच्छी रहती हैं।

इसके दोष—(१) इस मशीन का चलाना एक आदमी की शक्ति के बाहर की बात है, (२) यह गाँवों में न तो तैयार हो सकती है न दुरुस्त ही; (३) यह इतनी पेचीदा है कि घरेलू धन्धों में इसका समावेश नहीं हो सकता, (४) यह सब तरह की रुइयों के लिए उपयुक्त नहीं है; (५) इसकी कीमत ८०) रु० होने के कारण गाँव के लोगों के लिए उसका ख़रीद सकना सम्भव नहीं होता, और (६) इसके बनाने में विदेशी चीज़ों की आवश्यकता होती है।

इस मशीन के कारण धुनाई के सम्बन्ध में लोगों को परावलम्बी होना पड़ेगा। अभी लोगों को जो थोड़ी बहुत धुनाई की कला विदित

है, वह नष्ट हो जायगी। इन दोषों के कारण अखिल-भारतीय चरखा संघ की शाखाओं की ओर से यह मशीन सब जगह शुरू नहीं की गई, अभी-भी उस पर प्रयोग जारी है।

चरखे

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों मे चरखे के अलग-अलग आकार और प्रकार हैं। पुराने चरखों मे कुछ अधिक भारी, तो कुछ आसानी से उठाये जा सकने-जैसे है; कुछ के बीच की पुडी बेडौल पथरीली है, तो कुछ के बीच मे नकशीदार डमरू है। कुछ का व्यास बहुत मोटा है, तो कुछ का बहुत छोटा; कुछ चरखों की पंखुडियां लम्बी और मोटी, तो कुछ की आडी और पतली है। इन सब तरह के चरखों को वर्धा के 'मगन संग्रहालय' में एकत्र किया गया है, जिसकी नुमाइश देखने योग्य है।

इन चरखों के पहियों और तकुओं मे जुदा-जुदा अन्तर होने के कारण उनमें कुछ भी वैज्ञानिकता नहीं थी। इस दोष के कारण ही तकुए पर की माल की पकड ठीक नहीं रहती थी।

बारडोली के 'सरंजाम-कार्यालय' ने इन पुराने चरखों का सूक्ष्म निरीक्षण करने के बाद उनमें के दोषों को दूर करने का प्रयत्न कर एक चमरखे की आवश्यकता-रहित चरखा तैयार किया है। इसे अभी 'बारडोली चरखा' कहते है। इसका पहिया २४ इन्ची होता है। उसकी धुरी लोहे की है, और पीतल की बेअरिंग पर वह फिरती है। अटेरन भी इसी पर लगा होता है। धुरी और तकुए मे ३६ इन्च का अन्तर होता है। इस चरखे में पीतल की बेअरिंग होने के कारण माल की पकड अच्छी रहती है।

इस चरखे के तकुए मे भी बहुत से सुधार किये गये है। यह अनुभव होने पर कि जिस तरह धुनकी की तांत जितनी बारीक होती है, उतनी ही पिंजाई अच्छी होती है, उसी तरह जिस चरखे का तकुआ जितना अधिक पतला होता है, उतना ही वह अच्छा बारीक सूत कातने के लिए अच्छा होता है, 'बारडोली' चरखे मे बारीक तकुए का प्रयोग किया गया है। तकुए में ही लोहे की गिर्री लगादी गई है, इसलिए

'साडी' लगाने की आवश्यकता नहीं रहती। तकुआ रखने के लिए मोढिये (मोहरे) के बीच में खाने कर दिये गये हैं। खानों की इस योजना के कारण चमरखो को बिलकुल उडा दिया गया है। इन सब सुधारों के कारण वर्तमान चरखों में 'बारडोली चरखा' सर्वोत्तम माना गया।

गांडीव-चरखा¹

अब हम दो पहियों के चरखो पर नज़र डालेंगे। परम्परा से चले आनेवाले चरखे सामान्यतः आकार में बडे होते थे; उनका आकार छोटा करने के लिए दो पहियों के चरखे की कल्पना पहले-पहल किसके दिमाग़ में पैदा हुई, यह कह सकना कठिन है; क्योंकि लगभग सन् १९२१ से हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न भागो में भिन्न-भिन्न आकार के दो पहियों के चरखे निर्माण हुए दिखाई देने लगे थे। ऐसे ही चरखों में के एक विशेष चरखे का यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। सूरत के श्री ईश्वरलाल बीमा वाले ने अपनी कल्पना के अनुसार दो पहियों का चरखा बनाया। एक डंडे पर दो पहियो को आडा रखकर चरखा चलाने की कल्पना पहले-पहल श्री बीमावाला को ही हुई है। उन्होंने इस चरखे का नाम 'गाण्डीव चरखा' रक्खा है।

जीवन-चक्र

'सुन्दरदास सॉ मिल्स' वाले श्री पुरुषोत्तमदास रणछोडदास ने श्री बीमावाले के गाण्डीव चरखे की तरह दो पहियों का उपयोग कर एक दूसरा चरखा तैयार किया और उसका नाम 'जीवन-चक्र' रक्खा। 'जीवन-चक्र' के पहिये खडे रक्खे गये हैं और इसकी रचना 'अनुपम और आकर्षक' है।

चरखे पर भिन्न-भिन्न प्रयोग कर उसमे कई तरह का सुधार करने के लिए अबतक बहुत से प्रयत्न किये जा चुके हैं। इनमे श्री पुरुषोत्तमदास का प्रयत्न अधिक सफल हुआ है। छोटे-बडे दो पहियों में लगी हुई माल

१ 'गाण्डीव,' 'जीवन' तथा 'यरवदा-चक्र' इन तीन चरखो की जानकारी श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास कृत 'यरवदा चक्र' नामक छोटी-सी पुस्तिका से ली गई है।

कातते समय निकल न जाय अथवा ढीली न हो जाय, इसके लिए उसमें स्प्रिंग की योजना श्री पुरुषोत्तमदास की आविष्कारक बुद्धि का 'भव्य' परिणाम है। देखने में स्प्रिंग की यह योजना मामूली-सी है; लेकिन वास्तव में है अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, क्योंकि इसके कारण छोटे आकार के चरखे लोकप्रिय होकर उनका स्थान स्थायी हो गया है।

श्री पुरुषोत्तमदासजी ने बारडोली के मोढिये (मोहरे) में भी एक उन्नति की है। पहले मोढिये के दोनों तरफ के स्तम्भों में ऊपर से बीच में छेद करने पड़ते थे और उनके बीच में से गोल आकार की मुलायम बोरू की छोटी डंडियाँ डाली जाती थीं। इन लकडियों से सटाकर कपड़े की पट्टी के गर्भ में से तकुआ फिरता था। इन लड़कियों के बजाय एक बारीक डोर के आधार पर हलके फूल की तरह तकुआ घूमते रखने का श्रेय श्री पुरुषोत्तमदास को दिया जाना चाहिए।

जिस तरह श्री पुरुषोत्तमदास ने दो पहियों में फिरने वाली माल के निकल जाने अथवा ढीली हो जाने की रोक के लिए स्प्रिंग की योजना की थी, उसी तरह मोढिये में बिठाये गये तकुए पर की माल के लिए रबड की योजना की गई थी। उस रबड़ के बजाय स्प्रिंग की योजना करने का श्रेय बारडोली के 'सरंजाम-कार्यालय' को है।

महात्मा गांधी ने अपने सन् १९३० और उसके बाद के कारावास के समय में चरखे के सम्बन्ध में तरह-तरह के प्रयोग किये। जेल में उन्होंने अपने पास एक कारीगर रख लिया था और प्रयोग के अन्त में उन्हें जो बातें सूझतीं, उनके अनुसार वे चरखे में परिवर्तन करवाते थे। 'जीवन-चक्र' की रचना आकर्षक होते हुए भी महात्माजी को गाण्डीव चरखा अधिक उपयुक्त प्रतीत हुआ, क्योंकि 'जीवन चक्र' की तुलना में उसकी सादी रचना और स्वल्प मूल्य अधिक पसन्द आया और इसलिए उन्हें और उनके पास के कारीगर को जो परिवर्तन सूझे, उन्हें उन्होंने गाण्डीव चरखे में ही समाविष्ट किया। मोढिये में बोरू की लकडी के डोरी डालने का सुधार श्री पुरुषोत्तमदास ने सुझाया; किन्तु वह डोर घिसकर निरुपयोगी हो जाती थी और उसके कारण तकुआ भी घिसता

था, इसलिए महात्माजी की सूचना के अनुसार आगे-पीछे सरकने वाली किन्तु तकुए के तीनों ओर ठोस बैठने वाली डोर लगाने की योजना की गई। महात्माजी गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन गये. उस समय की यात्रा और उसके बाद के कारावास के समय उन्होंने जो प्रयोग किये उन्हीं के परिणाम स्वरूप उन्हे यह सुधार या परिवर्तन सूझा।

गाण्डीव चरखे की मूलभूत कल्पना के आधार पर महात्माजी के द्वारा यरवदा जेल में से जो सूक्ष्म परिवर्तन सुझाये जाते, उन्हे अमल मे लाकर श्री केशव गांधी ने उस चरखे को पेटी या बक्स में बिठाने की युक्ति खोज निकाली। सब सुधारो से युक्त इस नवीन चरखे का नाम 'यरवदा-चक्र' रक्खा गया।

जिस चरखे मे यरवदा चक्र की ही सब योजना को क़ायम रखकर पेटी या बक्स के बजाय घड़ी करने की सुविधा है उसका नाम 'घड़ी-चक्र' और जिसमें घडी करने के बजाय खड़ा ही टांगने की सुविधा है उसका नाम 'किसान-चक्र' रक्खा गया है।

यरवदा-चक्र मे पेटी की सुविधा होने के कारण उसकी क़ीमत अपेक्षाकृत अधिक पड़ती है।[१] जो लोग यरवदा-चक्र के सब लाभ उठाना चाहते हैं, किन्तु पेटी के कारण अधिक पडने वाली कीमत देने में समर्थ नहीं हैं, उनके लिए 'घडी-चक्र' और जो इतनी भी क़ीमत नहीं दे सकते उनके 'किसान-चक्र' तैयार किया गया है। किसान-चक्र मे यह विशेषता है कि मज़बूती में अधिक होने के अलावा कातते समय वह हिलता नहीं है। एक के बाद एक किस तरह कल्पना सूझती गई वह, इस वर्णन पर से स्पष्ट होगा।

'यरवदा-चक्र', 'घडी-चक्र' और 'किसान-चक्र' की रचना मे कातने के सम्बन्ध में भी जैसे-जैसे अनुभव होते गये. उनके अनुसार सुधार किये गये है।

१. 'यरवदा-चक्र' कीमत ३॥)
'घडी-चक्र' " २॥|=)
'किसान-चक्र' " २।)

सावली के चरखे पर तिरछा तकुआ रखने से सूत सफाईदार और अपेक्षाकृत बारीक निकलता है और लपेटने में भी सुविधा होती है, (सावली चर्खे का पूरा वर्णन आगे आया है) इसलिए उपरोक्त तीनों चरखों में मोढिये तिरछी खॉच के और हिलते हुए रखने की योजना की गई है, इसके सिवा उसी मुहरे पर दाहिने अथवा बायें हाथ से कातने की भी सुविधा रक्खी गई है।

इन तीनों तरह के चरखे मे एक महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन करने की योजना की गई है। नवसिखिये कातनेवालों के लिए अर्थात् जिनका सूत कुछ मोटा निकलता है, उनके लिए तीन इंच व्यास का, मध्यम प्रकार का सूत कातनेवालों के लिए चार इंच और प्रवीण कतवैयों के लिए ५ इंच व्यास का छोटा पहिया डालने की सुविधा की गई है।

इन तीनों तरह के चरखों में दाहिने, या बायें हाथ से कातने की जो योजना की गई है, उसका श्रेय 'नालवाडी' (वर्धा) के प्रयोगों को है।

इन तीनों तरह के चरखों की विशेषता यह है कि इनके लिए थोडी ही जगह की ज़रूरत होती है, कीमत कम पडती है और इसके सिवा इन पर कातने में ऊँचे पलंग की ज़रूरत नहीं रहती।

एक और महत्त्वपूर्ण आविष्कार का उल्लेख करना आवश्यक है। परम्परा से चले आनेवाले सावली के चरखे पहले के सब चरखों से अच्छे हैं, लेकिन सावली चरखे का पहिया १६ से १८ इंच तक का होने के कारण कातते समय उसे घुमाना बहुत पडता है। परिणाम में वेग कम होता था। अतः मुख्य पहिये और तकुए के बीच में एक छोटा-सा पहिया लगाकर इस दोष को दूर किया गया। इस छोटे पहिये का उपयोग वेग अथवा गति बढाने के काम में हुआ, इसलिए उसे 'गतिचक्र' कहते हैं। सावली के चरखे पर यह गतिचक्र लगा देने से वह भी यरवदा-चक्र की तरह ही कार्यक्षम सिद्ध हुआ है।

मगन चरखा

अब हम एक ख़ास किस्म के चरखे पर नज़र डालें। खादी के अनन्य सेवक 'वणाट शास्त्र' और 'तकली शिक्षक' इन दोनों पुस्तकों के

लेखक स्व० श्री मगनलाल गांधी के भतीजे श्री प्रभुदास गांधी ने दोनों हाथों से एक साथ दो धागे काते जा सकें इस तरह का एक चरखा बनवाया और उसे 'मगन चरखा' नाम दिया।

जिस तरह सिंगर की सिलाई की मशीन चलाने के लिए पैडल का उपयोग करना पडता है, उसी तरह इस चरखे के चलाने में भी पैडल से काम लेना पडता है। इस चरखे के दोनों मोहरों पर दो तकुए चलाने की व्यवस्था होने के कारण इसपर दोनों हाथों से कातने की सुविधा है। यरवदा-चक्र पर सामान्यतः जितने समय में जितना सूत निकलता है, उतने ही समय में इस चरखे पर उससे ड्योढ़ा सूत निकल सकता है। इसकी कीमत छः रुपये है और इसकी बनावट ऐसी है कि टूट-फूट होने पर गाँवों में उसकी दुरुस्ती हो सकती है। इस चरखे में एक यह दोष अवश्य है कि सूत लपेटते समय एकदम रुकना पडता है, इससे पाँव पर दबाव पडता है। इस दोष को दूर करने के लिए इसमें संशोधन होने की ज़रूरत है। ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि सूत अपने आप लिपट सके।

श्री प्रभुदास गांधी के बनाये इस चरखे में सुधार होता गया और फलस्वरूप आज उनके तीन प्रकार विशेष महत्त्व रखते हैं:—

१. एक तो अहमदाबाद में अखिल-भारत चरखा संघ के प्रयोग-विभाग की तरफ़ से बनवाया गया है। यह चरखा साइकिल की तरह घुमाया जाता है। इसमें गतिचक्र भी बैठाया गया है। इसके मुख्य चक्र की गति का, तकुए की गति से अनुपात १ : २५० है। उसमें मृतबिन्दु (Dead point) नहीं है, यही उसका विशेष गुण है। काता हुआ पूरा धागा तकुए पर भरने के लिए उसे हम चाहें तब तुरन्त रोक सकते हैं।

२ दूसरा मूल में मध्यप्रान्त-महाराष्ट्र चरखा-संघ ने तैयार करवाया है। इसके चक्र का व्यास ३० इंच है। यह चक्र कातनेवाले के सामने उसी की ओर घूमता है। इस चक्र के ऊपर दोनों तकुए खडे घूमते हैं। इसका पैडल सीने के सिंगर मशीन के पैडल की तरह है। चक्र के एक फेरे में तकुए के फेरे करीब-करीब १२५ होते हैं। काता गया सूत भरने के लिए चक्र की ही धुरी पर दो परेते बैठाये गये हैं। कातनेवाला अपने स्थान

पर बैठा हुआ पैडल के जरिए दोनों परीतों पर एक साथ परेत सके ऐसी व्यवस्था भी इसमें की गई है। यह इसमे एक विशेष गुण है।

३. तीसरे चरखे का प्रादुर्भाव नालवाडी मे हुआ। इस चरखे की योजना पेटी-चरखा (यरवडा चक्र) मे ही की गई है। इसमें लूतविन्दु (Dead point) तो नहीं है, लेकिन वह पैर से गोल घुमाना पडता है यही इसमे कुछ कठिनाई है। दोनों तकुओं से सूत एक साथ परेतने की भी व्यवस्था इसमें नहीं है।

इन तीनों चरखों पर फी घंटा १ गुण्डी से अधिक गति आई है।

रामगढ कांग्रेस के अवसर पर मगन चरखे की सूत-स्पर्धा मे निम्न-प्रकार की गति रही थी—

१. अहमदाबाद साइकिल पैडल चरखा घंटे ४, तार ३७०१, कस ६५% नं० १६½

२. मूल सिंगर पैडल चरखा घंटे ४, तार ३५६२, कस ४५% नं० २३½। इसका मतलब यह है कि इसकी गति फी घंटा ६०० गज़ों के आसपास पहुँच गई है। स्पर्धा में नालवाड़ी का चरखा नहीं था।

अहमदाबाद और मूल के मगन चरखे आजकल १०) रु० क़ीमत में बेचे जाते हैं। नालवाडी का चरखा क़रीब ५ रुपये में मिलता है।

ग्राम चक्र

यह भी श्री प्रभुदास गांधी ने ही बनाया है। यरवदा-चक्र मे स्पिंग आदि की योजना होने के कारण उसे शहरी ही बना सकते हैं; ग्रामीण सुतारो के औज़ारों से उसका बन सकना सम्भव नहीं। ऐसी स्थिति मे श्री प्रभुदास गांधी ने यरवदा चक्र के तत्त्व क़ायम रखते हुए एक ऐसा ही चरखा बनाया है। इस चरखे मे एक बडा पहिया और दूरा गतिचक्र इस तरह दो पहियों का उपयोग किया गया है। सावली के चरखे और यरवदा-चक्र दोनों मे ही गतिचक्र लगाया जाता है, लेकिन वहाँ वह एक ही आड़ी लाइन में रक्खे जाते है। इन दोनों चरखों मे गतिचक्र और तकुए के बीच का अन्तर बहुत कम होने के कारण माल को पकड अच्छी नही रहती।

उपरोक्त दोष दूर करने के लिए ग्रामचक्र का गतिचक्र मूल बड़े पहिये के पास आड़ा न रखकर उसके सिरे पर रक्खा गया है। इस व्यवस्था के कारण मूल पहिये से गतिचक्र की धुरी या लाट का अन्तर भी बढ़ गया है इस अन्तर के बढ़ने से धुरी का व्यास एक इंच के बजाय दो इंच का कर दिया गया है और यह व्यास लोहे के बजाय लकड़ी का बनाया गया है। इसके सिवा गतिचक्र में बाँस की पंखड़ियाँ काम में ली गई है, इसलिए वह मोटा हो गया है।

इस चरखे का उठाव तीन पायों पर किया गया है, अत. इसके लिए यरवदा-चक्र की तरह सपाट ज़मीन की आवश्यकता नहीं होती। नीचे की जमीन कितनी ही ऊबड़-खाबड़ होने पर भी वह चरखा हिलता अथवा डगमगाता नहीं है। इसके स्तम्भों के हिलने और ढीले होने का कोई प्रश्न पैदा ही नहीं होता। इस चरखे पर कातने बैठने के लिए चारपाई की जरूरत होती है। चारपाई पर बैठकर पैर सिकोड़ने की जरूरत नहीं होती, पैर फैलाये हुए भी आसानी से काता जा सकता है। तीन पाये लगने पर भी पहले के दूसरे चरखों की अपेक्षा इसमें लकड़ी अधिक नहीं लगती। और यह इतना सरल है कि ग्रामीण सुतार भी इसे आसानी से बना सकते हैं।

एक लाख रुपये के इनाम के लिए बने हुए चरखे

सन् १९२९ मे अखिल-भारतीय चरखा-संघ ने यह घोषणा की थी कि जो व्यक्ति ऐसा चरखा तैयार करेगा, जिससे (१) एक घण्टे में २,००० गज़ अच्छा मज़बूत, बलदार और एक-सा सूत कत सके; (२) जो गाँवों में दुरुस्त हो सके और (३) जिसकी कीमत १२० रु० से अधिक न हो, उसे एक लाख रुपया इनाम दिया जायगा। इस इनाम के लिए (१) नासिक के श्री क्षीरसागर, (२) किर्लोसकरवाड़ी के श्री काले और (३) बंगलौर के श्री राजगोपालन् इत्यादि ने प्रयत्न किये; लेकिन चरखा-संघ की सूचनानुसार अभी तक एक भी चरखा पूरी कसौटी पर नहीं उतरा है।

(१) श्री क्षीरसागर के चरखे में एक दम चार तकुओं से सूत

निकलने की व्यवस्था थी; लेकिन उनसे निकला हुआ सूत मोटा होता था। इसके सिवा उसकी बनावट बड़ी पेचीदा थी। वह गाँवों में दुरुस्त नहीं हो सकता था।

(२) श्री काले के चरखे पर आठ तकुओं की व्यवस्था है; इससे दूसरे चरखों की अपेक्षा सूत अधिक निकलता था; लेकिन इसकी भी बनावट पेचीदा होने से गाँवों के लोगों के लिए तो उस पर कात सकना बड़ा मुश्किल था। गाँवों में दुरुस्त होने जैसा तो वह था ही नहीं। इस चरखे की एक विशेषता यह है कि इसमें धुनाई का यन्त्र साथ ही लगा हुआ है, जिससे रुई अच्छी धुनी जाती है और सूत भी एक समान निकलता है। सिर्फ़ पूनी हाथ से बनानी पड़ती है।

(३) श्री राजगोपालन् के चरखे में एक ही तकुआ है; यह सादा है और सुविधाजनक है और घण्टे में सिर्फ़ १,००० गज़ ही सूत दे सकता है। उस पर ग्रामीण लोगों से १००० गज़ भी कत सकेगा या नहीं, इस में सन्देह है।

इन तीनों चरखों में कातने के साथ ही सूत के अटेरने की व्यवस्था है।

तकली

जिस तरह हरेक प्रान्त के चरखे का आ आकार-प्रकार जुदा-जुदा है, उसी तरह हिन्दुस्थान के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न तरह की तकलियों का प्रचार है। ठीकरी, ढब्बू पैसा, लकड़ी और पीतल आदि की वर्तुलाकार—गोल—चकई पर बाँस, लकड़ी, लोहा, फ़ौलाद और पीतल आदि की सलाई लगी हुई तकलियाँ बहुतों के देखने में आई होंगी। जिस तरह भिन्न-भिन्न प्रान्तों की तकलियों की चकई और सलाइयों में अन्तर है, उसी तरह उनके सिरों में भी काफ़ी भिन्नता दिखाई देती है।

लेकिन बारडोली के 'सरंजाम कार्यालय' की ओर से एक समान माप की तकली तैयार की गई है, जिसकी चकई पीतल की और सलाई लोहे की है। आज देश भर में यही तकली सर्वोत्तम मानी गई है। इस का सब श्रेय श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम जी को ही है।

सूत कातने के लिए चरखे की तरह तकली का भी असहयोग आंदोलन के बाद से ही नये सिरे से उपक्रम हुआ। सन् १६३० तक कुछ खास-ख़ास आदमी ही तकली पर कातते थे। उस वर्ष सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ होने पर जगह-जगह पर यह ज़ोरदार प्रचार हुआ कि 'अगर तुम्हारे लिए जेल जा सकना सम्भव न हो तो, कम-से-कम, सूत ही कातो, खादी पहनो और विदेशी कपडे का बहिष्कार करो।' इससे प्रत्येक समझदार व्यक्ति ही नहीं, बल्कि १०-१२ वर्ष के बालक तकली पर सूत कातने लगे। जिन्होंने उस समय देश भर में घर-घर तकली फिरते हुए देखी है, उन्होंने उस दृश्य को अत्यन्त कौतूहलवर्द्धक और नयनमनोहर बतलाया है।

इस प्रकार उस समय लाखों तकलियों की खपत हुई। उसके इतना लोकप्रिय होने के कारण उसकी कार्यक्षमता की जाँच के लिए उस पर तरह-तरह के प्रयोग शुरू हुए। इसमें विशेषतः वर्धा के सत्याग्रह-आश्रम ने विशेष परिश्रम करके तकली की गति में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है और कातने की पद्धति मे विलक्षण सुधार किये हैं। इस पद्धति में नीचे लिखी तीन विशेषतायें है—

(१) जाँघ या पिंडली पर झटका देने से एक हाथ से खूब वेग दिया जा सकता है और इससे एक ही बार मे लम्बा धागा निकल सकता है।

(२) तकली को ज़मीन पर टिका कर एक झटके में चक्कर दिया जा सकता है।

(३) उपरोक्त पद्धति से सिर्फ दाहिने ही नही बल्कि बाये हाथ से भी काता जा सकता है।

इस प्रकार तकली पर आधे घण्टे मे ७ नम्बर के २३३ तार अथवा २० नम्बर के १६० तार बिना सूत अटेरे हुए निकाले गये हैं। यह गति 'असाधारण' समझनी चाहिए। आधे घण्टे मे १२ नम्बर के १४० तार सूत कातना 'मध्यम' दर्जे की और १४ से १६ नम्बर तक के १६० तार कातना 'उत्तम' दर्जे की कताई मानी जाती है।

'असाधारण' अथवा 'उत्तम' गति छोड़कर साधारण मनुष्य की मध्यम गति का विचार करने पर भी आधे घण्टे में १२ नम्बर के १०० तार अर्थात् एक घण्टे मे २०० तार हुए। यह गति इतनी है कि चरखे के बजाय तकली को सार्वत्रिक बनाना सम्भव हो गया है। वर्धा के सत्याग्रह आश्रम ने अपने प्रयोगों द्वारा तकली की गति में जो इतनी वृद्धि और दाहिने-बायें हाथ से कातने की जो सुविधा की है; वह अत्यन्त उपकारक सिद्ध हुई है, क्योंकि तकली की इस प्रगति के कारण ही वर्धा-शिक्षा-योजना मे उसे महत्त्व का स्थान प्राप्त हुआ है।

वर्धा-शिक्षा-योजना में 'तकली' को सात वर्ष के छोटे बालक के चला सकने योग्य औज़ार माना गया है। यह औज़ार ऐसा है कि (१) उसके लिए कोई पूँजी ख़र्च नहीं करनी पड़ती; (२) वह जगह नहीं घेरता और (३) उत्पादक काम दे सकता है। इन तीनों गुणों से युक्त और कोई उपयुक्त औजार उपलब्ध न होने के कारण तकली का बड़ा महत्त्व है। यह बात ख़ास तौर पर ध्यान मे रखने योग्य है कि सारे हिन्दुस्तान भर में वर्धा-शिक्षा-योजना को अमल में लाने के लिए अगर अधिक अनुकूलता है, तो वह तकली के इन विशेष गुणों के ही कारण है।

तकली पर इन प्रयोगों के होने के पहले आम तौर पर लोगों की यह धारणा थी कि उसपर सूत कातना एक तरह बच्चों का खेल है। ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि उसपर कातने से कोई विशेष सूत निकल सकेगा। लेकिन ऊपर तकली के जिन प्रयोगों का उल्लेख किया गया है, उनके कारण लोगों की वह धारणा ग़लत सिद्ध हुई है। तकली पर सूत कातने की गति कितनी बढ़ गई है, यह हम ऊपर देख ही चुके हैं। इस गति के बढ़ाने से प्रयत्न करने पर किसी भी व्यक्ति के लिए उतनी कला साध्य कर सकना सर्वथा सम्भव है। कई लोगों का अनुभव है कि इस गति से उस तकली पर प्रतिदिन नियमित रूप से आध घण्टा सूत कातने पर उससे कातनेवाले की अपनी वस्त्रों की आवश्यकता पूरी हो सकती है।[१] इस अनुभव पर से पूज्य विनोबाजी ने उसका नाम 'वस्त्र-पूर्णा' रक्खा है।

१ परिशिष्ट—खादी का हिसाब देखिए।

चरखे और तकली मे यह अन्तर है कि तकली पर निरन्तर आठ घंटे रोज़ कातना कदाचित कष्टदायक होगा, इसलिए आठ घण्टा रोज़ कातने दृष्टि से चरखा ही उत्तम साधन है। लेकिन जिन्हे घण्टा-डेढ घण्टा ही कातना हो, उनके लिए तकली भी उतनी ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। यह ठीक है कि यात्रा की दृष्टि से यरवडा-चक्र, वर्डी-चक्र उपयुक्त है, लेकिन तकली इनसे भी अधिक हलकी होने के कारण सफर ही क्या हमेशा जेब तक मे रखकर ले जाने का उससे बढकर और साधन नही है। इसके सिवा चरखे के लिए दो-तीन रुपये कीमत देनी पडती है, लेकिन तकली घर पर ही बिना किसी ख़ास खर्च के ही तैयार की जा सकती है और अगर कुछ ख़र्च पडा भी तो तीन आने से अधिक नही पड़ता।

अखिल-भारतीय चरखा-संघ के ध्यान मे यह बात जम गई है कि खादी की प्रगति करना हो तो उसके उपकरणो में उन्नति करनी ही चाहिए, इसलिए उसने अहमदाबाद के अपने केन्द्रीय दफ़्तर के साथ एक कारख़ाना और प्रयोगशाला खोलकर उसमे कुछ अनुभवी कार्यकर्त्ता नियुक्त किये हैं। इन्हे मौजूदा व्यवहार मे आनेवाले उपकरणो की कार्य-क्षमता की परीक्षा कर उनमे क्या-क्या सुधार करने की आवश्यक हैं, यह सूचित करने का काम सौपा गया है। प्रान्तीय शाखाये तक इस दृष्टि से प्रयोग करती है।

गतिचक्र-सम्बन्धी प्रयोग अहमदाबाद मे जारी है। बारडोली-चरखे पर एल्यूमिनियम के गतिचक्र बनवाकर उन्हें पाइण्ट बेअरिंग पर चलाने की व्यवस्था की गई है। उसी तरह तकुए मे लगाई गई गिर्री की दोनों बाजुये नुकीली करने से घर्षण कम होता है या नही, इस सम्बन्ध के प्रयोग भी चालू है।

: ५ :

कार्यकर्त्ताओं की अनुभवजन्य सूचनायें

आज सारे हिन्दुस्तान के भिन्न-भिन्न प्रान्तो मे सैकड़ों नवयुवक गांवो मे आसन जमाकर लोकसेवा की दृष्टि से खादी का काम कर रहे हैं। इस बात मे तिलभर भी सन्देह नहीं कि इन नवयुवकों का उत्साह और सेवा की लगन अभिनन्दनीय है। किन्तु केवल उत्साह और लगन से ही काम पूरा नहीं हो जाता, उसके लिए और भी कई बातों के सहयोग की आवश्यकता होती है। इसलिए इस अध्याय मे उनके लिए कुछ अनुभव-जन्य सूचनाये दी जा रही है।

कई बार ऐसा होता है कि कार्यकर्त्ता उत्साह के आवेग मे चाहे किसी एक गॉव में जा बैठता है और उसके मन मे कार्य की जो भव्य कल्पना होती है, उसके अनुसार एकदम काम शुरू कर देता है, और उसके लिए पॉच-सात सौ रुपये ख़र्च भी कर डालता है। लेकिन एक-दो वर्ष बाद जब उसे प्रत्यक्ष फल कुछ भी दिखाई नहीं देता, तब उसे पश्चात्ताप होता है और मन में ऐसा होता है और मन में ऐसा होने लगता है कि 'मैंने ऐसा न किया होता तो अच्छा था।' ऐसे पश्चात्ताप का अवसर न आवे इसी दृष्टि से नीचे लिखी सूचनाये दी जाती है।

खादी-कार्यकर्त्ता को खादी-उत्पत्ति के लिए अपना कार्यक्षेत्र चुनते समय निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ—

(१) वहॉ किसानों को सहायक धन्धे की आवश्यकता प्रतीत होनी चाहिए।

(२) कातनेवालों के हाथों मे कला-कुशलता होनी चाहिए, अथवा कम-से-कम कला की शिक्षा दी जाने पर उसके ग्रहण करने की जिज्ञासा. आतुरता और तत्परता होनी चाहिए।

(३) आस-पास हाथ-कता सूत बुननेवाले जुलाहे होने चाहिएँ।

(४) आस-पास यातायात—आमद—रफ्त—के साधन, सड़कें आदि की सुविधा होनी चाहिए।

(५) आस-पास मिलें वग़ैरा न हों, और

(६) वह क्षेत्र स्वावलम्बी होसकने-जितना बड़ा होना चाहिए। अर्थात् कार्यकर्ता पर होनेवाला ख़र्च उस खादी में से निकलना चाहिए। क्षेत्र के आसपास के २-३ गाँवों में ही कम-से-कम २५० चरखे चालू होने चाहिएँ। ये चरखे हमेशा जारी रहने चाहिएँ अर्थात् प्रत्येक चरखे पर महीने में कम-से-कम एक से सूत कातना चाहिए।

प्रत्येक क्षेत्र में इतनी प्राथमिक बातें अवश्य ही होनी चाहिएँ, इनके सिवा नीचे लिखे अनुसार परिस्थिति अनुकूल हो तो कार्य और भी सुगम होगा—

(१) उस भाग में कपास पैदा होती हो;

(२) चरखा चलाने की प्रथा हो;

(३) चरखे, धुनकी आदि बनाने के लिए आवश्यक लकड़ी और उनके बनानेवाले सुनार, लुहार आदि कारीगर वहाँ मिलते हों, और

(४) खादी की धुलाई आदि की सुविधा हो।

जिस क्षेत्र में ये सब बातें होंगी, वहाँ कार्य के उत्तम होने के विषय में किसी तरह की आशङ्का नहीं है। इनमें से जिन-जिन बातों की कमी होगी, उसी हिसाब से फल भी कम होगा। कार्यकर्ता को ये सब बातें मार्ग दर्शक के रूप में समझनी चाहिएँ। उसे बारीकी के साथ अपना क्षेत्र तलाश करना चाहिए और सारी परिस्थिति का विचार कर आगा-पीछा देखकर क्षेत्र चुनना चाहिए।

पहले क्षेत्र का चुनाव करने के बाद कार्यकर्ता को नीचे लिखी सूचनाओं पर अमल करने की कोशिश करनी चाहिए।

उसे खादी की विभिन्न क्रियाओं में पटु होना चाहिए। भिन्न-भिन्न क्रियाओं का कामचलाऊ अथवा टटपूँजा ज्ञान उपयोगी न होगा। अगर वह इन विषयों में कुशल न हुआ तो पग-पग पर उसका काम रुक जायगा।

गॉव में किसी के लोढन, किसी की धुनकी और किसी के चरखे में कोई टूट-फूट अथवा कुछ गडबड हुई तो लोग उन उपकरणों को लेकर दुरुस्ती के लिए कार्यकर्त्ता के पास पहुँचते है। उस समय कार्यकर्ता को उन्हें बारीकी से देखकर स्वयं ही उन्हें दुरुस्त कर देना चाहिए। इसके लिए सुतारी के प्राथमिक औज़ारों के उपयोग की प्रत्यक्ष जानकारी होनी चाहिए। अगर टूट-फूट अधिक होगई हो तो सुतार को बुलाकर उसे सब सब बातें समझा कर उससे दुरुस्त करवा लेनी चाहिए। अवश्य ही सुधराई की जो कुछ भी मज़दूरी हो, वह मालिक से ही दिलवा देनी चाहिए।

उपकरणों के उपयोग और उनकी जानकारी के सम्बन्ध में कार्यकर्त्ता को बहुत सतर्क रहना चाहिए। जिस प्रकार होशियार वकील को हाईकोर्ट के ताज़े-से-ताज़े फ़ैसलों की, अथवा कुशल डाक्टर के लिए भिन्न-भिन्न रोगों पर होनेवाले आपरेशन अथवा औषधोपचार की नई-से-नई जानकारी होना आवश्यक है, उसी तरह इस कार्यकर्त्ता को खादी के भिन्न-भिन्न उपकरणों मे होते रहने वाले भिन्न-भिन्न परिवर्त्तनों और सुधारों की जानकारी हासिल करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इतना ही नहीं स्वयं भी उस दिशा मे प्रयोग करके तत्सम्बन्धी अपने ज्ञान मे वृद्धि करनी चाहिए। राष्ट्र के सच्चे अर्थशास्त्र की दृष्टि से खादी चिरकाल तक टिकनेवाली है, यह तत्त्व उसके हृदय मे पैठा होना चाहिए।

कार्यकर्त्ता को अपने काम की शुरुआत 'पहले बुर्ज पीछे खम्भे' की तरह नहीं करनी चाहिए। बहुत बार ऐसा होता है कि गॉवों में खादी के कार्य का श्रीगणेश चरखे से होता है; फिर धुनकी आती है और बाद को लोढन। यह क्रम सही नहीं है। खादी-कार्य का आरम्भ मूल पाये पर से होनी चाहिए। खेत मे कपास के पक कर तैयार होते ही उसमें से अच्छे-से-अच्छे पौधे चुन लेने चाहिएँ और किसान को यह सावधानी रखना चाहिए कि इन पौधों पर से कपास उतारते समय उसमे किसी तरह का कूड़ा-करकट, पत्ती अथवा दीमक न लगने पावे। वर्ष भर में अपने परिवार के छोटे-बडे सब स्त्री-पुरुषों के कपडों के लिए कितनी रुई की

आवश्यकता होगी, आरम्भ मे ही इसका हिसाब लगा कर, उसके अनुसार उसमें से अपने उपयोग के लिए सुरक्षित रखली जाय। यह ठीक है कि इसके लिए कुछ समय अधिक लगेगा और परिश्रम भी कुछ अधिक करना पड़ेगा, किन्तु दूर-दृष्टि से सोचने पर किसान को इस समझ और परिश्रम का फल मिले बिना रहेगा नहीं। क्योंकि इस कपास को लोढने पर लोढने के बाद जो बिनौले निकलेंगे, उनके साफ साबित रहने के कारण बीज के लिए उनका उपयोग होने पर अगले साल कपास की फसल भरपूर और अच्छी होगी। इस तरह कपास से बिनौले अलग करने के बाद रुई को शास्त्रीय-पद्धति से किस तरह पींजा जाय, इसकी पूनियाँ किस तरह बनाई जायँ, उन्हें काता किस तरह जाय, उस सूत को अटेरन पर किस तरह उतारा जाय और उसकी लच्छी किस तरह बनाई जाय आदि सब बातें क्रमानुसार करने के लिए कहा जाय। किसान को यह सब बातें प्रयोग करके समझा देनी चाहिए कि अगर कपास चुनने के समय से ही उपरोक्त प्रकार से सावधानी रक्खी जाय, तो उससे लोढ़ने पींजने, कातने और बुनने की सब क्रिया में किस तरह सुलभ हो जाती हैं। इसी तरह उसे यह बता देना चाहिए कि अगर हमने कपास चुनने के सम्बन्ध में सावधानी नहीं रक्खी तो आगे की सब क्रियाओं में किस तरह कष्ट होता है। इस प्रकार इन दोनों की तुलना से उसके ध्यान में इस बात का महत्त्व अच्छी तरह आ जायगा। संक्षेप में यों कहना चाहिए कि खादी का कार्य शुरू करना हो तो वह कातने से शुरू न करके आरम्भ में कपास चुनने से शुरू करना चाहिए, बाद मे लोढन का उपयोग सिखाया जाय, उसके बाद पींजना और फिर कातना सिखाया जाय। देखने में यह बात बहुत छोटी अथवा तुच्छ-सी मालूम होती है, लेकिन है यह अत्यन्त महत्वपूर्ण। वास्तव मे यही नींव है। इसके मज़बूत होने पर ही इस पर खादी-कार्य की टिकाऊ इमारत खड़ी रहेगी, यह बात कार्यकर्ता को और इस कार्य के प्रत्यक्ष करने वाले किसान को भी ध्यान में रखनी चाहिए।

कार्यकर्ता को यह समझ कर कि खादी जीव-दया का कार्य है, पैसे और अन्य व्यवहार के सम्बन्ध में ग़ाफिल नहीं रहना चाहिए। उसे

हिसाब और जमा-ख़र्च की तो अच्छी जानकारी होनी ही चाहिए, उसके साथ ही उसे उसके अनुसार अपने आर्थिक लेन-देन का प्रतिदिन मेल मिला लेना चाहिए। अगर वह इस बारे मे बेपरवाह रहा तो लोग उसकी बेपरवाही का लाभ उठा कर उसे छलने का प्रयत्न किये बिना न रहेंगे; पैसे और बुद्धि मे और शहरी लोगों की तरह नीति में भी दरिद्री होने होने के कारण, यह जानते हुए भी कि इस कार्यकर्त्ता के द्वारा अपने गाँव के लोगों को चरखा और खादी का उद्योग मिल कर उसके ज़रिये दो पैसे मिले है वे उसे छले बिना नहीं रहते। ऐसी स्थिति में कार्यकर्त्ता को हिसाबी-वृत्ति और व्यापारिक तन्त्र समझकर ही अपना सब कार-भार चलाना चाहिए। उसे यह सावधानी रखनी चाहिए कि न तो स्वयं दूसरों को छले और न खुद दूसरों से छला जाय।

कार्यकर्त्ता को जीव-दया से प्रेरित होकर किसी को भी खादी-कार्य के लिए आवश्यक वस्तु मुफ़्त मे नही देनी चाहिए। उदाहरणार्थ, कोई जान-पहचानवाला व्यक्ति आपके पास आकर खुशामद अथवा गिडगिडा कर आपके पास का चरखा, धुनकी अथवा लोढन मुफ़्त मे व्यवहार करने को कहे तो उसकी खुशामद का शिकार होकर उसे कोई भी चीज़ मुफ़्त मे दे नहीं देना चाहिए। यह समझ रखना चाहिए कि कोई भी वस्तु मुफ्त में लेजानेवाला यह समझ कर कि उसमें अपने पैसे तो लगे नहीं, उसका मनचाहा उपयोग करेगा, 'अगर टूट गई तो खादी-कार्यालय की टूटेगी' यह मान कर बेपरवाही से उसे काम में लावेगा अथवा घर ले जाकर उसे यों ही पटक देगा। ऐसे कई उदाहरण सामने आये हैं कि ऐसे लोग इस तरह ले जाई गई वस्तु का कुछ भी उपयोग न कर उसे बेकार पटक रखते हैं। इसके विपरीत अगर वही वस्तु दाम लेकर अथवा किराये से दी जाय तो ले जाने वाला यह समझ कर कि 'मुझे इसके इतने पैसे देने पडे हैं अथवा इतना किराया देना पडेगा, अत्यन्त सावधानीपूर्वक उसे काम में लावेगा।

इस प्रकार कार्यकर्त्ता को अपने सब व्यवहार में हिसाबी, दक्ष और व्यवहार-कुशल रहना चाहिए। शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक किसी

भी विषय में लापरवाही नहीं रखनी चाहिए।

जिस तरह कार्यकर्त्ता को इतना व्यवहार-कुशल होना चाहिए, उसी तरह उसका चरित्र भी अत्यन्त शुद्ध रहना चाहिए। चरित्र की शुद्धता पर ही उसके सारे कार्य का दारोमदार है। उसका चरित्र शुद्ध होने पर ही लोग उसे आदर की दृष्टि से देखेंगे और उसके कथन की क़द्र करेंगे। उसे बाहर और भीतर एक समान शुद्ध रहना चाहिए। अगर उसके हाथों कोई नैतिक दोष हो जाय तो उसका सार्वजनिक जीवन चौपट हुआ ही समझना चाहिए।

कार्यकर्त्ता का खादी का काम करते हुए लोगों को 'खादी व्यवहार में लाओ, चरखा चलाओ' का केवल जबानी उपदेश देना कुछ उपयोगी नहीं है। बल्कि उसे स्वयं नियमित रूप से चरखे पर कात कर लोगों के सामने सक्रिय उदाहरण पेश करना चाहिए और खादी के पीछे छिपा रहस्य समझाना चाहिए।

जैसा कि 'खादी और ग्रामोद्योग' शीर्षक अध्याय में बताया जा चुका है, खादी का अर्थ है शुद्ध स्वदेशी, शुद्ध स्वावलम्बन, खादी का मतलब है उद्योग, अपने फुरसत के समय का सदुपयोग, उसका अर्थ है भूखे लोगों को काम देकर उन्हें खाने के लिए दो रोटी देना,—बेकारी नष्ट करना, उसका मतलब है सादा रहन-सहन और उच्च विचार। ये सब बातें किसानों के मन पर अच्छी तरह बिठा देनी चाहिए। लोगों की वृत्ति और आचरण में इसके अनुसार परिवर्तन होने पर ही खादी-कार्य की सफलता और यशस्विता समझी जानी चाहिए। इस उद्देश्य को पूरा न कर केवल बाहरी दृष्टि से चरखे की संख्या खूब बढा देने और प्रचुर परिमाण में खादी तैयार करने से जनता के आन्तरिक सुधार का जो महत्त्व है, वह नहीं सधेगा।

कार्यकर्त्ता को गॉव में रहते हुए केवल खादी के कार्य पर ही ध्यान देकर संतोष नहीं मान लेना चाहिए। उसे अपनी दृष्टि को ज़रा व्यापक बनाना चाहिए और खादी-कार्य के साथ-साथ नीचे लिखे अनुसार सेवा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(१) ग्रामविषयक—गॉव मे जनता द्वारा निर्वाचित ग्राम पंचायत स्थापित की जाय। गॉव मे होने वाले दीवानी और फौजदारी के सब मामले इस पंचायत द्वारा गॉव-के-गॉव मे ही निपटा लिये जायें। गॉव मे दो दल हों तो कार्यकर्त्ता को अपना व्यवहार दलगत भेद-भाव से अलग रखना चाहिए, वह किसी भी एक दल मे शामिल न होकर, अपना व्यवहार निष्पक्ष रक्खे।

(२) आर्थिक—गॉव की आर्थिक स्थिति की देख-रेख रक्खे। लोगों को जमा-ख़र्च रखना सिखावे। ग्रामोद्योग शुरु करे। लोगों को गोरक्षा का महत्त्व समझावे।

(३) आरोग्य-विषयक—लोगो को अपने खान-पान मे ऐसी नियमितता रखना सिखावे कि जिससे उन्हे बीमारी होने का कोई कारण ही न रहे। स्त्रियों के लिए बन्द जगह में और पुरुषों के लिए उनसे अलग चलते-फिरते किसानी सण्डास—पाख़ाने—बनाने को कहे। खाद के लिए खड्डे खोदने और सोन-खाद का उपयोग करने के लिए प्रोत्साहन दे। लोगों में शराब न पीने का प्रचार करे, शरीर-संवर्धन के लिए अखाड़े खोले। कुछ चुनी हुई दवाओं का औषधालय खोलने की व्यवस्था करे।

(४) सामाजिक—मन्दिर, कुए आदि स्थानों पर हरिजनों का प्रवेश करावे। अन्यायमूलक सामाजिक रूढ़ियों को मिटावे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए 'शान्ति दल' स्थापित करे।

(५) राजनैतिक—कांग्रेस की राजनीति का समर्थन करते हुए तत्त्व का प्रचार किया जाय, किसी भी व्यक्ति के बारे मे वाद-विवाद अथवा निन्दा-स्तुति मे न पडा जाय। ख़ास-ख़ास अखबार पढकर सुनाये जायें। राष्ट्रीय महत्त्व की चुनी-चुनी बाते बोर्ड पर लिखकर सार्वजनिक स्थानों पर रक्खी जावे। वाचनालय-पुस्तकालय खोले जायॅ।

(६) धार्मिक—सन्त-महात्माओं के उत्सव मनाये जायॅ। धर्म के सच्चे रहस्य समझा कर कहे जायॅ। बाहरी या ऊपरी आचार-विचार की अपेक्षा आन्तरिक शुद्धि पर अधिक ध्यान देने को कहा जाय। तत्त्व-विहीन भजन-मण्डलियॉ तोड़ दी जाय।

(७) सार्वजनिक—गावों के लोगों मे स्वार्थ-वृत्ति बहुत फैली रहती है। उनके विचार से सार्वजनिक कार्य का मतलव किसी का भी काम नहीं है। उनकी यह वृत्ति घातक है। उनके हृदय मे—दीर्घं पश्य माह्रस्वम्—क्षुद्र अथवा संकुचित नहीं वरन सुदूर अथवा उदार- दृष्टि से देखने का तत्त्व बैठाने का प्रयत्न करना चाहिए। नई-नई सार्वजनिक सडकें, कुए, तालाब और खेल-कूद के स्थान बनाने अथवा इस प्रकार के पुराने स्थानों की मरम्मत करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाय।

सारांश—कार्यकर्त्ता को सावधानीपूर्वक क्षेत्र चुन लेने के बाद—

(१) अपने खादी-कार्य के सम्बन्ध में विशेषज्ञ और अन्वेपक होना चाहिए,

(२) खादी-कार्य की जड़ से—स्वच्छ कपास चुनने से आरंभ करके क्रम-क्रम से अपनी इमारत खडी करनी चाहिए,

(३) अपने आर्थिक व्यवहार मे हिसाबी और दक्ष होना चाहिए।

(४) अपना चरित्र शुद्ध रखना चाहिए,

(५) लोगों को खादी का रहस्य समझा कर उसका प्रसार करना चाहिए, और

(६) गॉव के लोगों की तरह-तरह से, जितनी भी सम्भव हो सके सेवा करनी चाहिए।

"खादी की उत्पत्ति और बिक्री के संगठन मे सैकड़ों उच्च—आकांक्षी युवकों के लिए अपनी बुद्धि, व्यवस्था शक्ति, व्यापारिक चतुरता और शास्त्रीय ज्ञान को प्रदर्शित करने का व्यापक क्षेत्र खुला हुआ है। इस एक ही काम को सुचारु रीति से सम्पन्न कर दिखाने से राष्ट्र अपनी स्वराज्य-सञ्चालन-शक्ति सिद्ध करता है।"[१]

१ श्री किशोरलाल मशरूवाला कृत 'गाधी विचार-दोहन,' दूसरा सस्करण, पृष्ठ १६१

: ६ :

सूत्र-यज्ञ का रहस्य

प्राचीन काल मे बडे-बडे राजा-महाराजा भिन्न-भिन्न प्रकार के 'यज्ञ' किया करते थे। अपनी वाञ्छित कामना—आकांक्षा—की सिद्धि की इच्छा से ही ये यज्ञ किये जाते थे। ये यज्ञ प्रभूत परिमाण मे होते थे, इसलिए देश के सब तरह के लोगों को भिन्न-भिन्न कला-कौशल से लेकर साधारण मज़दूरी तक के तरह-तरह के बहुत से काम मिलते रहते थे। इससे उन्हें अपनी गृहस्थी चलाने मे काफी मदद मिल जाती थी।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने यज्ञ के सम्बन्ध में लिखते हुए "समाज के धारण-पोषण के उद्देश्य से जो कोई भी सार्वजनिक कार्य किया जाय, उसीका नाम यज्ञ है" इन शब्दों मे उसकी व्याख्या की है। यज्ञ का सामान्य रूप है व्यक्ति का अपने आस-पास के समुदाय के हित के लिएबिना किसी पुरस्कार अथवा बदले की आकांक्षा के अपनी शक्ति का उपयोग होने देना। बिना किसी व्यक्तिगत फल की इच्छा रक्खे मनुष्य जो कार्य करता है, वह यज्ञ कर्म होता है।

द्रव्य यज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे।
स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाश्च यतय संशितव्रता.॥

इस श्लोक में यज्ञ के द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याययज्ञ और ज्ञानयज्ञ आदि भिन्न-भिन्न नाम बताये गये है। तात्पर्य यह कि यदि हम राष्ट्र का धारण-पोषण करने वाली किसी भी सार्वजनिक संस्था की द्रव्य से सहायता करे तो वह 'द्रव्ययज्ञ' होगा। अगर सार्वजनिक उपयोग के लिए कोई एकाध कुआ, तालाब, सड़क, बाग अथवा मनबहलाव की जगह तैयार करनी हो और उसके लिए हम कुछ शारीरिक श्रम करें तो वह हमारा 'तपोयज्ञ' होगा। पूज्य विनोबाजी ने कहा है—"राष्ट्रीय यज्ञ

मे विचारपूर्वक भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग करना, उनमे संशोधन करना एक प्रकार का तप ही है।[1] समाज-सेवा के लिए उपयुक्त और समर्थ व्यक्ति का चित्त निर्माण करने के लिए ध्यान-धारणा की जो क्रिया की जाती है, वह 'योगयज्ञ' कहलाती है। जो व्यक्ति विना किसी तरह का मुआवज़ा या बदल लिए ही विद्यार्थियो अथवा जनता को अपने ज्ञान का लाभ पहुँचायेगा और यह ज्ञान यदि राष्ट्रीय प्रगति का पोषक हुआ तो उसका यह कार्य 'ज्ञानयज्ञ' कहलायेगा और अपनी नज़रों के सामने यह ध्येय रखकर कि मुझे ऐसा ही 'ज्ञानयज्ञ' आगे भी करना है, उसकी तैयारी के लिए स्वयं उन विषयों का अध्ययन करता है, उसके इस कर्म को 'स्वाध्याय-यज्ञ' कहा जा सकेगा। व्यक्ति की अपनी शुद्धि और विकास के लिए यह 'स्वाध्याय-यज्ञ' करना पडता है।

गत डेढसौ वर्षों से हिन्दुस्तान की करोडों रुपयों की सम्पत्ति अनेक मार्गों से विदेशो को ढोई जा रही है। इन अनेक मार्गों से केवल विदेशी कपडे के द्वारा ही हमारे ५०-६० करोड[2] रुपये बाहर चले जाते हैं। ये कपडे 'जहाज' जैसी कोई वस्तु नहीं हैं जो वर्तमान परिस्थिति मे यहाँ तैयार न हो सकते हों। हिन्दुस्तान में रुई काफी तादाद मे पैदा होती है, करोडों लोग काम के अभाव में वेकार फिरते है; चरखे आदि साधन-सामग्री परम्परा से अपने पास मौजूद है। ऐसी स्थिति मे अपने यहाँ प्रति वर्ष करोडों रुपये के विदेशी कपडे का खपना अत्यन्त दु:खदायक, लज्जास्पद और दुर्भाग्य की बात है।

हिन्दुस्तान की वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखकर महात्माजी का कहना है कि "इस समय सब लोगों के लिए अधिक नहीं तो कम-से-कम आध घण्टा तो प्रतिदिन नियमपूर्वक कातना आवश्यक है। वर्त्तमान युग में

१ उदाहरणार्थ तकली और चरखे की गति वढाने के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग करना 'तपोयज्ञ' होगा।

२ ऐसा खयाल है कि अब यह रकम कम होती जारही है। सन् १९२७ मे ११,६९,६६००० रु० का ही विदेशी कपडा हिन्दुस्तान मे आया था। मनमोहन पुरुषोत्तम गाँधी

भारतवासियों के लिए यह यज्ञकर्म है।" स्वयं महात्माजी इस नियम का पालन करने में कितने नियमित है, यह बात इसीसे प्रकट है कि दूसरी गोलमेज़ परिषद के मौके पर जब वे विलायत गये तो वहाँ उन्हें कार्य की अधिकता के कारण अवकाश मिलने पर वे रात के बारह-बारह बजे तक चरखे पर सूत काते बिना नहीं रहे।

यह यज्ञ-कर्म किस तरह है, इस सम्बन्ध मे महात्माजी की विचार-सरणी यह है कि विदेशी कपडे के बदले में प्रतिवर्ष राष्ट्र के ५०-६० करोड रुपये देश से बाहर जाते है। इस प्रकार 'राष्ट्र मे गढा पड़ गया है, उसे भरने के लिए नित्यप्रति नियमपूर्वक—उपासना बुद्धि से—जो कार्य किया जाय उसे यज्ञ कहा जाता है'[1] 'बूँद-बूँद जल भरे तलावा' इस कहावत के अनुसार यदि प्रत्येक व्यक्ति नियमपूर्वक आध घण्टा प्रति दिन काते तो वर्ष के अन्त मे ३६५ दिन का बहुत सा सूत इकट्ठा हो जायगा। जितना सूत काता गया, उतनी ही राष्ट्र की सम्पत्ति मे वृद्धि हुई। उस सूत की जितनी खादी तैयार होगी, उतना ही विदेशी कपडे की खपत कम होगी। यदि हिन्दुस्तान के ३५ करोड लोग इस तरह अमल करने का निश्चय कर लें तो ५०-६० करोड रुपयों में से हम देश के कई करोड रुपये बचा सकेंगे। ये करोडों रुपये यदि देश में बच जायँ, तो इनसे देश में और अधिक उद्योग-धन्दे शुरू किये जा सकते है। देश की बेकारी दूर करने का यह एक उपाय है। इस प्रकार सूत्र-यज्ञ अर्थात् नित्य नियमपूर्वक आध घण्टा रोज सूत कातना हिन्दुस्तान के भरण-पोषण करने—उसकी आर्थिक उन्नति करने का एक मार्ग है। आज की परिस्थिति मे यह हमारा एक धर्म है; लेकिन 'जो जो करेगा उसका' है।

देश, काल परिस्थिति के अनुसार यज्ञ का स्वरूप बदलता रहता है। आज देश में विदेशी कपडे के ज़रिये प्रति वर्ष बाहर जाने वाले ५०-६० करोड रुपये से जो गढा पडता है, हमे उसे पूरना—भरना—है, इसलिए महात्माजी ने सूत्रयज्ञ की कल्पना देश के सामने रक्खी है। लेकिन मान लीजिए कि देश की अन्न-वस्त्र की आवश्यकता किसी उपाय से देश-की-

१ विनोबा जी का एक भाषण

देश में ही पूरी हो जाय, तब महात्माजी अथवा देश के अन्य नेता देश मे फैली हुई भयङ्कर निरक्षरता को दूर करने का प्रश्न हाथ मे लेंगे, क्योंकि देश की अन्न-वस्त्र के बाद की दूसरी आवश्यकता साक्षरता अर्थात् शिक्षा की है, उस समय राष्ट्र की इस निरक्षता को दूर करने के लिए यह नियम बनाया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को एक निरक्षर व्यक्ति को आध घण्टा रोज़ नियम पूर्वक पढाना ही चाहिए। तब यह 'शिक्षण-यज्ञ' होगा। अथवा देश मे वृक्षो की संख्या बहुत कम होगई है, इसलिए उस कमी को पूरा करने के लिए वर्ष में तीन-चार 'वृक्षारोपण-दिन' मनाने की योजना की जायगी। उस दिन सामूहिक रूप से पेड लगाये जायँगे और फिर यह नियम बना दिया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को नियमपूर्वक आध घण्टा रोज़ इन वृक्षों को पानी पिलाना होगा। यह 'वृक्षारोपण यज्ञ-होगा। मान लीजिए देश की खेती की स्थिति ख़राब होगई है। केवल बरसात के पानी से काम नही चलता। इसलिए यदि विशेषज्ञ लोगों का यह मत हुआ कि पानी के बन्द बनाये बिना कोई गति नहीं है, तब यह नियम बनाया जायगा कि प्रत्येक व्यक्ति को बन्द के लिए आध घण्टा रोज़ नियमपूर्वक खुदाई का काम करना चाहिए। यह 'कृषि यज्ञ' होगा। सारांश यह कि भिन्न-भिन्न समयों मे यज्ञ का स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है।

सूत्र-यज्ञ की एक और भी उपपत्ति नीचे लिखे अनुसार है—

संसार में लूटनेवाले (Exploitors) और लूटे जाने वाले (exploited) जो दो वर्ग बन गये हैं, इसका कारण शारीरिक श्रम से बचने की वृत्ति है। यह जो वृत्ति बन गई है कि उत्पादन के लिए शारीरिक परिश्रम तो दूसरे लोग करें और उससे जो लाभ हो उस पर हम हावी रहें, वह नष्ट होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को—फिर चाहे वह कितना ही विद्वान् और धनवान क्यों न हो—उत्पादक श्रम करके ही अपना पेट भरना चाहिए। यदि इतना सम्भव न हो सके तो कम-से-कम आध घण्टा रोज़ 'सूत्र-यज्ञ' रूपी उत्पादक श्रम तो अवश्य ही करना चाहिए। क्या 'श्रम की प्रतिष्ठा' को अंगीभूत करने के लिए—श्रम-देवता की उपासना

करने के लिए 'सूत्र-यज्ञ' सरल-से-सरल उपाय नहीं है ?

"तुम को हमेशा यह सिखाया जाता है कि श्रम अभिशाप रूप है और शरीर-कष्ट करना दुर्भाग्य का लक्षण है। लेकिन मैं कहता हूँ कि संसार के आरम्भ काल से ही पृथ्वी-माता यह अपेक्षा करती है कि तुम श्रमजीवी जीवन व्यतीत करो, और इसीलिए जब तुम श्रम करते हो, तब पृथ्वी-माता के हृदय में घर करके बैठी हुई आशा को सफल करते हो। श्रम-देवता की उपासना करना जीवन का सच्चा आनन्द भोगना है। श्रम करके जीवन रसास्वादन करना जीवन का गूढ़तम रहस्य समझना है।[१]

गत तेरहवीं सदी में एक ऐसा शासक हो चुका है जो 'उत्पादक श्रम' की प्रतिष्ठा को मानता और इसीलिए स्वयं उसके अनुसार प्रत्यक्ष आचरण करता था। यहाँ पर उसका उल्लेख करना आवश्यक है। दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हो कर जिन भिन्न-भिन्न मुस्लिम घरानों ने शासन किया, उनमें एक गुलाम घराना भी था। इसी गुलाम घराने के बादशाह अल्तमश का लड़का नासिरुद्दीन मुहम्मद वह शासक था। सन् १२४६ में यह तख़्त पर बैठा और २० वर्ष बादशाहत करने के बाद १२६६ में मृत्यु को प्राप्त हुआ। नासिरुद्दीन मुहम्मन कुरान की हस्तलिखित प्रतियाँ बेच कर उनकी आमदनी से अपना गुज़र करता था। उसका रहन-सहन सादा और खान-पान भी किसी बनवासी साधु की तरह बिलकुल मामूली था, लेकिन विचार और सिद्धांत उसके बहुत ऊँचे थे। उसका कहना था कि प्रजा से कर के रूप में वसूल हुए पैसे पर अपने ख़र्च का भार डालना उचित नहीं है।

यही नहीं कि वह स्वयं ही इस उच्च आदर्श का पालन करता था; बल्कि उसकी बेगम भी अपने महल का सब काम-काज ख़ुद ही करती थी। भोजन बनाते समय बेगम साहिबा का हाथ जल जाने पर उससे उसने भोजन बनाने के लिए एक दासी नौकर रखने की प्रार्थना की; लेकिन नासिरुद्दीन ने यह कह कर वह प्रार्थना अस्वीकृत करदी कि दासी

१ सीरियन तत्त्वज्ञानी खलील जिब्रान।

नौकर रखने से श्रम की प्रतिष्ठा घट जायगी और प्रजा के पैसे का दुरुपयोग होगा ! कितनी आदर्श है यह तत्त्वनिष्ठा !

'सूत्रयज्ञ' पर ध्यान देने का एक तीसरा कारण और भी है। हिन्दुस्तान मे दलित समाज काफी बड़ा—करोड़ों की संख्या मे है। सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक आदि अनेक दृष्टियो से वह कष्ट पाता है। उनके लिए हमारे दिल मे व्यथा है, व्यग्रता है, यह हम कैसे व्यक्त करेगे ? केवल व्याख्यान दे देने से काम नहीं चलेगा। उनके साथ एक-रस होने के लिए जिस तरह का वे श्रमजीवी जीवन बिताते है, उसी तरह का जीवन हमे भी बिताना चाहिए, लेकिन यदि वर्त्तमान स्थिति मे यह सम्भव न हो सके तो उस श्रमजीवी जीवन के श्रीगणेश के तौर पर हमे कम-से-कम आध घण्टा रोज़ नियमित रूप से सूत कातना चाहिए। इस आध घण्टे के 'सूत्र-यज्ञ' को दलित-समाज के श्रमजीवी जीवन का प्रतिनिधिस्वरूप समझना चाहिए।

इस प्रकार त्रिविध दृष्टि से 'सूत्र-यज्ञ' पर विचार किया जा सकता है—

(१) विदेशी कपड़ों के कारण देश मे पडे हुए भारी गढे की पूर्ति के लिए।

(२) श्रम की प्रतिष्ठा बढाने के लिए और

(३) देश के करोडो श्रमजीवी लोगो के जीवन से समरस होने के लिए।

क्या इन सब बातों के लिए हम नियमित रूप से आध घण्टा रोज़ सूत कातने का सङ्कल्प नहीं करेगे ? कर्त्तव्य-बुद्धि से प्रेरित होकर जो संकल्प किया जाता है, परिणाम मे उससे अपनी आत्मोन्नति को पुष्टि ही मिलती है।

—समाप्त—

खादी-मीमांसा

[भाग ३ : परिशिष्ट]

: १ :

अमेरिका के स्वतन्त्रता-युद्ध में खादी का महत्त्व

पश्चिमी उन्नति की चकाचौंध से चौंधियाये हुए लोगो को खादी का आन्दोलन राष्ट्र को पीछे ढकेलनेवाला, बीसवी सदी के लोगो को सत्रहवी सदी मे ले जानेवाला, और मोटर मे बैठनेवाले लोगो को बैल-गाडी मे बैठानेवाला आन्दोलन प्रतीत होता है,[१] लेकिन दूर-दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होगा कि वास्तव मे यह आन्दोलन सर्वथा बेसिरपैर का नही है, बल्कि उसके पीछे ऐतिहासिक आधार है।

इतिहास की पुनरावृत्ति होती रहती है। यह स्पष्ट दिखाई देता है कि आज जो राष्ट्र आधिभौतिक उन्नति के उत्तुग शिखर पर चढे दिखाई देते हैं, उनमें के कुछ पश्चिमी राष्ट्रो को जब हिन्दुस्तान की-सी वर्त्तमान विशिष्ट परिस्थिति मे गुजरना पडा था, तब उन्होने भी हाथ के कते सूत और हाथ-करघे का अवलम्बन किया था। उनके इस आन्दोलन का इतिहास मनोरञ्जक होने के साथ ही बोधप्रद है। महात्माजी के खादी के आदोलन पर उससे प्रकाश पड़ता है, अत यहाँ उसपर एक सरसरी नज़र डाली जाती है।

इग्लैण्ड एक अत्यन्त स्वार्थी और साहसी व्यापारी राष्ट्र है। कई सदियो से उसकी यह व्यापारिक नीति चली आ रही है कि ससार के दूसरे राष्ट्र "यावच्चन्द्र दिवाकरौ" हमारी अन्न-वस्त्र की आवश्यकता-पूर्ति के लिए आवश्यक कच्चा माल पहुँचाते रहे और केवल हमी उस कच्चे माल का पक्का माल बनाकर देनेवाले कारखानेदार राष्ट्र रहे।

अपने कपडे के कारखाने जीवित रखने के लिए इग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान के साथ जो व्यवहार रक्खा, ठीक उसी तरह का व्यवहार उसने अपने अमेरिकन उपनिवेश तक के साथ रक्खा।

१. 'यंग इण्डिया' भाग १, पृष्ठ ५०३

मि० जे० आर० मेक्कुवाक नामक एक अग्रेज लेखक ने उन्नीसवी सदी के आरम्भ मे 'व्यापारिक कोश' नामक एक ग्रंथ लिखा है। उसके पृष्ठ ३१९ पर उन्होने लिखा है —

"सन् १७७६ मे अमेरिका मे जो भयकर विद्रोह हुआ, उसका मुख्य कारण ब्रिटिश सरकार का उस उपनिवेश की व्यापारिक स्वतन्त्रता का अपहरण कर लेना था।"

"ब्रिटिश सरकार ने उन लोगो पर यह पाबन्दी लगाई कि उपनिवेशवासी अपना कच्चा माल सिर्फ ब्रिटिश बाजार मे ही बेचे और अपनी आवश्यकता का माल इग्लैण्ड के व्यापारियो और कारखानेदारों से ही खरीदे।[१] इसके लिए सन् १६६३ ई० इस आशय का कानून बनाया कि ब्रिटिश उपनिवेश में इग्लैण्ड के सिवा यूरोप के किसी भी दूसरे राष्ट्र के खेतो मे पैदा हुआ और कारखानो मे तैयार हुआ माल न आने पावे। सिर्फ इग्लैण्ड, वेल्स, अथवा बरविक-अपॉन-ट्वाइन पर चढा हुआ माल ही उन उपनिवेशो मे जाने पावे और वह भी ऐसे जहाज पर लदा हुआ जो इग्लैण्ड में ही तैयार हुआ हो और जिसका मालिक और कुल खलासियों का तीन-चौथाई खलासी अग्रेज हो।"[२]

अपने उद्योग धन्धो को उत्तेजन देने का इग्लैण्ड का यह कैसा अट्टहास और अपने माल को दूसरो के सिर पर थोपने की कितनी जबरदस्ती है यह! उपनिवेश में प्रवेश करनेवाला सारा का सारा माल इंग्लैण्ड का ही हो, और वह भी इंग्लैण्ड में तैयार हुए जहाज पर लदकर आना चाहिए और उस जहाज का मालिक और खलासी भी अग्रेज ही होने चाहिएँ। अवश्य ही इग्लैण्ड का स्वदेशाभिमान कौतूहलपूर्ण और अनुकरणीय है, लेकिन साथ ही अपना माल दूसरे राष्ट्रो पर लादने की उसकी जबरदस्ती अत्यन्त निन्द्य और तिरस्करणीय है।

१ श्री जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी, मद्रास द्वारा प्रकाशित 'Swadeshi movement' नामक पुस्तक के पृष्ठ १४८ पर मि० फेल्स द्वारा उद्धृत।

२. पिछली बार का 'ओटावा पेक्ट' देखिए।

मेक्कुलाक साहब आगे कहते है—"उपनिवेशो के साथ व्यवहार करने की हमारी (अंग्रेजो की) इस नीति के उदाहरणो से इतिहास के पन्ने भरे हुए है। उपनिवेशो के साथ बर्ताव करने में इस तत्त्व को इतने महत्त्व का मा ा जाता था कि लार्ड चोथेम जैसे राजनीतिज्ञ भरी पार्लमेण्ट मे यह कहने से नही हिचकिचाये कि उत्तरी अमेरिका के ब्रिटिश उपनिवेशवालो को एक कील अथवा घोडे की नाल तक तैयार करने का अधिकार नही है। जब कि कानून बनानेवाली पार्लमेण्ट के कानून इस तरह के हो और उपनिवेशो के मित्र कहलानेवाले पार्लमेण्ट के बड़े-बडे अगुआओ के ऐसे निश्चयात्मक उद्गार हो, तब पहले लार्ड शेफील्ड ने अपने सार्वजनिक भाषण में जो उद्गार प्रकट किये, उन्हे सुनकर किसी प्रकार का आश्चर्य होने का कोई कारण नही है। उनके इन उदगारो को उनके समकालीन व्यापारियो के ही उद्गार समझना चाहिए। उन्होने कहा था—"अमेरिकन उपनिवेश और वेस्ट इण्डिया बन्दर का मुख्य उपयोग यही है कि वे अपना कच्चा माल हमारे हाथो बेचे और खुद अपने लिए हमारे यहाँका पक्का माल खरीदे।"[१]

कितने स्पष्ट उद्गार है ये ?

इससे भी अधिक स्पष्ट और कठोर व्यवस्था लार्ड कॉर्नबरी की दी हुई है। उन्होने कहा था—

"इन सब उपनिवेशो को अपने को मुख्य वृक्ष (इंग्लैण्ड) की शाखाये मानकर पूर्णतया इग्लैण्ड पर ही अवलम्बित रह कर उसीका पल्ला पकड़ कर रहना चाहिए" और "उपनिवेशवासियों की जो यह धारणा है कि हम रक्त-मास से अग्रेज है, इस लिए हमे भी इग्लैण्डवासियो की तरह अपने यहाँ कारखाने स्थापित करने चाहिएँ, उसे जरा भी उत्तेजन नही मिलने देना चाहिए।"

उपनिवेश इग्लैण्ड की तरह ही अपने यहाँ कारखाने स्थापित क्यो न करे, इसके लिए जो कारण दिये गये है वे अत्यन्त मार्मिक है। लार्ड

१. जी ए. नटेसन कम्पनी, मद्रास द्वारा प्रकाशित 'Swadeshi movement' नामक पुस्तक के पृष्ठ १४९ से उद्धृत

कॉर्नबरी आगे कहते है—

"अगर उनकी उक्त धारणा को उत्तेजन मिला तो उसका परिणाम यह होगा कि जिन लोगो को इग्लैण्ड का पल्ला पकडकर रहना पसन्द नही है, अगर उन्होने एक बार इग्लैण्ड की मदद के विना ही सुखकर और सुन्दर वस्त्र अपने आप तैयार करने की शुरूआत कर दी, तो उनके अन्त करण मे स्वतन्त्रता प्राप्त करने की जो इच्छा घर किये हुए है उसे जल्दी ही मूर्त्त रूप मिले विना रह न सकेगा।"

इन उद्गारो से यह स्पष्ट है कि दूसरे राष्ट्रो को अपने ताबे मे रखने की सत्ता-लोलुपता इग्लैण्ड के रोम-रोम में भरी हुई है।

इग्लैण्ड के जिन अमीर-उमरावो के हाथ मे इग्लैण्ड के व्यापार के सूत्र थे, उन्होने लार्ड कॉर्नबरी की इस इच्छा का अनुसरण कर उपनिवेशो के मन और ऊन के कारखानो को नष्ट कर देने का प्रयत्न किया।

सन् १६४१ में ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने यह निश्चय किया कि उपनिवेशो के माल से भरे हुए वर्जीनिया के बन्दरगाह से रवाना होनेवाले कोई भी जहाज़ इग्लैण्ड के सिवा और किसी भी दूसरे राष्ट्र कें बन्दरगाह पर न जाने पावे।

इसके बाद एक ऐसा कानून बनाया गया कि १ दिसम्बर सन् १६९९ के बाद से अमेरिका के किसी भी ब्रिटिश उपनिवेश का ऊनी अथवा ऊन-मिश्रित माल किसी भी कारण से तथा जहाज, घोडे अथवा गाडी आदि किसी भी सवारी के ज़रिये इन उपनिवेशो के बाहर न जाने पावे।

साथ ही यह भी कि इग्लैण्ड मे तैयार होनेवाले माल का सा माल तैयार करना ब्रिटिश सिक्के की नकल करने के समान अपराध समझा जाता था और वैसा माल तैयार करनेवाले को तदनुसार सजा दी जाती थी।

इग्लैण्ड के ये और इस तरह के दूसरे कानून अमेरिका पर लादने पर अमेरिका ने भी उतने ही ज़ोरो से उनका प्रतिकार शुरू किया। अमेरिका और हिन्दुस्तान इन दो राष्ट्रो पर इग्लैण्ड द्वारा किये गये अत्यचारो में जैसा ऐतिहासिक साम्य दिखाई देता है, वही साम्य इन दोनो राष्ट्रो द्वारा किये गये प्रतिकारो मे भी व्यक्त होता है। इन दोनो ही राष्ट्रो ने

इग्लैण्ड का जो प्रतिकार किया, उसका इतिहास अत्यन्त बोधप्रद और मनोरञ्जक है। अमेरिका द्वारा किये गये प्रतिकारो का हाल पढते समय यही प्रतीत होता है, मानो हम हिन्दुस्तान की वर्त्तमान स्थिति का हाल पढ रहे हो। इतिहास की पुनरावृत्ति किस तरह होती है, उसका यह एक मजेदार उदाहरण है।

अमेरिका ने वैधानिक ढग से किस तरह इग्लैण्ड का प्रतिकार किया, इस पर सक्षेप में एक नजर डालिए।

आयात-प्रतिबन्धक प्रस्ताव

भिन्न-भिन्न उपनिवेशो ने पहले नीचे लिखे अनुसार एक प्रस्ताव किया—"सामान्यत सब विदेशी माल और विशेषकर अमेरिका से उत्पन्न अथवा तैयार हुई चाय और शराब-जैसे अनावश्यक पदार्थ अमेरिका के तट पर न आने दिये जायँ, न खरीद किये जायँ, न उनका उपयोग किया जाय।"[1]

ऐसे प्रस्ताव पर प्रमुख नागरिको के हस्ताक्षर कराने का काम जोरो से शुरू हुआ।

पत्र व्यवहार-समितियाँ—विदेशी माल की आमद रोकनेवाले इस प्रस्ताव का महत्त्व जनता के हृदय में बिठाने के लिए 'पत्रव्यवहार-समितिया' स्थापित की गई और उक्त प्रस्ताव को जगह-जगह भेजने का काम इनके सुपुर्द किया गया।

निरीक्षण समितियाँ—सारे देश भर मे दक्ष और विवेकशील पुरुषों की 'निरीक्षक समितियाँ' चुनी गई। इनके जिम्मे "माल का लेन-देन करनेवाले दूकानदारो और ग्राहको के व्यवहार पर सूक्ष्म देख-रेख रखने और उपरोक्त प्रस्ताव को अमल मे न लानेवालो के नाम प्रकाशित कर उन्हे 'जनता का उपहासपात्र और कोप-भाजन बनाने' की व्यवस्था" का काम दिया गया।

उपनिवेशवाले केवल प्रस्ताव पास करके और समितियाँ स्थापित करके ही चुप नही बैठ गये, बल्कि देशी उद्योग-धधो को उत्तेजन देने और

१. 'Swadeshi movement' पृष्ठ १५१

विदेशी माल के त्याग के साथ-साथ रचनात्मक कार्य भी करने लगे।

चरखे का संगीत—हाथ-कते सूत के कपड़ों का व्यवहार करने वाले मण्डल—विवाह समारंभों पर खादी का उपयोग

"जगह-जगह पर लोग कहने लगे चरखे का संगीत वीणा अथवा सितार से भी अधिक मधुर और श्रवणीय है। हाथ-कते सूत के कपड़े पहननेवालों के मण्डल स्थापित किये गये। इन मण्डलों के सदस्यों के स्वागत-समारम्भ अथवा उत्सव आदि के मौकों पर इनके शरीर अथवा टेबल पर हाथ-कते सूत के कपड़े के सिवा और कोई दूसरा वस्त्र काम में नहीं लाया जाता था। विवाह-समारम्भ भी स्वदेशाभिमान के सिद्धान्त पर होने लगे। दिसम्बर सन १७६७ में 'फ्लिण्ट' नामक कुमारी के विवाह प्रसंग पर आये हुए बहुत से मेहमान घर में तैयार हुए कपड़े ही पहनकर आये थे। स्त्रियों तक ने रेशमी वस्त्र, विभिन्न प्रकार के फीतों और फूलों का व्यवहार छोड दिया था। मेहमानों के पदार्थ विपुल और नाना प्रकार के होने पर भी सब स्वदेशी ही थे। देशी वनस्पति-जन्य 'लेब्राडर चाय' लोकप्रिय पेय था।"[१]

"ब्रिटिश वस्त्रों का बहिष्कार सफल करने के लिए अमेरिका के प्रेसीडेण्ट स्वय जार्ज वाशिंग्टन और उनका सारा कुटुम्ब कातने-बुनने के काम मे निमग्न हो गया था। जहाँ राष्ट्र का प्रधान स्वयं कातता हो वहाँ 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजन:' के न्याय से दूसरे सामान्य लोग भी कातने-बुनने मे लग जायँ, तो इसमे आश्चर्य ही क्या है? बहिष्कार को सफल बनाने के लिए उन लोगों ने अपने माल की महँगाई अथवा मोटे-झोटेपन पर कुछ ध्यान नही दिया।"[२]

"अमेरिकन उपनिवेशों की अपने घरेलू उद्योग-धंधों को उत्तेजन देने की भावना इतनी तीव्र थी कि वहाँ अपने यहाँ तैयार होनेवाले मोटे-झोटे कपड़े का पहनना ही आदरणीय समझा जाता था। ऊन के बारीक और लम्बे अर्ज के कपड़े करघों पर बुने नही जा सकते थे, इसलिए छोटे

१. श्री फेल्प्स 'Swadeshi movement' पृष्ठ १५३ में
२. 'बम्बई क्रानिकल' के ६ दिसम्बर १९२८ के अंक के अग्रलेख से

अर्ज के मोटे-झोटे कोट समाज मे विशेपरूप से प्रचलित हो गये और उन का पहनना अधिक सम्मान का लक्षण समझा जाने लगा। अपने वस्त्रो के लिए भेडो से अधिक से अधिक ऊन प्राप्त हो सके, इस खयाल से बोस्टन के लोगो ने 'खाने के लिए' भेडो का उपयोग ही न करने का प्रस्ताव पास किया।"[1]

अपने राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा के लिए अमेरिकन लोगो ने कातने-बुनने का काम जोरो से शुरू किया। स्वय राष्ट्रपति और उनके सब कुटुम्बीजन कातने-बुनने लगे, खादी-मण्डल स्थापित किये गये, विवाह सस्कार भी खादी के वस्त्रो में होने लगे, खादी का व्यवहार सम्माननीय लक्षण समझा जाने लगा। इतना ही नही प्रत्युत खादी के लिए ऊन की पूर्ति करने के उद्देश्य से लोग अपनी जिह्वा-लोलुपता पर भी अकुश रखने के लिए तैयार हो गये और सुस्वादु ब्रिटिश चाय छोडकर देशी वनस्पति-जन्य लेब्राडर चाय पीने लगे।[2]

क्या ये सब बाते भारतवर्ष के लिए—भारत के सुशिक्षित नवयुवको के लिए—शिक्षाप्रद नही है ? १५० वर्ष पूर्व अमेरिका पर जो सकट था वही,—प्रत्युत उससे भी कई गुना भयकर सकट—आज हिन्दुस्तान पर आया हुआ है और इसीलिए अगर उसने आत्यन्तिक स्वावलम्बन का तत्त्व सिखानेवाली खादी का अवलम्बन किया, तो इसमें उपहास करने जैसी कौनसी बात है ? अमेरिका मे कातने-बुनने की पुरानी प्रथा न होने पर भी उसने इतना कमाल का प्रयत्न किया, सचमुच यह बात उसके लिए अत्यन्त प्रशसा की है।

१. श्री फेल्प्स की 'Swadeshi movement' के पृष्ठ १६२ में, तथा पृ. ३०७ मे लेकी का वक्तव्य भी देखिए।

२. अमेरिका का ऐसा उज्ज्वल उदाहरण नजरो के सामने मौजूद होते हुए भी जो भारतीय नेता स्वयं सूत कातकर अपने उदाहरण से लोगो के मनो पर स्वयं सूत कातने और खादी पहनने की छाप डालना चाहते है, उनका मजाक उड़ाने अथवा टीका करनेवाले देशभक्त हिन्दुस्तान में मौजूद हैं ही।

इस प्रकार हमने देखा कि इग्लैण्ड के अमेरिका की व्यापार-विषयक स्वतन्त्रता पर अकुश लगाने का प्रयत्न करने पर किस प्रकार अमेरिका ने स्वावलम्बन के तत्त्व का अवलम्बन कर हाथ-कते सूत और हाथ-बुने कपडे को स्वीकार कर उसका प्रसार किया।

: २ :

संसार में हस्त-व्यवसाय का स्थान

पाठको को याद होगा कि "कपडे के धधे की हत्या' शीर्षक अध्याय में हम देख आये है कि अठारहवी सदी के द्वितीयार्द्ध में जब हिन्दुस्तान की रगबिरगी छीटो, बारीक मलमल और रेशमी माल ने इग्लैण्ड की महारानी, अमीर उमराव और दूसरे बडे-बडे लोगो के घरानो में प्रवेश किया तो स्वय ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने सन् १७७४ में इस आशय का एक अत्यन्त महत्त्व का कानून बनाया कि "इग्लैण्ड मे बिक्री के लिए आने-वाला माल इग्लैण्ड मे ही कता-बुना होना चाहिए।" यह बात विशेषरूप से ध्यान देने योग्य है कि मुक्त वाणिज्य या खुले व्यापार की डीग हाँकने-वाले इग्लैण्डतक ने अपने उद्योग-धधो की रक्षा करने के लिए हाथ-कते सूत का और हाथ की बुनाई का अवलम्बन किया था।

इस पर कुछ लोग यह आपत्ति करेंगे कि यह ठीक है कि राजनैतिक अथवा औद्योगिक सकट आने पर अमेरिका और इग्लैण्ड ने हाथ के सूत और हाथ की बुनी ऊन की खादी का अवलम्बन किया, लेकिन यह तो सत्रहवी और अठारहवी सदी की बात हुई। उस समय 'मशीन युग' स्थापित नही हुआ था, अथवा वह पूरी तरह जम नही सका था, इसलिए उन्हे (इग्लैण्ड और अमेरिका को) ऐसा करना उचित प्रतीत हुआ और उन्होने ऐसा किया इसमे आश्चर्य लगने जैसी कोई बात नही है। लेकिन आज जब कि पश्चिमी देशो मे जहाँ-तहाँ मशीनो की भरमार हो रही है, उस दशा मे चरखे और हाथ के करघे—जैसे घरेलू धधो का चल सकना सम्भव नही है।

इस आपत्ति पर सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक प्रिंस कोपाटकिन कहते है –
छोटे-छोटे घधो का क्षेत्र सर्वथा स्वतन्त्र है। यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि बडे बडे औद्योगिक शहरो मे भी छोटे-छोटे धन्धे अभी तक जारी है।"[१]

"ससार के प्रत्येक देश में बडे-बडे कारखानो के साथ-साथ बहुत से छोटे-छोटे धन्धे चलते रहते है। विचित्र-विचित्र तरह का माल तैयार करने और फैशन की चमक-दमक पैदा करने मे ही इन धन्धो की सफलता की कुञ्जी है। ऊनी और ऊन तथा सूत-मिश्रित माल के सम्बन्ध मे तो हमारा यह कथन और भी विशेष रूप से लागू होता है।" [२]

"ज्यो-ज्यो अधिकाधिक खोज एव आविष्कार होते जाते है, त्यो-त्यो ऐसे छोटे-छोटे धन्धो की हमे विशेष आवश्यकता होगी।"[३]

अस्तु, सक्षेप मे कहा जाय तो यो कहना चाहिए कि यूरोप के कितने ही राष्ट्रो मे आधुनिक मशीन-युग में भी चरखे, तकली और खादी का स्थान और आवश्यकता अभी तक मौजूद हैं। यूरोपीय राष्ट्रो के गाँवो में आज क्या दिखाई देता है, वह नीचे देखिए[४]—

इंग्लैण्ड

कुमारी एलिसन मेकारा नाम की लेखिका इग्लैण्ड मे चरखे के प्रचार के सम्बन्ध मे लिखती है–"इस समय भी स्वय हमारे इग्लैण्ड मे भी चरखे चलते है और उनके सूत से कुछ तरह का माल तैयार होता है। उनके कभी नष्ट होने की कल्पना ही नही की जा सकती। अनेक मनोहर कथानको मे चरखे का वर्णन दिखाई देता है। अपने साहित्य मे भी समय-समय पर उसका उल्लेख आता है। उपयुक्त काम करनेवालो

१ प्रिंस कोपाटकिन-कृत 'Field, Factories and Workshops' पृ० २४८

२. प्रिंस क्रोपाटकिन-कृत " " " " पृ० २६१.

३ " " " " पृ० २८२.

४. ग्रेग-कृत 'Economics of Khaddar' पृष्ठ ५०

को चरखा विश्राम देता है और ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके साथ ही साथ आदर्श गृह-व्यवस्था होती दिखाई देती है। बाद मे आविष्कृत हुई अनेक कल्पनाओ के बीज इस चरखे मे ही छिपे हुए थे।"[१]

श्री ग्रेग ने भी अपनी पुस्तक 'खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र' (Economics of Khaddar) मे भी इग्लैण्ड और अमेरिका मे अभी तक चरखे चलने का उल्लेख किया है।[२]

स्काटलैण्ड

"हिन्दुस्तान के तामिल प्रान्त मे तिरुपुर नामक स्थान पर अखिल-भारतीय चरखा-सघ का एक बडा भारी खादी वस्त्रालय है। यहाँ प्रति वर्ष लाखो रुपये की खादी तैयार होती है। गाँवो मे सूत कतवाने, वस्त्र बुनवाने, रगवाने आदि सब कान इस वस्त्रालय के जरिये ही होते है।

इस वस्त्रालय के आधार पर ही स्काटलैण्ड के एडिनबरा नामक स्थान पर 'हेरिस ट्वीड ट्रेडिंग कम्पनी' नामक सस्था है। इस कम्पनी का सब माल हाथ का कता, हाथ का बुना, और रँगा होता है। यहाँ के माल की मुलायमियत और टिकाऊपन की ससार भर मे प्रसिद्धि है। गाँव के लोगो के लिए यह कम्पनी या कारखाना एक अत्यन्त हितकारक सस्था प्रतीत होती है। टारबर्ट के लोगो को काम देने के लिए वहाँ ऊन की पिंजाई के दो कारखाने स्थापित किये गये है और एक भण्डार भी खोला गया है। इस भण्डार मे वहाँ के लोग अपने घर पर बुना और रँगा हुआ माल बिक्री के लिए लाते है।

शेटलैण्ड टापू में रहनेवाली शान्त स्वभाव की महिला लताबेल से आच्छादित पर्णकुटी मे बैठकर मुलायम और बढिया ऊन पीजती और कातती है। इस ऊन के कारण ही यह टापू प्रसिद्ध है।[३]

इटली

इटली के खेतिहरो—किसानो—की स्त्रियाँ हमेशा अपनी फुरसत के

१. श्री सी. बालाजीराव कृत Khaddar Titbits से

२. पृष्ठ १०६ पर

३. सी बालाजीराव—'चर्खा और तकली' में

समय—और सर्दी के दिनो में शाम को—अपनी पशुशालाओ के पास बैठकर अपने हस्त-कौशल के ऐसे काम किया करती है। वे यह काम किसी तरह का मुआवजा या पुरस्कार पाने अथवा द्रव्योपार्जन के लिए नही, वल्कि अपने खुद के और अपने कुटुम्बीजनो के वस्त्र तैयार करने के लिए करती है।

जिलो के गांवो मे कातने-बुनने का काम साधारणतया हम जितना समझते है उसकी अपेक्षा कही अधिक तादाद मे जारी है। अर्वाचीन कारखानो की वेसुर और कर्कश आवाज की तुलना में कही अधिक सौम्य और शान्त प्रतीत होनेवाला यह काम किसानो की झोपड़ियो में प्रच्छन्न किन्तु अस्खलित रूप में अभीतक भी जारी है।

बुनाई का काम इटली के खेतिहरो का एक मुख्य और सामान्य काम हो गया है। अपने बोये निराये और काटे हुए सन और अम्बाडी से सूत निकालकर और उसका कपडा बुनकर उस कपडे के लम्बे के लम्बे थान की घडी करने या लपेटने में किसान-स्त्रियो को बड़ा स्वाभिमान अनुभव होता है।

जिस प्रकार दक्षिण इटली में स्त्रियाँ रामवाण या सन का काम करती है, उसी तरह एब्रजी भाग मे और उस प्रदेश की कक्षा के पशुओ की चराई के लिए सुरक्षित जिलो में स्त्रियाँ ऊन का काम करती है। वहाँ पर ताज़ी कटी हुई ऊन को साफ करने और जगली फूलो और वनस्पतियो से अथवा पेडो पर लगे हुए फूलो और छाल से रग तैयार कर उस रग से उक्त ऊन को रँगने का काम स्त्रियो को सौंपा जाता है।

" इन मोटी-झोटी और रुएँदार ऊन से स्त्रियो के झगे, पुरुषो के चमचमाते झगे और अनेक प्रकार के सुन्दर वेल बूँटो की दरिया और कालीन अब भी तैयार होते है।

यान्त्रिक—मशीन की—प्रगति लगातार जारी होते हुए भी और विषयो की तरह तकलियाँ अपना पहले का सम्माननीय स्थान फिर प्राप्त करती जा रही है।

सरकार अथवा सरकारी अधिकारियो की सहायता के विना ही रोम—इटली—में स्त्रियो के अपने निजी और व्यक्तिगत प्रयत्नो से ही

'स्त्री-उद्योग-मण्डल' नाम की एक सस्था स्थापित हुई है[१] ।

पोलैण्ड

वारसा जिले के खेतिहरो की झोपडियो में चरखा और हाथ के करघे का सम्माननीय स्थान अभी भी कायम है। अपने ही घरो मे कते हुए सूत का माल पहनने का उनका दृढ निश्चय होने के कारण वे अपनी पोषाक मे कदाचित ही परिवर्त्तन करते है।

हँगरी

हँगरी के पहाड और घाटियो पर और हरियाले ठडे मैदानो मे नगे पैर ही स्वच्छन्दता से घूमती हुई स्त्रियाँ तकली पर सूत कातने के काम मे इतनी निमग्न रहती है कि उनकी अँगुलियाँ विश्राम लेना जानती ही नही। इस तरह के साधारण ढगो से हँगरी ने अपने बहुत से प्राचीन धन्धे कायम कर रक्खे है।

रूमानिया

रूमानिया की डेरियो या पशुशालाओ मे काम करनेवाली कुमारिया दोनो काम करती है। जगल मे अपने हाथों से तकली पर सूत कातने मे मग्न रहती है और शाम को पशुओ को अपने घर वापस ले आती है। तकली का उपयोग सब जगह होता है।

रूमानिया की किसान-स्त्री परम्परा से चली आनेवाली रूढियो का अत्यन्त आदर करती है। आज भी कातना उसका एक विशिष्ट धधा है। ऐसा शायद कभी होता हो जब कि अपने फुरसत के समय मे रूमा-नियन स्त्री के हाथ में तकली न हो।

सर्विया

युगोस्लाविया मे खासकर सर्दी के दिनो मे स्त्रियो के पास काम नही रहता, तब वहाँ कातने, बुनने के और दूसरे घरेलू उद्योग चलते है। ऑच्छिड मे बहुत से पुराने धन्धे ज़ोरो पर पहुँच गये है, लेकिन

१. १ नवम्बर सन १९२८ के 'यंग इण्डिया' में Elisu Ricei की "Women's Crafts" नामक पुस्तक से श्री सी बालाजीराव-कृत संग्रहीत उद्धरण।

स्त्रियो को कातने से बढकर और कोई दूसरा धन्धा पसन्द नही आता।

ग्रीस (यूनान)

डेल्फी के पास एक पहाडी पर यह दृश्य दिखाई दिया कि एक ग्रीक कुमारी घोडे पर सवार होकर पहाडी रास्ता पार करते समय हाथ से तकली पर सूत कातती जाती है। यह एक अजीब दृश्य था और दूसरी जगह शायद ही दिखाई दे। यह प्रसिद्ध है कि अपने घोडे की चाल के सम्बन्ध में उसका आत्म-विश्वास होने और घोड़े के अपने हुक्म मे होने के कारण वह पहाडी रास्ता पार करते समय भी अपने कातने के काम मे निमग्न रहती थी और अपना दुपहरी का समय भी कातने के काम में ही बिताती थी।

ग्रीक स्त्रियो में कातने का काम बहुत पुराने समय से होता आया है और ग्रीक देश का प्रत्येक घर एक तरह का कारखाना ही मालूम होता है। वहाँका खेतिहर—किसान—करघे पर काम करता है। जगह-जगह लकाशायर का माल उपलब्ध होते हुए भी किसी भी मनुष्य का ताना-बाना बुनने का काम सीखने और उसके करने में अपना बहुत-सा समय बिताना कदाचित् आश्चर्यजनक प्रतीत होगा; लेकिन ग्रीसे देश के कुछ भागो में यह धन्धा काफी जीवित है और वहाँ तैयार हुआ माल हम जितना सम्भव समझते है इससे भी अधिक उपयुक्त ठहरता है।

पेरू[1]

पेरू देश की चोला स्त्री अपने बच्चे का लालन-पालन अथवा अपनी भेड़ बकरियो की साल-सम्भाल करते समय भी हमेशा कातती हुई दिखाई देती है। उसके हाथ की तकली हमेशा फिरती ही रहती है। उस पर वह कच्ची ऊन के गेंद से मोटा सूत कातती है। आवश्यक पदार्थ मिलने के ठिकानो से दूर पहाड़ियो एवम् घाटियो के निवासी होने के कारण वहाँकी स्त्रियाँ इस प्रकार ऊन कातकर अपने लिए आवश्यक अधिकाश वस्त्र तैयार करती है।[2]

१. यह देश दक्षिण अमेरिका के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर है।

२ श्री सी बालाजीराव की अंग्रेजी पुस्तिका 'Charkha and Takli'

इस प्रकार यन्त्रो–मशीनो–के पीहर बने हुए यूरोप, अमेरिका तक मे अभी तक चरखे, तकली और खादी का स्थान है, तब क्या हिन्दुस्तान जैसे कृषि-प्रधान राष्ट्र मे इनका जोरो से प्रसार करना लाभप्रद नही है ?

: ३ :

खादी-सम्बन्धी हिसाब[१]—१

(कताई-विषयक)

खादी-सम्बन्धी कोई भी काम शास्त्र-शुद्ध अथवा वैज्ञानिक पद्धति से करना हो तो उसके लिए कुछ हिसाब सम्बन्धी-जानकारी आवश्यक होती है, इसलिए इस परिशिष्ट मे (१) सूत का नम्बर बल और समानता किस तरह निकाली जाय, (२) वस्त्र-स्वावलम्बी होना हो—साल भर मे अपने लिए आवश्यक २२ गज़ कपडा तैयार करना हो—तो कितनी देर लोढना, पीजना और कातना चाहिए, (३) प्रति दिन सामान्य गति से एक घण्टा तकली पर और एक घण्टा चरखे पर कातने पर वर्ष के अन्त मे कितना कपडा तैयार होता है और (४) मनुष्यो को अपने कुर्ते, धोती और स्त्रियो को अपनी साडियो के लिए कितना सूत और कितनी देर तक कातना होगा, इस सम्बन्ध मे शास्त्र-शुद्ध हिसाब दिया गया है। हमें आशा है कि इस हिसाब से लाभ उठाकर पाठक "बूँद-बूँद जल भरै तलावा" की कहावत के अनुसार कातकर वर्ष के अन्त मे सहज ही वस्त्र-स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न करेंगे।

सूत का अंक निकालने के लिए पहले नीचे दिये हुए कोष्ठक ध्यान मे रखने चाहिएँ—

४ फुट = १ तार
१६० तार = १ लट
४ लट = १ लच्छी (६४० तार)

१६ आनें = १ तोला
५ तोले = १ छटाँक
८ छटाँक = १ पौण्ड

२ पौण्ड = १ सेर (६४० आने भर)

१ यह जानकारी महाराष्ट्र खादी-पत्रिका से ली गई है।

एक पौण्ड (६४० आने भर) वज़न मे जितनी लच्छियाँ (लच्छी = ६४० तार) चढे, उतने ही अक का वह सूत समझा जाना चाहिए। इसी कल्पना को समीकरण की पद्धति मे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

$$\frac{\text{तारो की सख्या (१ तार = ४ फुट)}}{\text{उपरोक्त तारो का वज़न (आनो में)}} = \text{सूत का अक}$$

उदाहरणार्थ—तारो की सख्या २००० है और उनका वज़न आनो मे १०० आने भर है, तब $\frac{२०००}{१००}$ = २० सूत का अक निकला। उपरोक्त समीकरण से निम्न-लिखित दो समीकरण पैदा होते है—

(१) सूत का अक × वज़न (आनो में) = तारो की सख्या।

(२) $\frac{\text{तारो की सख्या}}{\text{सूत का अक}} = \text{वज़न (आनो मे)}$

सूत का अक निकालने की एक पद्धति और है—

$$\frac{\text{गज़ो की सख्या}}{\text{वज़न (तोलो मे)} \times २१} = \text{अक}$$

उदाहरणार्थ—सूत २१०० गज़ है और उसका वज़न ५ तोला है, तो उसका अक $\frac{२१००}{५ \times २१}$ = २० निकला।

सूत का बल—जिस सूत का बल निकालना हो, उसके एक फुट लम्बाई के लकडी के लपेटे या अरेटन पर छ तार लपेट कर उसकी लट तैयार की जाय।
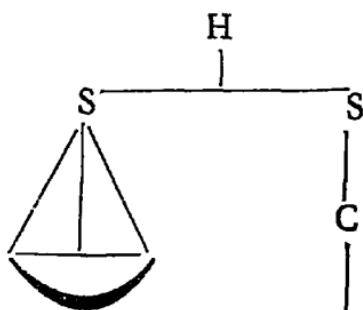
ऊपर दी हुई आकृति के अनुसार एक पलडेवाली तराजू तैयार की जाय। पलडे की तराजू के एक ओर अंग्रेजी के S (एस) के आकार की एक कडी लगाई जाय। जिस सूत का बल निकालना है, उसकी लट इसी कडी मे अटकाई जायगी, अत इस कडी का नीचे का मुँह चौडा रखना चाहिए। तराजू के समतोल होने पर उसकी डण्डी के सिर पर नीचे की ओर इस कडी मे से एक फुट लम्बाई की सूत की लट अटकाई जा सके, इतने अन्तर पर चित्र मे बताये अनुसार एक हुक लगाया जाय। जिस ओर पलडा हो उस ओर की तराजू के सिरे की कडी का वजन उसके सामने के सिरे की कडी के वज़न जितना ही होना चाहिए। इस कडी मे पलडे की साँकले अटकाई जायँ। साँकलो की लम्बाई १० इच होनी चाहिए। साँकलो और पलडे का पहले से वजन कर लिया जाय, जिससे कि सूत से तोले हुए वज़न मे उसकी वृद्धि की जा सके।

एक फुट लम्बाई के अटेरन पर सूत के छ तार लपेट कर उन छ हो तारो की तैयार की हुई लट का एक सिरा S आकार की कडी में और दूसरा हुक मे लगाया जाय। इसके बाद तराजू के पलडे मे बाट डालकर सूत की मजबूती देखी जाय। जिस अक के सूत की मज़बूती देखनी हो, उस अक के सूत को, कोष्ठक मे बताये गये वज़न के हिसाब से, ५० फी सदी मज़बूती के लिए जितना वजन उठाना आवश्यक हो, पलडे का वज़न काटकर उतना वजन डाला जाय। अर्थात् पलडे मे डाला हुआ वज़न + पडले व साँकलो का वज़न = आवश्यक वजन—यह समीकरण होगा। जो सूत इतना वज़न भी सहन न कर सके, वह रद्दी समझा जाय। ५० फी सदी मज़बूती के लिए आवश्यक वज़न सूत से तोलने के बाद पलड़े मे धीरे-धीरे पाँच-पॉच तोले के बाट डाले जायँ। इस तरह वजन डालने पर सूत टूटेगा और पलडा नीचे लग जायगा। अखीर मे डाला गया पाँच तोले का वजन भी हिसाब मे शामिल किया जाय और यह समझ कर कि सूत ने इतना वजन उठाया, सूत कितने फीसदी मजबूत है, इसका हिसाब लगाया जाय।

उदाहरणार्थ—२० अंक के सूत की मज़बूती अथवा बल निकालना

है। इसके लिए कोष्ठक मे दिया गया है कि उसे सौ फीसदी मजबूती के लिए १८० तोले वजन उठाना चाहिए, अर्थात् ५० फीसदी मजबूती के लिए ९० तोला वज़न उठाना आवश्यक है। पलड़े का वज़न २० तोले हो, तो ७० तोले वज़न और डाल दिया जाय जिससे कि कुल वज़न ९० तोले हो जायगा। इतने वज़न ही से अगर सूत टूट जाय तो समझना चाहिए कि वह रद्दी है। अगर इतने वज़न से सूत न टूटे तो वाद को एक के वाद-एक पाँच-पाँच तोले के वाट पलडे मे डालते जाइए। मानलीजिए कि इस तरह के नौ वाट डालने पर सूत टूटा, तो इसका मतलव यह हुआ कि उसने कुछ ९०+४५=१३५ तोले वज़न उठाया। अगर उसने १८० तोले वज़न उठाया होता, तो वह सौ फीसदी मज़बूत होता। लेकिन उसने उठाया १३५ तोले, अत यह सिद्ध हुआ कि वह सूत ७५ फी सदी मज़बूत है।

इस तरह कम-से-कम तीन लट का वल निकाल कर उसका औसत निकाला जाय और वह उस सूत की मज़वूती समझी जाय। मज़वूती निकालते समय नीचे लिखी वातें ध्यान मे रखनी चाहिएँ—

(१) मज़वूती की जॉच के लिए अटेरन पर सूत लपेटते समय वह अन्त के दोनो सिरो पर कान लेकर लटी के वीच मे से ही लिया जाय, और उसे लेते समय उसका वल कम न होने दिया जाय।

(२) अटेरन पर उतारे हुए सूत के दोनो सिरो पर की सधि या जोड पक्की होनी चाहिए।

(३) अटेरन पर से लट उतार कर उसे कडी और हुक के वीच मे लगाते समय इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि ऐसा करते समय उसमे वट न पड़ने पावे, अथवा उसमें के किसी धागे को धक्का न लगने पावे। उसे अधिक छेडा न जाय।

(४) पलड़े मे वज़न के वाँट डालते समय सूत पर एक दम वोझ न पड़े, इस खयाल से वह हलकेहाथो से डाले जायँ।

(५) वाट डालते समय पलड़े को झोका न लगे इसका भी ध्यान रक्खा जाय।

(६) वीस अक से अधिक के सूत की मजबूती की जाँच करते समय पांच तोले के बजाय ढाई तोले के बाट का उपयोग किया जाय।

(७) पाँच अथवा ढाई तोले का एक–एक बाट ही पलडे मे डाला जाय। एक साथ दो-दो, तीन-तीन बाट न डाले जायँ।

(८) पाँच अथवा ढाई तोले वजन के बाट लोहे के अथवा पत्थर के टुकडो के बना लिये जायँ।

प्रत्येक अक के सूत को सौ फीसदी मजबूती के लिए कितने तोले वजन उठाना चाहिए, इसका नियम इस प्रकार है––

सूत का अंक	वजन उठाना चाहिए तोले	सूत का अंक	वजन उठाना चाहिए तोले
१	२९३४	१९	१८९
२	१४८२	२०	१८०
३	१०१०	२१	१७५
४	९६३	२२	१७१
५	६२४	२३	१६५
६	४८०	२४	१५९
७	४५०	२५	१५४
८	३९०	२६	१५०
९	३५४	२७	१४४
१०	३२४	२८	१३८
११	२८५	२९	१३५
१२	२६४	३०	१३२
१३	२४९	३२	१२८॥
१४	२३४	३४	१२५
१५	२२५	३६	१२१॥।
१६	२१६	३८	११९
१७	२०१	४०	११६॥।
१८	१९५	४२	११३॥

४४	१०६।	७०	७३
४६	१०१॥	७५	६८॥।
४८	९८॥	८०	६६
५०	९६॥	८५	६०॥।
५५	९१॥	९०	५८॥
६०	८३	९५	५५।
६५	७६॥	१००	५४।

सूत की समानता—जिस सूत की समानता की जाँच करनी हो उस सूत को उक्त प्रकार से लपेटें अथवा अटेरन पर छ. लटियाँ बनाकर हर लटी का अलग-अलग अक निकाल लिया जाय। इन सब अक के जोड को छ से भाग देनें पर **औसत अंक** निकल आयगा। बाद को उपरोक्त छ· अकों में से सब से थोडे अक की सख्या, सब से अधिक अक की सख्या में से घटाकर उनके बीच का अन्तर जान लिया जाय। इस तरह से निकली हुई राशियो को निम्न सूत्र मे लिखकर हिसाब करने से सूत की प्रतिशत या फीसदी असमानता मिल जायगी—

$$\frac{१०० \times \text{अन्तर}}{\text{औसत अक}} = \text{प्रतिशत असमानता}$$

असमानता का आकड़ा सौ में से घटाने से सैकडा **समानता** का आकडा निकल आयगा।

उदाहरणार्थ—मान लीजिए कि छ लटियो के अक क्रमश. १६, १८, १५, २०, २२ और १७ हैं। इनका जोड हुआ १६+१८+१५+२०+२२+१७=१०८ इसमे ६ का भाग देने से $\frac{१०८}{६}$=१८ औसत अंक निकला सबसे बडे अक २२ मे से सब से छोटा अंक १५ घटाने पर अन्तर निकला ७, अर्थात् $\frac{१००\times७}{१८}$ =क़रीब ३९ प्रतिशत असमानता अथवा विषमता निकली और १००−३९=६१ प्रतिशत समानता हुई।

वस्त्र-स्वावलम्बन

"वस्त्र-स्वावलम्बन के सम्बन्ध में यह हिसाब लगाया गया है कि

सप्ताह मे सिर्फ एक बार आध घण्टा कपास लोढने, एक घटा रुई पीजने और प्रतिदिन एक घटा कातने से स्त्री-पुरुष, बालक-बालिका अथवा स्वय अपने लिए एक वर्ष तक आवश्यक ५० इच पने का २० नम्बर के सूत का २२ गज कपडा (खादी) तैयार हो सकता है। रुई की कीमत और बुनवाई की मजदूरी के लिए पाँच-छ रुपये खर्च करने होगे।[1]

तकली पर एक घटा प्रति दिन, फी घटा १२ अक के १६० तार की गति से, कातने और वर्ष मे काम के ३०० दिन मानने पर एक वर्ष मे ४८००० तार सूत तैयार होगा। इस सूत की ६४० तार की एक लटी के हिसाब से ७५ लटियाँ होती है। इससे ३६ इच पने की १३ पुन्जे की १९॥ गज खादी तैयार होगी। फी घण्टा १६० तार की गति बिलकुल मामूली गति है, अत कोई भी साधारण व्यक्ति प्रयत्न करने पर वस्त्र-स्वावलम्बी बन सकता है।

चरखे पर एक घण्टा प्रति दिन, फी घटा १२ अक के ३०० तार की गति से, कातने और वर्ष मे काम के ३०० दिन मानने पर एक वर्ष में ९०,००० तार सूत निकलेगा। इस सूत के ६४० तार की एक लटी के हिसाब से १४०$\frac{5}{8}$ लटियाँ होती है। इनसे ३६ इञ्च पने और १३ पुन्जे की ३५$\frac{5}{8}$ गज़ खादी तैयार होगी।

वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से मनुष्य को कुर्ते अथवा कमीज के कपडे और धोती अथवा साडी के लिए कितना सूत कातना चाहिए और उसमे कितना समय लगेगा, इसकी कल्पना निम्नलिखित हिसाब से हो सकेगी—

कुर्ते अथवा कमीज का कपड़ा—४५ इञ्च पने की, १२ अक के सूत की १५ पुञ्जे मे १० गज़ खादी तैयार करने के लिए २५८५० तार सूत की आवश्यकता होगी। इसकी ४०॥ लटियाँ (१ लटी = ६४० तार) होती है। एक घण्टा प्रति दिन, फी घण्टा २५६ तार की गति से, कातने पर इतना सूत कातने के लिए सिर्फ १०१ दिन लगते है। इसकी खादी से सामान्यत पाँच कुर्ते तैयार होते है। महाराष्ट्र-चरखासघ के वाण न०

१. 'आपळा आर्थिक प्रश्न' पृष्ठ २२६

१२४० के अनुसार यह हिसाब लगाया गया है ।

धोती—५० इञ्च पने का, १४ अक के सूत का १७ पुञ्जे में ९ गज़ का धोती-जोडा तैयार करने के लिए २९०७० तार सूत लगेगा। इसकी ६४० तार की एक लटी के हिसाब से ४५।। लटियाँ होती हैं। एक घण्टा प्रतिदिन, फी घण्टा २४९ तार की गति से, कातने पर इतना सूत कातने के लिए सिर्फ ११६।।। दिन लगते हैं। महाराष्ट्र चरखासघ के वाण न० १४४० के अनुसार यह हिसाब लगाया गया है।

साडी—५० इञ्च पने की २४ अक के सूत की १८ पुञ्जे मे ९ गज की साडी तैयार करने के लिए १०७८० तार सूत लगेगा, जिसकी ४८ लटियाँ होती हैं। एक घण्टा प्रतिदिन, फी घण्टा २१३ तार की गति से, कातने पर इतना सूत कातने के लिए सिर्फ १४० दिन लगते हैं महाराष्ट्र-चरखासघ के वाण न० २४४२ के अनुसार यह हिसाब लगाया गया है।

नोट—(१) ऊपर के सब हिसाबो मे प्रति घण्टा कातने की गति अलग-अलग बताई गई है। महाराष्ट्र-चरखासघ ने जिस गति से कातने के लिए आठ घटे की मजदूरी चार आने निश्चित की है, वही गति उक्त हिसाब में मानी गई है।

(२) सामान्यत जितने पुञ्जो मे खादी बुनी जाती है, १० गज़ में उससे तिगुनी लटियो की आवश्यकता होती है। उदाहरणार्थ १५ पुञ्जे की १० गज खादी के लिए १५×३=४५ लटियो की आवश्यकता होगी।

खादी-सम्बन्धी हिसाब—२

(बुनाई-विषयक)

सूचना · कपडा बुनवाने के लिए जो प्राथमिक जानकारी आवश्यक है, उसे अको मे देने का प्रयत्न साथ के कोष्ठक मे किया गया है।

इस कोष्ठक से यह जानना सुलभ होगा कि एक नम्बर के सूत का भिन्न-भिन्न अर्ज का १० गज़ कपडा बनाना हो तो (१) उसका पोत

या पूंजा (पूंजा = $\frac{\text{पोत} \times \text{अर्ज}}{१२०}$) क्या रखना चाहिए (२) उसमे कितने लच्छी सूत लगाना चाहिए या (३) उसका वजन कितना होना चाहिए ?

स्पष्टीकरण

(१) सिरे पर के पहिले आडे खाने मे कपड़े का अर्ज इच मे बतलाया गया है।

(२) दूसरे आडे खाने में १० गज़ कपडे के लिए लगनेवाली सूत की लच्छियो की सख्या दी गई है। यह सख्या तीसरे आडे खाने मे बताये हुए पूजो की सख्या से हमेशा तिगुनी रहती है।

(३) तीसरे आडे खाने मे पूजो की सख्या दर्शाई गई है।

(४) चौथे आडे खाने मे कपडे का पोत बनाता गया है। पोत का मतलब है कपडे के १ इच मे धागो की सख्या।

(१) पहले खडे खाने मे उस सूत का नम्बर बतलाया गया है जिसकी १ लच्छी का वजन पहिले खडे खाने मे बतलाया गया है।

(२) दूसरे खडे खाने मे १ लच्छी का (६४० तार का) वजन तोले मे दिया गया है।

(३) अत के दोनो खडे खानो में १ सेर सूत की लागत और बिक्री कीमत दी गई है।

(४) बाक़ी के खडे खानो मे भिन्न-भिन्न अको के सूत से एक ही अर्ज या पोत का कपडा बुनवाया जाय तो १० गज कपडे का अपेक्षित वजन तोले मे बतलाया है। एक लच्छी के वजन को १० गज कपड़े को लगने वाली लच्छियो से गुणा करके यह वजन निकाला गया है।

एक ही अर्ज व पोत में भिन्न-भिन्न अक का सूत लगाकर बनाये हुए गफ या झिरझिरे कपडे का भिन्न-भिन्न उपयोग हो सकता है। शर्टिंग के लिए जितनी गफ बुनाई की अपेक्षा रक्खी जाती है, उतनी साडियो के लिए अनावश्यक मानी जाती है। साडी वजन मे हल्की हो और उसकी बुनाई (पोत) झिरझिरी रहे, यही ठीक समझा जाता है। यह बात भिन्न अक के सूत का उपयोग एक ही अर्ज और पोत मे करने से साध्य होती

है। इसमे भी मर्यादा रखनी ही पड़ेगी। उस मर्यादा का खयाल करके ही साथ के आँकडे दिये गये हैं।

नीचे के अन्तिम आडे खाने मे उत्तम सूत के १० गज कपड़े मे लगनेवाली बुनाई-मजदूरी बतलाई है।

सूत के अक का आँकड़ा व कपडे के पोत का आँकडा एक साथ लिख देने से जो सख्या बनती है, वह उसे कपड़े की गुण-निदर्शक मानी जाती है। मध्यप्रान्त-महाराष्ट्र चरखासघ ने कपड़े पर गुण-निदर्शक आँकड़ा लिखने की पद्धति १ जून १९३७ से शुरू की है।

खास सूचना—कोष्ठक मे भिन्न-भिन्न प्रकार के कपड़े का वजन बतलाया है। वह केवल गणित से आनेवाला आँकडा है। प्रत्यक्ष व्यवहार में कभी-कभी इसमें फर्क हो सकता है। किनारी में दोहरे धागे डालना, कपड़ा धोने के पश्चात् अधिक घट जाने की सम्भावना (खासकर छीदे कपडे मे) हो, तब कोरा कपडा मामूली से ज्यादा लम्बा बनाया जाना इत्यादि कारणो से व्यवहार और गणित के वज़न में थोड़ा फर्क होता है। इसलिए यह ध्यान रहे कि साथ के कोष्ठक मे बतलाये हुए वज़न से हर थान पीछे १० तोले तक सूत ज्यादा लग सकता है।

: ४ :

पारिभाषिक शब्दों की अर्थ-सहित सूची

अटेरन—तकुए अथवा तकले पर से जिस पर सूत लपेटा जाता है वह स्वस्तिक अर्थात् सतिये की आकृति का चौखटा।

कणा (चरखी या लोढ़न का)—चरखी या लोढ़न पर कपास में से विनौला अलग करने के लिए जो दो शलाखे होती हैं, उनमे से लाट को घुमानेवाल रूल।

काकर या कुंच—धुनकी अथवा पीजन के कुन्दे पर जिस स्थान मे तांत का आघात होता है, उस स्थान मे लड़की की रक्षा करने और तांत

से निकलनेवाली आवाज़ को मधुर बनाने के लिए लगाई जानेवाली बकरी के कच्चे चमडे की पट्टी ।

कुन्दा, पटड़ा या पंखा—धुनकी का तोल समान रहने और तांत का काम काफी समय तक टिकाने के लिए पखे के आकार का पटडा ।

गराडी या गिर्री—तकुवे पर माल फिराने के लिए लगी हुई लोहे की गिर्री ।

चकरी या दिमरका—तकुवे पर धागा लपेटते समय धागा कुकडी के पीछे न जाने पावे, इसलिए चरखे के तकुए मे लगाई जानेवाली लोहे या टीन की गोल पैसे-नुमा चकरी ।

चमरखा—वह चमडे का टुकड़ा जिसके आधार पर तकुवा घूमता है।

चर्खी—कपास मे से रुई और बिनौले अलग करने का साधन ।

जोत या अघवाइन—चक्रदार चरखे के पहिये की पखड़ियो के सिरे पर बाँधी जानेवाली रस्सी या डोरी ।

तकुवा—लोहे की नुकीली सलाई, जिस पर सूत काता जाता है ।

तॉत—धुनकी या पीजन से रुई पीजते समय रुई गाँठ तोडकर उसके ततु अलग करने के लिए बकरी की आँत या पुट्ठे मे से बटकर तैयार की गई मजबूत डोरी ।

मूठ या मुठिया—धुनने के लिए धुनकी की ताँत पर जिससे आघात किया जाता है वह मुगदर ।

पीढ़ा—सूत कातने के समय बैठने के लिए काम मे लाई जानेवाली चौकी ।

फरेता या फालका—तकली या तकुवे पर की कुकड़ी का सूत उतार कर लटी बनाने का साधन ।

बेअरिंग—चक्र फिराने के लिए सहारा देनेवाला दो स्थानो का आधार ।

भेलनी, पींद या मूडी—चरखे के पहिये के बीच का मोटा लट्टू ।

माल—चरखे के चक्कर पर से घूमते हुए तकुवे को घुमानेवाली बारीक डोरी ।

मोढ़िया या मोहरा—चमरख धरने के खूटे (उसके आधार सहित)।

लाट—चर्खी पर कपास में से बिनौले अलग करने के लिए जो दो सलाखें लगी होती है, उनमें की घूमती हुई सलाख।

साडी या गाभा—कातते समय तकुवा घुमाने के लिए उसपर जिस स्थान में माल की रगड बैठती है, उसका मोटापन बढाने के लिए उसपर सूत, गोंद आदि लगाकर बनाया गया जमाया लपेटा।

: ५ :

आधारभूत ग्रन्थ

संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत पुस्तक लिखने मे हमे जिन पुस्तको से सहायता मिली है, जिज्ञासु पाठको को उनका सक्षेप में परिचय करा देना अप्रासगिक न होगा।

आधारभूत ग्रथो का स्थूल-रूप से वर्गीकरण करने पर उनके चार भाग होते है—(१) ऐतिहासिक, (२) आर्थिक एवम् औद्योगिक, (३) खादी विषयक और (४) प्रासगिक। इनमें से प्रत्येक भाग की पुस्तको मे प्रतिपादित विषय का सिंहावलोकन करते हुए जहाँ, आवश्यकता हुई है वहाँ, लेखक की पुस्तक लिखने के सम्बन्ध मे कैसी दृष्टि रही है, इसकी भी सक्षेप मे चर्चा करदी है। इससे पुस्तक का झुकाव किस ओर है, यह समझने में सहायता मिलेगी।

(१) ऐतिहासिक

अपनी प्राचीन सस्कृति का सामान्य परिचय करा देने के लिए श्री सन्तोपकुमारदास कृत 'The Economic History of Ancient India' (प्राचीन हिन्दुस्तान का आर्थिक इतिहास) नामक पुस्तक अच्छी है। इस पुस्तक मे अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर हर्ष के समय तक के हिन्दुस्तान की कृषि, व्यापार, उद्योग-धन्धे, आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति आदि अनेक विषयो का सक्षिप्त विवेचन किया गया है।

श्री सामदार कृत 'Lectures On The Economic Condition Of Ancient India' (प्राचीन हिन्दुस्तान की आर्थिक स्थिति पर भाषण) नामक पुस्तक का प्रतिपादित विषय भी उपरोक्त ही है। किन्तु विविध जानकारी की दृष्टि से श्री सामदारकी इस पुस्तक की अपेक्षा श्री दास की उक्त पुस्तक श्रेष्ठ है।

सुप्रसिद्ध प्राच्यविद्याविशारद प्रोफेसर मेक्समूलर ने भारतीय सिविल सर्विस के अग्रेज नवयुवक उम्मेदवारो को सम्बोधित करके जो व्याख्यान दिये थे, वे 'India, What Can It Teach Us ?' (हिन्दुस्तान हमें क्या सिखा सकता है ?) नामक पुस्तक मे सकलित है। इन भाषणो मे यह बताया गया है कि भारतीय सस्कृति कितनी उच्च और उदात्त है। जिन लोगो के मनो मे भारतीय सस्कृति के सम्बन्ध मे दुराग्रह घर किये हुए हो, ये व्याख्यान उनके हृदय पर स्पष्ट प्रकाश डालते और भारतवर्ष के सम्बन्ध मे उनके मन मे आदर उत्पन्न करते है।

भारतीय सस्कृति के सम्बन्ध मे अभिमान पैदा करनेवाली एक और दूसरी पुस्तक कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज माननीय सर जॉन वुडरफ कृत 'Is India civilised ?' (क्या भारतवर्ष सुसस्कृत राष्ट्र है ?) नामक पुस्तक है। मि० आर्चर नामक एक अग्रेज लेखक ने 'India And The Future' (हिन्दुस्तान और भविष्यकाल) नामक पुस्तक लिखकर यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि हिन्दुस्तान एक अत्यत अवनत एवम् पिछड़ा हुआ राष्ट्र है, वहाँ के लोगो की न कोई उच्च सस्कृति है, न सस्कार है और न कोई विशेष शिक्षा है। इसीके जवाब मे माननीय वुडरफ महोदय ने यह पुस्तक लिखी थी। उन्होने मि० आर्चर की पुस्तक के सब मुद्दो का अच्छी तरह खण्डन कर भली प्रकार यह सिद्ध कर दिखाया है कि भारतवर्ष का आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान इतना उदात्त और सस्कृति इतनी महान् एवम् आदरणीय है कि ससार को उससे शिक्षा लेनी चाहिए।

श्री प्रमथनाथ बोस ने 'Hindu Civilisation During British Rule' (ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दू-सस्कृति) नामक एक भारी ग्रथ लिखा है। इसके चार भाग किये गये है, जिनमे अत्यन्त प्राचीन काल से

लेकर सन् १८९६ तक भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक, औद्योगिक, बौद्धिक और शैक्षणिक स्थिति आदि के सम्बन्ध में किस-किस तरह परिवर्तन हुए, इसका अत्यन्त सुन्दर विवेचन किया गया है।

प्राचीन राज्य-पद्धति के अध्ययनकर्त्ताओ के लिए श्री जायसवाल कृत 'Hindu Polity' (हिन्दू राज-तत्र) नामक पुस्तक अत्यन्त उपयुक्त है। इस पुस्तक के पढ़ने से हमें प्रतीत होगा कि इस समय 'प्रजासत्तात्मक' राज्य-पद्धति में जो तत्त्व अथवा सुधार दिखाई देते है, उनके अधिकांश तत्त्व एवम् सुधार हमारे पूर्वजो ने सैकडो वर्ष पहले ही अपनी राजकीय सस्था में समाविष्ट कर दिये थे। इस प्रकार इससे अपने पूर्वजो की बुद्धिमत्ता और दूरदृष्टि के सम्बन्ध में आश्चर्य हुए बिना न रहेगा।

श्री पावगी-कृत 'Self-Government in India, Vedic and Post Vedic' (वैदिक और वेदोत्तर समय के हिन्दुस्तान का स्वायत्त शासन) नामक पुस्तक तो मानों अपने देश के शासन-कार्य को अच्छी तरह चला ले जाने की अपनी पात्रता के सम्बन्ध में नौकरशाही को दिया गया मुँहतोड जवाब है। प्रमाणो के आधार पर इसमें यह सिद्ध किया गया है कि अत्यन्त प्राचीन काल से हमारी सस्कृति कितनी उच्च और सर्वांगीण रही है, प्राचीन काल में हम स्वराज्य का किस प्रकार उपयोग कर चुके है और अब भी हम किस प्रकार अपना शासनकार्य चलाने के योग्य है।

स्वर्गीय भारताचार्य श्री चिन्तामणिराव विनायक वैद्य ने अपने 'मध्य युगीन भारत' के तीनो भागो में सन् ६०० से लेकर १२०० तक का इतिहास अत्यन्त विचिकित्सक बुद्धि से लिखा है। इनमें प्राचीन काल से प्रसिद्धिप्राप्त प्रान्तों के सम्बन्ध में दी गई जानकारी अत्यन्त उपयुक्त है। इन तीनो भागो में तत्कालीन राजनैतिक उथल-पुथल के साथ-ही-साथ धार्मिक, सामाजिक और औद्योगिक आदि विषयो का भी ऊहापोह किया गया है, इसलिए वह अत्यन्त बोधप्रद और मनोरंजक भी हो गया है।

इसी तरह उनकी 'Epic India' (प्रतापशाली हिन्दुस्तान) के पढ़ने से रामायण और महाभारतकालीन परिस्थिति का परिचय मिलता है।

श्री सूर्यनारायण राव कृत 'History of Vijayanagar, the Never-

to-be-forgotten Empire' (कभी भी न भुलाये जाने योग्य विजय नगर के साम्राज्य का इतिहास) नामक पुस्तक से इस बात की स्पष्ट कल्पना होती है कि विजयनगर का साम्राज्य कितना वैभव-सम्पन्न और विस्तृत था और साथ ही इस बात का निश्चय होता है कि वह इतना भव्य और प्रचण्ड था कि सचमुच ही वह स्मृति-पटल से कभी-भी ओझल होने योग्य नही है। मि० सिवेल ने 'The Forgotten Empire' (विस्मृत साम्राज्य) नामक पुस्तक लिखी थी, उसीके प्रत्युत्तर-स्वरूप उक्त पुस्तक लिखी गई है।

प्रो० गोविन्द गोपाल टिपनीस-कृत 'कौटिलीय अर्थशास्त्र-प्रदीप' नामक पुस्तक प्रत्येक सुशिक्षित व्यक्ति को अवश्य पढनी चाहिए। इस पुस्तक के पढने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्तकालीन हमारी राजनैतिक स्थिति कितनी आदर्श और उत्कृष्ट थी! हमारे पूर्वजो ने आधिभौतिक विषयो मे कितनी सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातो पर ध्यान दिया था, यह इस पुस्तक के पढने से अच्छी तरह विदित होता है और उससे अपने पूर्वजो की कुशाग्र बुद्धि और दीर्घदृष्टि के सम्बन्ध मे आश्चर्य एवम् कौतूहल हुए बिना नही रहता। इस पुस्तक में राजनैतिक और आधिभौतिक विषयक तो हैं ही; साथ ही धधकते हुए अगारो पर से बिना पैर जले हुए ही मौज से चले जाने, साँकल तोडने और आकाश मे भ्रमण करने आदि बातो का भी उल्लेख है। इस समय हम इन सब प्रयोगो पर आश्चर्य करते है। लेकिन आर्य चाणक्य को ये सब बाते ईस्वी सन् से २००-३०० वर्ष पहले ही मालूम थी। इससे आपका आश्चर्य और भी बढ जायगा। हाँ, यहाँ पर इतना बता देना आवश्यक है कि तत्कालीन सामाजिक नीतिमत्ता अलबत्ता बिलकुल ही रसातल को चली गई थी।

(२) आर्थिक और औद्योगिक

आर्थिक एवम् औद्योगिक विषयो के ग्रथो में श्री दादाभाई नौरोजी-कृत "Poverty and Un-British Rule in India" (हिन्दुस्तान मे अब्रिटिश शासन और दारिद्र्य) और श्री रमेशचन्द्रदत्त-कृत "Economic History of British India" (ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास)

तथा 'Indian Trade, Manufacture and Finance' (भारतीय व्यापार, कारखाने और सम्पत्ति) नामक पुस्तको का प्रमुखता से उल्लेख किया जाना चाहिए।

जिस समय हिन्दुस्तान में सर्वत्र अग्रेजो का बोलवाला था, उस समय सबसे पहले अग्रेजी में उनकी शासन-पद्धति के दोषो को खोद-खोदकर स्पष्ट रूप से सामने ला रखने के लिए अत्यन्त तीव्र प्रतिभा की आवश्यकता होनी चाहिए थी और वह पितामह दादाभाई नौरोजी मे प्रचुरता से विद्यमान थी, यह बात उनके उपर्युक्त ग्रन्थ से स्पष्ट प्रतीत होती है। हाथ मे लिये हुए विषय का सूक्ष्म अध्ययन, अविकारपूर्वक विवेचन करने की पद्धति, स्पष्टवादिता और मन के समतोलपने आदि सद्‌गुणो की मानो पितामह प्रतिमूर्ति थे।

श्री रमेशचन्द्रदत्त की उपर्युक्त दोनो पुस्तकें उनकी स्वदेश-भक्ति, दीर्घ अध्ययन और कुशाग्र बुद्धि की द्योतक है। पितामह दादाभाई की तरह ही श्री रमेशचन्द्र दत्त की स्पष्टवादिता भी सराहनीय है, क्योकि समस्त आयु सरकारी नौकरी में बीतने पर भी, अग्रेजी शासन-पद्धति पर निर्भीक टीका करने के लिए विशेष प्रकार की ही नीति-धैर्य की आवश्यकता होती है। वह उनमें प्रचुर परिमाण मे था, यह उनकी इन दोनों पुस्तको के पढने से स्पष्ट प्रतीत होगा।

अँग्रेजी शासन-पद्धति के वास्तविक अध्ययन एवम् ज्ञान के लिए इन तीनो पुस्तको का पढ़ना आवश्यक है। हमें ये तीनों ग्रंथ अत्यन्त महत्त्व के प्रतीत हुए और इसलिए हमारा तो मत है कि कालेजो में हमें जो इंग्लैण्ड का आर्थिक इतिहास पढना पड़ता है, उसके साथ ही, अथवा उसके बजाय, हमें अपने राष्ट्र का आर्थिक इतिहास सिखाने की सुविधा की जाय तो इससे और कुछ नही तो हमारे अन्तकरण में स्वदेशाभिमान की ज्योति प्रज्वलित होगी और हम अपनी मातृभूमि का ऋण चुकाने के लिए उसकी सेवा करने मे तो प्रवृत्त होगे। श्री दत्त की यह पुस्तक इतनी प्रभावोत्पादक है कि महात्माजी ने अपनी 'हिन्द-स्वराज्य' नामक पुस्तक में उसका उल्लेख करते हुए लिखा है कि "मैंने जिस समय श्री दत्त कृत

'भारत का आर्थिक इतिहास' पढा, मेरे तो आँखो मे से आँसू वहने लगे। और फिर जब-जब मै उसपर विचार करता हूँ, तब-तब मेरा हृदय उद्विग्न हो उठता है।"[१]

श्री रमेशचन्द्र दत्त ने इन दो पुस्तको के सिवा 'Famines in India' (भारतवर्ष के अकाल) नामक पुस्तक भी लिखी है, जिसमे उन्होने हिन्दुस्तान मे प्रचलित भूमिकर या लगान की भिन्न-भिन्न पद्धतियो के गुण-दोषो का विवेचन किया है और साथ ही हिन्दुस्तान मे समय-समय पर पडने वाले दुर्भिक्ष या अकालो की मीमासा भी की है।

प्रो० बालकृष्ण ने अपनी "Industrial Decline in India" (भारतवर्ष की औद्योगिक अवनति) नामक पुस्तक में किस तरह हिन्दुस्तान दिन-प्रति-दिन औद्योगिक दर्जे से च्युत होकर कृषि-प्रधान राष्ट्र बनता जा रहा है और इससे गाँव-गोठो मे रहकर खेती करनेवालो की सख्या किस तेजी से बढती जा रही है, इसका हृदयस्पर्शी विवेचन किया है।

लखनऊ यूनिवर्सिटी के अर्थशास्त्र के प्रोफेसर श्री राधाकमल मुकर्जी-कृत "Foundations of Indian Economics" (भारतीय अर्थशास्त्र का आधार) नामक पुस्तक भी सुन्दर है। श्री मुकर्जी भारतीय सस्कृति के अत्यन्त अभिमानी है। उनका स्पष्ट मत है कि पश्चिमीय और पूर्वीय सस्कृति और स्वभावो के भिन्न-भिन्न होने के कारण इनके अर्थशास्त्र भी अलग-अलग ही होने चाहिएँ। अपनी इस पुस्तक मे उन्होने हिन्दुस्तान की भावी औद्योगिक प्रगति मे ग्रामोद्योग, कारखाने (Workshops) और मिल इन तीनो की कितनी गुजाइश है, इसका अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया है। यह पुस्तक उन्होने सन् १९१४ में लिखी थी। उसी समय उन्होने इसमे मधुपक्षी-पालन, हाथ से धान (चावल) कूटने, गन्ने और ताडी से गुड बनाने, बैलो की सहायता से चलनेवाली घानियो के जरिये तैल निकालने, हाथ के करघे और वनस्पतियो से रग बनाने आदि सब ग्रहोद्योगो की हिमायत की है, यह देखकर उनकी सूक्ष्म दृष्टि के प्रति

१. 'Hind Swaraj' (हिन्द स्वराज) विट्ठलनगर-सस्करण पृ० १६०

आश्चर्य हुए बिना नही रह सकता। हिन्दुस्तान की औद्योगिक योजना में कौन सा नीतितत्त्व सन्निहित है, और उनसे क्या बोध लेना चाहिए, इसका भी उन्होंने सुन्दर प्रतिपादन किया है।

मेजर बी. डी. बसु ने अपनी "Ruin of Indian Trade and Industries" (भारतीय उद्योग-धंधो और व्यापार का नाश) नामक पुस्तक में ईस्ट इण्डिया कम्पनी और अंग्रेज-सरकार ने भारतीय उद्योग-धन्धों की किस प्रकार हत्या की, इसका व्यवस्थित रूप से विवेचन किया है।

डा० आनन्दकुमार स्वामी कृत 'Art and Swadeshi' (कला और स्वदेशी) नामक पुस्तक काफी प्रसिद्ध है। तद्विषयक उनके विचार मौलिक है। इसी प्रकार डाक्टर साहब की "Essays in Indian Nationalism" (भारतीय राष्ट्रीयता पर निबन्ध) नामक पुस्तक भी स्वदेशी-तत्त्व की पोषक है। उनका स्वदेशाभिमान कितना जाग्रत है, यह उनकी इस पुस्तक पर से अच्छी तरह प्रकट होता है।

मद्रास की सुप्रसिद्ध जी० ए० नटेसन एण्ड कम्पनी ने हिन्दुस्तान के विभिन्न नेताओ के स्वदेशी सम्बन्धी मत मँगवाकर उनका "The Swadeshi Movement; A Symposium" (स्वदेशी आन्दोलन निबन्ध-संग्रह) नामक पुस्तक में संकलन किया है। देश के स्वदेशी-आन्दोलन का इतिहास एवम् रहस्य समझने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

जिस समय सन् १९०८ मे बंगाल में 'बंग-भंग' आन्दोलन शुरू हुआ और स्वदेशी की प्रचण्ड अग्नि प्रज्ज्वलित हुई उस समय श्री आर० पलित ने "Indian Economists" (भारतीय अर्थशास्त्रज्ञ) नामक मासिक पत्र निकाला, जो चार वर्ष तक चलता रहा। उसमें प्रकाशित उपयुक्त जानकारी से भरे हुए लेखो का संग्रह करके "Sketches of Indian Economics" (भारतीय अर्थ-शास्त्र की रूपरेखा) नामक पुस्तक प्रकाशित की गई है। इनमे हिन्दुस्तान की आर्थिक और औद्योगिक स्थिति किस तरह सुधरेगी इसका विवेचन किया गया है। लेकिन १९०८ की और आज की परिस्थिति में अन्तर है, और विचारो में भी काफी अन्तर पड गया है।

श्री विपिनचन्द्र पाल कृत "The New Economic Menace to India" (भारतवर्ष के लिए नया आर्थिक सकट) नामक पुस्तक में विभिन्न प्रकार से आर्थिक विषयो पर चर्चा की गई है। उसमे यह स्पष्ट दिखाया गया है कि यदि हम भारतवासियो ने पश्चिमीय औद्योगीकरण का अनुकरण किया, तो उससे हमारी कितनी हानि होगी।

श्री कृष्णराव ने अपनी "The Plunder of India's Wealth" (हिन्दुस्तान की सम्पत्ति की लूट) नामक पुस्तक मे यह भली भांति बतलाया है कि अंग्रेजो ने किस तरह हिन्दुस्थान की आर्थिक लूट की है।

श्री गणपति अय्यर ने 'Indian Industrialism' (भारतीय औद्योगिकता) नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखकर उसमे यह बताया हैं कि रचनात्मक ढग से हिन्दुस्तान की औद्योगिक उन्नति किस प्रकार होगी ?

श्री गणेश हरि फाटक ने "स्वदेशी मीमासा" नामक एक पुस्तक लिखी हैं। उसमे उन्होने देश की आर्थिक स्थिति का अत्यन्त मार्मिकता के साथ विवेचन किया है।

माननीय श्री काका कालेलकर-कृत 'स्वदेशी-धर्म' नामक पुस्तक है तो छोटी, लेकिन उसके विचार अत्यन्त मौलिक है। उसमे यह प्रतिपादित किया गया है कि हम जिनसे अपनी सेवा करवाते है, पहले स्वय उनकी सेवा करना स्वदेशी-धर्म का मूल सिद्धान्त है। उन्होने बताया है कि "जिस प्रकार अपना शरीर और अपना कुटुम्ब हम स्वय पसन्द नही कर सकते, वे ईश्वरप्रदत्त वस्तुएँ है, उसी प्रकार अपनी सस्कृति भी ईश्वर की दी हुई वस्तु है, इसलिए उसकी सेवा करना अपना कर्त्तव्य ठहरता है।" इसी प्रकार "प्रत्येक विषय में इस स्वदेशी-धर्म का पालन होना ही चाहिए। धर्म, सस्कृति, सामाजिक रीति-रिवाज, कुटुम्व-व्यवस्था, व्यापार, भाषा, अर्थशास्त्र, राजनीति, वस्त्राभूषण और कलाकौशल आदि सब बातो में इस धर्म का पालन होना चाहिए।"

श्री क्रोपाटकिन की "Fields, Factories and workshops" (खेत, मिलें और कारखाने) नामक पुस्तक काफी प्रसिद्ध है। इसमें

घरेलू धन्धे और हस्तकौशल का युक्तिपूर्वक समर्थन किया गया है।

सर विश्वेश्वर अय्या ने अपनी "Reconstructing India" (हिंदुस्तान का पुनर्निमाण) नामक पुस्तक में भारतीय उद्योग-धन्धों को किस तरह पुनरुज्जीवित किया जाय, इसपर अपनी दृष्टि से विचार किया है। उनका मत है कि हमें भी "पश्चिमीय राष्ट्रों की तरह सब बातों में औद्योगीकरण करना चाहिए।" उन्होंने यह पुस्तक सन् १९२० में लिखी थी।

श्री जे एल ग्रीन ने सन् १९१५ में 'Village Industries" (ग्रामोद्योग) नामक पुस्तक लिखी थी। इसमें तत्कालीन ग्रामीण उद्योग-धन्धों का सक्षिप्त विवेचन देखने को मिलता है।

श्री एम पी गाधी मिलों के विशेषज्ञ हैं। वह प्रतिवर्ष इस धन्धे के सम्बन्ध में सब आँकडेवार जानकारी देनेवाली "The Indian Cotton Textile Industry" (हिन्दुस्तान के सूती मिलों के धन्दे का इतिवृत्त) नामक पुस्तक प्रकाशित करते हैं।

श्री छगनलाल नत्थूभाई जोशी ने गुजराती भाषा में 'आपणु आर्थिक प्रश्न' नाम की उपयुक्त जानकारीयुक्त एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। इसमें "जिन्हे व्यवस्थित रूप से हाई स्कूल अथवा कालेज की शिक्षा नही मिल सकी, उन भाई-बहनो को नज़र के सामने रखकर 'अपने आर्थिक प्रश्नो' की चर्चा की गई है।" लेखक पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं, "इस पुस्तक मे कदाचित् शास्त्रीय दृष्टि न सध पाई हो; लेकिन अपने देश की आर्थिक स्थिति, उद्योग-धन्धे, व्यापार, मुद्रा-विनिमय की परिस्थिति-सम्बन्धी सम्पूर्ण कल्पना और दूसरे प्रगतिशील राष्ट्रो की तुलना करते समय अपने देश की आर्थिक स्थिति कैसी दीन-हीन हो गई है, यह देखकर उसमे से अपना मार्ग किस तरह निकाला जाय इत्यादि बाते पाठको को इस पुस्तक से मालूम हो सकी, तो मै समझूँगा कि इसके लिखने का मेरा परिश्रम व्यर्थ नही गया।"

प्रो० जठार और बेरी कृत "Indian Economics" (भारतीय अर्थशास्त्र) नामक पुस्तक के दोनो ही भाग जानकारी और अको से भरपूर

है। सदर्भ-ग्रथ की दृष्टि से ये दोनो ही भाग अत्यन्त उपयुक्त है। इस पुस्तक के सम्बन्ध में एक महत्त्व की बात का उल्लेख करना आवश्यक है और वह यह कि दोनों ही लेखकों के सरकारी नौकर होने के कारण उनके विवेचन में दादाभाई नौरोजी-जैसी 'स्वतन्त्र वृत्ति' और 'व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि' दिखाई नही पडती।

(३) खादी-विषयक

खादी-विषयक पुस्तको मे अवश्य ही प्रथम सम्माननीय स्थान श्री पुणताम्बेकर और श्री वरदाचारी कृत "Hand-spinning and Hand-weaving" (हाथ की कताई-बुनाई) नामक निवन्ध को दिया जाना चाहिए। खादी पर यही सबसे पहली अधिकारपूर्ण पुस्तक है। अखिल भारतीय चर्खासघ ने पुरस्कार घोषित करके इस विषय पर निवन्ध मँगवाये थे, उन निवन्धो मे श्री पुणताम्बेकर तथा वरदाचारी के निवन्ध पसन्द आये। इन दोनो निवन्धो को सकलित करके पुस्तक के रूप मे प्रकाशित किया गया है। इनमें प्राचीन काल से खादी-सम्बन्धी जानकारी दी गई है। इस पुस्तक का हिन्दी और गुजराती मे भी अनुवाद हो चुका है।

श्री ग्रेग अमेरिकन लेखक है। "Economics of Khaddar" (खादी का सम्पत्ति-शास्त्र) नामक एक सुन्दर पुस्तक लिखकर उसमे शास्त्रीय एवम् शिल्पीय दृष्टि से 'खादी' पर विचार किया गया है। इस पुस्तक के विचार मौलिक और स्वतन्त्र होने के कारण हिन्दुस्तान के सुशिक्षित लोगो मे ही नही, बल्कि पश्चिमीय राष्ट्रो तक मे उनसे विचार-जाग्रति हुए विना नही रहेगी। श्री ग्रेग ने यह पुस्तक लिखकर खादी की बहुमूल्य सेवा की है। इस पुस्तक का भी हिन्दी और गुजराती भाषा में अनुवाद हो चुका है।

श्री ग्रेग की पुस्तक के बाद श्री गुलजारीलाल नन्दा कृत "Some Aspects of Khadi" (खादी के कुछ पहलू)[१] नामक पुस्तक महत्त्वपूर्ण

१ यह पुस्तक 'खादी का महत्त्व' नाम से हिन्दी में सस्ता-साहित्य-मंडल ने प्रकाशित की है।

सिद्ध होगी। श्री गुलजारीलाल का अहमदाबाद की मिलो से काफी सम्बन्ध है, इसलिए उन्होने मिलो के कपडे और खादी का जो तुलनात्मक विवेचन किया है, वह बहुत सुन्दर हुआ है। वर्त्तमान यान्त्रिक युग तक में खादी ही किस प्रकार राष्ट्रोन्नति की पोषक है, इस सम्बन्ध मे श्री नन्दा की की हुई छान-बीन उद्बोधक है, इसमें कोई शका नही है।

बिहाररत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी "Economics of Khaddar" (खादी का अर्थशास्त्र) नामक छोटी-सी पुस्तक में खादी पर होनेवाले कुछ आक्षेपो का युक्तियुक्त खण्डन किया है।

बगाल के सुप्रसिद्ध रसायनशास्त्रज्ञ और खादी-प्रतिष्ठान नामक सस्था के सस्थापक श्री सतीशचन्द्र दासगुप्त ने "Khadi Manual" (खादी मेन्युअल) नामक खादी-सम्बन्धी एक बडी पुस्तक दो भागो मे लिखी है। इसके पहले भाग मे खादी-सम्बन्धी कुछ हिसाब, कोष्ठक आदि जानकारी है। दूसरे भाग मे 'कपास' या रूई के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

पण्डित गणेशदत्त शर्मा कृत 'खादी का इतिहास' और औंध के स्वाध्याय-मण्डल के सञ्चालक श्रीपाद दामोदर सातवलेकर कृत 'वेद में चर्खा' हिन्दी की इन दोनो पुस्तको में वैदिक सूत्रो के आधार पर यह दिखाया गया है कि किस प्रकार अत्यन्त प्राचीनकाल से चरखे और खादी की परम्परा चली आई है।

श्री तालचेरकर यन्त्रशास्त्र-विशेषज्ञ है। इन्होने अपनी 'Charkha-yarn' (चरखा-सूत) नामक पुस्तक मे मशीन के सूत से हाथ-कते सूत की तुलना करके अपने यान्त्रिक और शास्त्रीय ज्ञान के आधार पर हाथ-कते सूत की श्रेष्ठता अत्यन्त मार्मिकता के साथ सिद्ध की है। इस पुस्तक में एक यन्त्रशास्त्र-विशेषज्ञ द्वारा इस प्रकार हाथ-कते सूत की हिमायत की जाती देखकर 'खादी की उपयुक्तता' स्पष्ट प्रतीत होती है।

स्वर्गीय श्री मगनलाल गाधी-कृत 'वणाट-शास्त्र' नामक गुजराती भाषा की पुस्तक मे हाथ-करघे पर हाथ-कते सूत की बुनाई सम्बन्धी आरम्भ से लेकर अन्त तक की सब क्रियाओ की अनुभवपूर्ण जानकारी

दी गई है। महात्मा गाधी के खादी-आन्दोलन शुरू करने के बाद 'बुनाई के काम' के सम्बन्ध मे यही सबसे पहली पुस्तक है।

इन्ही स्वर्गीय श्री मगनलाल गाधी तथा श्री ग्रेग ने 'Takli Teacher' (तकली-शिक्षक) नामक पुस्तक लिखी है। इसमे प्राचीनकाल से तकली पर सूत कातने की प्रथा किस तरह जारी रही है, उसमे क्या-क्या सुधार किये जाने चाहिएँ और उसपर कातना किस तरह सीखा जाय आदि के सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक और सचित्र विवरण दिया गया है। इस पुस्तक का हिन्दी और गुजराती भाषा में भी अनुवाद हो चुका है।

इसके सिवा अखिल भारतीय चरखा-सघ के सब विवरणो, महात्माजी के 'यगइण्डिया' और 'नवजीवन' मे प्रकाशित लेख श्री जयराजानी की 'खादी-पत्रिका' और 'महाराष्ट्र-सघ' की 'खादी-पत्रिका' आदि से खादी विषयक बहुत-सी जानकारी प्राप्त हुई है।

अखिल भारतीय चरखा-सघ के आजीवन सदस्य श्री लक्ष्मीदास पुरुषोत्तम आसर साबरमती के 'खादी-सरजाम-कार्यालय' के सचालक है। पहले यह कार्यालय बारडोली में था। इन्होने 'यरवदाचक्र' नामक जानकारी-पत्रक प्रकाशित किया है। उसमें 'गाण्डीव', 'जीवन' और 'यरवदा' इन तीन चरखो का इतिहास दिया है, वह पठनीय है।

प्रकीर्णक

पण्डित जवाहरलाल नेहरू कृत 'मेरी कहानी'[१] और महात्मागाधी की 'आत्म-कथा'[१] तथा उनका 'हिन्द-स्वराज्य'[१] नामक पुस्तकें इतनी प्रसिद्ध है कि उनके लिए अलग परिचय देने की आवश्यकता नही है।

श्री जयप्रकाशनारायण कृत 'Why Socialism' (समाजवाद क्यो ?) नामक पुस्तक को समाजवाद की भूमिका समझना ीक होगा।

आचार्य कृपलानी ने महात्माजी के कार्यक्रम के विभिन्न विषयो पर प्रसग-प्रसग पर जो लेख लिखे है, उनका एक सग्रह 'Gandhian Way' नामक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुआ है। महात्माजी का रचनात्मक कार्यक्रम कौनसे उच्च तत्वज्ञान पर रचा गया है, इस पुस्तक के पढने पर

१. ये पुस्तकें हिन्दी में सस्ता-साहित्य-मण्डल से प्रकाशित हुई है।

पाठकों को इस विषय की अच्छी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

सन् १९२४ से १९२७ के बीच वर्धा से 'महाराष्ट्र-धर्म' नामक एक मराठी साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था। उसमे पूज्य विनोबाजी के लेख आते थे। उसमे से कुछ चुने हुए लेखो का सग्रह करके 'मधुकर' नामक पुस्तक प्रकाशित की गई है।

पूज्य श्री किशोरलाल मश्रुवाला कृत 'गाधी विचार-दोहन'[१] नामक पुस्तक मे महात्मा गान्धी के सब विषयो के विचार सूत्र रूप में गुजराती भाषा में ग्रथित किये गये है। जिन्हे थोडे मे महात्माजी के विचारो का परिचय प्राप्त करना हो, उनके लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरञ्जनदास ने कलकत्ते से "Forward" नामक अंग्रेजी दैनिक पत्र प्रकाशित किया था। सन् १९२७ मे इस दैनिक पत्र के 'दुर्गापूजा' और 'देशबन्धु के वार्षिक श्राद्ध' के अवसर पर दो विशेषाक प्रकाशित हुए थे। इन अको में बगाल के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वानो के विविध महत्त्वपूर्ण विषयो पर लिखे हुए लेख होने के कारण ये दोनो ही अक सग्रहणीय हैं। पूजा-अक में बगाल की प्रधान-प्रधान सस्थाओ की जानकारी दी गई है। वर्ष-श्राद्ध वाले अक मे यो तो सभी दूसरे लेख पठनीय है, लेकिन इनमे भी श्री ज्ञानाञ्जन नियोगी का "India's Position in the World"—ससार मे भारत का स्थान—अको से परिपूरित लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

श्री म० रा० बोडस ने सन् १८९३ में 'ग्राम-सस्था' नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें ग्रामपञ्चायतो के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है, वह आज भी उपयुक्त प्रतीत होगा।

१. यह पुस्तक हिन्दी में सस्ता-साहित्य-मण्डल से प्रकाशित हुई है।

गांधी-साहित्य

: १ :

आत्म-कथा (दो खण्ड)			१॥) १)
दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह			१।)
अनीति की राह पर			॥=)
स्वदेशी और ग्रामोद्योग			॥)
सत्याग्रह क्यों कब कैसे—			≡)
अनासक्तियोग	=) ≡)	गीताबोध	–)
मंगलप्रभात	–)	हमारा कलंक	॥=)
ब्रह्मचर्य	॥)	सर्वोदय	–)
हिन्द स्वराज	≡)	ग्राम-सेवा	=)

गांधी-साहित्य

: २ :

गांधीवाद : समाजवाद	[संपादक काका कालेलकर]	।॥)
गांधी विचार दोहन	[किशोरलाल मशरूवाला]	।॥)
गांधीवाद की रूपरेखा	[रामनाथ सुमन]	१)
इंग्लैण्ड मे महात्माजी	[महादेव देसाई]	।॥)
गांधी अभिनन्दन-ग्रन्थ	[संपादक राधाकृष्णन्]	२)
खादी मीमांसा	[बालू भाई मेहता]	१॥)
बापू	[घनश्यामदास बिड़ला]	१।) ।॥)